आर्यमहिला पुस्तकमाला । पुष्प संख्या १

मार्कण्डेय पुराण।

[तृतीय खण्ड]

श्रीः ।

मार्कण्डेय पुराण ।

[तृतीय खण्ड]

श्रीभारत-धर्म-महामण्डलके प्रधान व्यवस्थापक
पूज्यपाद श्रीस्वामीजी महाराजकी लिखायी
हुई 'रहस्योद्घाटिनी' टीका सहित ।

सम्पादकः—
गोविन्द शास्त्री दुगवेकर ।

प्रकाशकः—
आर्यमहिलाहितकारिणीमहापरिषद्,
बनारस ।

द्वितीय संस्करण] सन् १९३३ । [मूल्य एक रुपया

Printed by Pt. Baldeo Datt Thaker,
at the Bharat Dharma Press, Benares.

* ॐ तत्सत् *

दो शब्द ।

—:*:—

श्रीजगन्मङ्गलमयी जगदम्बाकी अपार कृपासे इस तृतीय खण्डके साथ "मार्कण्डेय महापुराण" का "रहस्योद्घाटिनी" टीका सहित सम्पूर्ण अनुवाद समाप्त हो रहा है। कोई छोटा ही सङ्कल्प क्यों न किया गया हो, वह सिद्ध हुआ देख, अन्तःकरणमें एक प्रकारका सात्त्विक आनन्द होता है। इस समग्र पुराणके यथाज्ञान किये हुए भाषान्तरको प्रकाशित करते हुए हम भी ऐसे ही आनन्दका अनुभव कर रहे हैं।

प्रथम खण्डकी प्रस्तावनामें हमने लिखा थाः—"सम्भवतः ऐसे ही तीन खण्डोंमें यह ग्रन्थ समाप्त हो जायगा।" तदनुसार तीन ही खण्डोंमें यह समाप्त हुआ है। साथ ही लिखा थाः—"इसके साथ प्रकाशित होनेवाली पूज्यपाद श्रीजी महाराजकी टिप्पणियोंमें ही इस "पुराणमाला" का प्राण है। इस एक पुराणकी ही सब टिप्पणियोंका यदि पाठकगण मनोयोगके साथ अध्ययन कर लें, तो इस पुराणमें वर्णित विषयोंमें तो कोई सन्देह रहना सम्भव ही नहीं है; किन्तु अन्य पुराणोंका पाठ करते समय ये टिप्पणियाँ पुराणोंके रहस्योद्घाटनमें कुञ्जीका काम देंगी। विशेषतः यह "रहस्योद्घाटिनी" टीका संस्कृत और हिन्दीके विद्वानों, सनातनधर्मरक्षक गुरुओं, पुरोहित-सम्प्रदायों, पुराणव्यवसायियों और सब श्रेणीके शिक्षित नर-नारियोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है।" तीनों खण्डोंकी टिप्पणियाँ आज पाठकोंके सम्मुख हैं। इनका अभ्यास ध्यानपूर्वक जिन जिज्ञासुओंने किया होगा, वे हमारे कथनकी सत्यतापर कदापि सन्देह नहीं करेंगे। विवादग्रस्त और संशयको बढ़ानेवाले प्रायः सभी विषयोंपर उक्त टिप्पणियोंके द्वारा प्रकाश डाला गया है और वे सब उलझनें सुगमतापूर्वक सुलझा दी गयी हैं, जो प्रायः पुराणपाठकोंके हृदयोंमें पड़ जाया करती हैं। एक प्रकारसे श्रीस्वामीजी महाराजने टिप्पणियाँ क्या लिखायी हैं, ज्ञानपिपासुओंकी मनोमयी गागरमें विविध और व्यापक तत्वज्ञानका सागर भर दिया है। श्रीजीके इस पवित्र और त्रिलोककल्याणकारी पुरुषार्थसे लाभ उठाना बुद्धिमान् नर-नारियोंके हाथमें है।

यद्यपि समग्र पुराणके अनुवादका दायित्व हमपर ही है, तथापि यहां यह कह देना आवश्यक है कि, ५६वें अध्यायसे ८०वें अध्यायतकका अनुवाद काश्मीर राज्यके भूतपूर्व शिक्षामन्त्री, श्रीजीके परमभक्त और, हमारे मित्र श्रीयुत पण्डित रमेशदत्त पाण्डेय बी० ए० के सम्पादकत्वमें श्रीजीके सुयोग्य विद्वान् शिष्योंने किया है और "सप्त-

शती गीता" का सम्पूर्ण भाषान्तर "आर्यमहिला-हितकारिणी-महापरिषद्" की प्रधान सञ्चालिका परमतपस्विनी श्रीमती विद्यादेवी महोदयाकी कुशल-लेखनीसे निकला है। सम्पूर्ण ग्रन्थकी भाषासरणी एक ही ढङ्गकी रखनेका विचार सभीने रक्खा है; परन्तु यह स्वीकार करना ही पड़ता है कि, ग्रन्थमें,—विशेषतया द्वितीय खण्डमें,—संशोधनकी कुछ अक्षम्य भूलें दृष्टिदोषसे रह गयी हैं; जिनके लिये पाठकोंसे क्षमा-प्रार्थना करना हम अपना कर्तव्य समझते हैं। यदि श्रीजगन्माताकी करुणासे हमें इस ग्रन्थके पुनर्मुद्रणका सुअवसर प्राप्त हुआ, तो द्वितीय संस्करणमें वे सब भूलें सुधार दी जायँगी।

"रहस्योद्घाटिनी" टीकामें प्रसङ्ग-विशेषसे जहाँ तहाँ अनेक विषयोंका ऊहापोह किया गया है। उनकी श्रृंखला बाँधनेके विचारसे हमने एक स्वतन्त्र सूची और उसका 'अ'कारादि क्रम तैयार कर इस खण्डके साथ प्रकाशित कर दिया है। इस सूची और क्रमसे पाठकोंको ज्ञात हो सकेगा कि, कौनसा विषय कहां है। इस व्यवस्थासे अन्य पुराणोंके पाठमें भी सहायता मिलेगी।

पूर्वप्रतिज्ञाके अनुसार इस ग्रन्थके समाप्त होनेपर दूसरा ग्रन्थ "श्रीदेवीभागवत" भाषान्तरके लिये हम हाथमें ले रहे हैं। वह भी इसी ग्रन्थकी तरह टीका-टिप्पणीसहित प्रथम क्रमशः "आर्यमहिला" में छपकर पीछे स्वतन्त्र पुस्तकाकार प्रकाशित किया जायगा। श्रीदेवीभागवत मार्कण्डेयपुराणसे ठीक दुगुना ग्रन्थ है। मार्कण्डेयपुराणके नौ सहस्र श्लोक हैं, तो श्रीदेवीभागवतके अठारह सहस्र। परन्तु मार्कण्डेयपुराण जितना सरल है, श्रीदेवीभागवत उतना ही कठिन है। उसकी भाषा इस पुराणसे अधिक प्रौढ़ और विषय भी अति निगूढ़ हैं। तो भी जब श्रीजीने इस कार्यको करनेकी आज्ञा दी है, तब हमें विश्वास है कि, वे ही इसको पार भी लगावेंगे। श्रीगुरुदेवके आशीर्वाद और श्रीजगदीश्वरीके कृपा-कटाक्षसे ही जगत्के सब महत्कार्य सम्पन्न होते हैं, यह हमारा दृढ़ विश्वास है और उसी विश्वासके आधारपर हम कह सकते हैं:—

"उन्हींके मतलबकी कह रहा हूं, जबान मेरी है बात उनकी।
उन्हींकी महफ़िल सम्हालता हूँ, चिराग़ मेरा है रात उनकी॥
फ़क़त मेरा हाथ चल रहा है, उन्हींका मज़मूँ निकल रहा है।
उन्हींका मज़मूँ उन्हींका कागज़ क़लम उन्हींकी दवात उनकी॥"

विनीत—

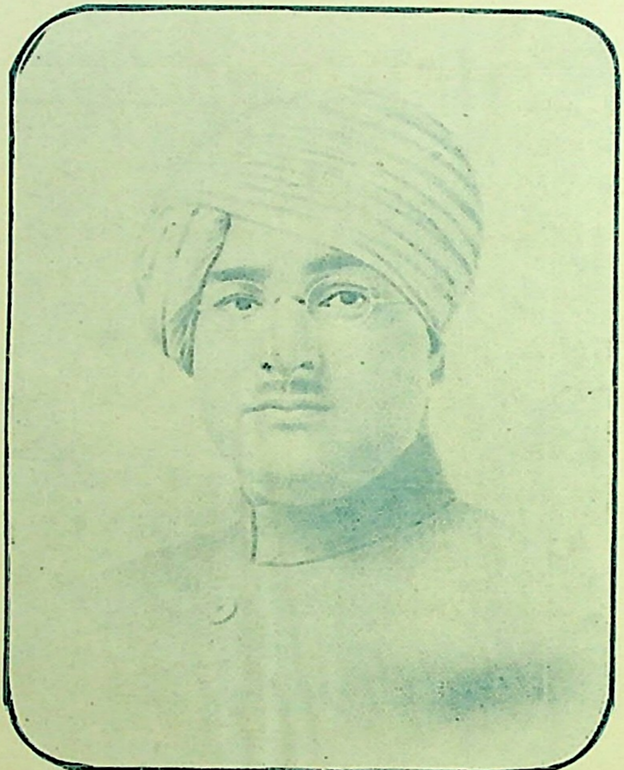
वसन्त-पञ्चमी
संवत् १९८९ } गोविन्द शास्त्री दुगवेकर।

मार्कण्डेय पुराण

के

तृतीय-खण्डको विषय-सूची ।

तृतीय खण्ड समाप्त ।



भारतधर्म-वैभव

कैप्टन हिज-हाइनेस महाराजा श्रीमान् सर नरेन्द्रसाह बहादुर

के. सी. एस्. आई.

टेहरी (गढ़वाल)

विद्यापति प्रेस, लहेरियासराय

समर्पण

भारतधर्म-वैभव

कैप्टन हिज़हाईनेस महाराजा श्रीमान् सर नरेन्द्रशाह बहादुर

के. सी. एस्. आई.

टेहरी (गढ़वाल)

स्वस्ति श्रीभूपाल उत्तराखण्ड-अधीश्वर ।
केलि करैं लै मुक्ति-बदरि कर केदारेश्वर ॥
ज्ञान-खानि अघहानि-कारि जहँ सुर कवि बानी ।
बसें निरन्तर गङ्गधारकी रचें कहानी ॥
इडा पिङ्गला गङ्ग-जमुन बिच तुव रजधानी ।
मनो सुषुम्ना चित्स्वरूपिणी उई भवानी ॥
हिममय अचल जुड़ावत हिय करि अचला कमला ।
गोद गहे सकुटुम्ब भूप पाये मति विमला ॥
मार्कण्डेय पुराण भेट करि 'विद्या' गावे ।
मार्कण्डेय समान दीर्घ जीवन नृप पावें ॥

मार्कण्डेय पुराण।

तृतीय खण्ड।

चौरानबेवां अध्याय।

—o:*:o—

मार्कण्डेयने कहा,—यह सावर्णिक मन्वन्तरका विषय तुमसे कहा गया। उसी प्रसङ्गमें देवीमाहात्म्य, महिषासुरवध, महायुद्धमें मातृगण तथा देवीकी उत्पत्ति, चामुण्डादेवीकी उत्पत्ति, शिवदूतीका माहात्म्य, शुम्भ-निशुम्भवध तथा रक्तवीजवध इन सबका भी पूर्णरूपसे वर्णन किया गया है। हे मुनिश्रेष्ठ! अब आगामी नवम मनु दक्षपुत्र सावर्णिका मन्वन्तर कहता हूं, सुनो॥ १—४॥ उस मनुके मन्वन्तरमें जो जो देवता, जो जो ऋषि एवं जो जो नरपतिगण होंगे, वह कहता हूं। पारामरीचि, भर्ग और सुधर्मा, देवगणमें ये त्रिविध गण और प्रत्येक गणमें बारह देवता होंगे। अब जो अग्निपुत्र षड़ानन कार्तिकेय वर्तमान हैं, वही उस भावी मन्वन्तरके अद्भुत नामक महाबलशाली सहस्र आंखवाले इन्द्र होंगे। मेधातिथि, वसु, सत्य, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, सबल और हव्यवाहन, ये उस समय सप्तर्षि होंगे। धृष्टकेतु, वर्हकेतु, पंचहस्त, निरामय,

---

टीका:—दैवीराज्यका एक मन्वन्तर उलट पुलट करनेवाला समय होता है। जैसे इस मृत्युलोकमें जहां कि, जीव मातृगर्भसे जन्मता और मर जाता है, वहां राजाओंके विशेष विशेष परिवर्तनके कालमें सभ्यताका घोर परिवर्तन होता है; जैसा कि, आर्य सभ्यता, महम्मदीय सभ्यता, रोमन सभ्यता, युरोपीय सभ्यता और चीन, जापान आदि अन्यान्य अनेक अनार्य सभ्यताका काल और ढंग अलग अलग दिखायी देता है; उसी उदाहरणके अनुसार समझना उचित है कि, प्रत्येक मन्वन्तरमें मृत्युलोक और देवलोककी सभ्यताका ढङ्ग, उसकी शृंखलाशैली और उसकी शासनप्रणाली संपूर्णरूपसे बदल जाया करती है। इस मृत्युलोकमें जो सौ, दो सौ, चार सौ वर्षोंमें सभ्यता आदि और आचार आदिका परिवर्तन लौकिक इतिहासमें पाया जाता है, उसी ढंगपर प्रत्येक मन्वन्तरमें एक ब्रह्माण्डकी सभ्यताका उलट पुलट हुआ करता है। यही कारण है कि, प्रत्येक मन्वन्तरमें भगवान् मनुके बदलनेके साथही साथ देवराज इन्द्रपदके पदधारी, अन्यान्य बड़े बड़े देवपदधारी, ऋषिपदधारी और पितृपदधारी सभी बदल जाते हैं। यही कारण है कि, प्रत्येक मन्वन्तरकी जीवशक्ति, जीवके आचार,

पृथुश्रवा, अर्च्चिष्मान्, भूरिद्युम्न और बृहद्भय, ये दक्षात्मज मनुके पुत्र उस समय राजा होंगे। हे द्विज! इसके बाद दशम मनुका मन्वन्तर सुनो ॥ ५—१० ॥ श्रीमान् ब्रह्माका पुत्र जो दशम मनु होगा, उसके मन्वन्तरमें सुखासीन, निरुद्ध आदि तीन तरहके देवता होंगे, जिनकी सब मिलाकर संख्या सौ होगी। भावी मनुके मन्वन्तरमें प्राणियोंकी संख्या एकसौ होनेसे देवताओंकी संख्या भी सौ होगी। इन्द्रके सब गुणोंसे सम्पन्न शान्ति नामक तब इन्द्र होंगे। उस समय जो सप्तर्षि होंगे, उनको भी जान लो। आपोमूर्त्ति, हविष्मान्, सुकृत, सत्य, नाभाग, अप्रतिम और वशिष्ठ, येही सप्तर्षि होंगे। सुक्षेत्र, उत्तमौजा, भूमिसेन, वीर्य्यवान्, शतानीक, वृषभ, अनमित्र, जयद्रथ, भूरिद्युम्न और सुपर्वा, ये दशम मनुके पुत्र राजा होंगे। इसके बादके मनु धर्म्मपुत्र सावर्णिका मन्वन्तर सुनो ॥ ११–१६ ॥ विहङ्गम, कामग और निर्म्माणपति, देवताओंके ये त्रिविध गुट और प्रत्येक गुटमें तीन सौ देवता होंगे। जो मास, ऋतु और दिन हैं, वेही निर्माणपतियोंके; जो रात्रियाँ हैं, वे विहंगमोंके और मूहूर्त्तजात विषय कामगदेवताओंके गण होंगे। प्रसिद्ध पराक्रमी वृष नामक उनके इन्द्र होंगे। इस मन्वन्तरमें हविष्मान्, वरिष्ठ, अरुणतनय ऋष्टि, निश्चर, अनत्र, महामुनि विष्टि और अग्निदेव, येही सप्तर्षि होंगे। सर्वत्रग, सुशर्मा, देवानीक, पुरुद्वह, हेमधन्वा और दृढ़ायु, ये उस भावी मनुके पुत्र नरपति होंगे। रुद्रपुत्र सावर्णि मनुके बारहवें मन्वन्तरमें जो देवता और मुनिगण होंगे, उनके विषयमें सुनो ॥ १७—२२ ॥ सुधर्मा, सुमना, हरित, रोहित और सुवर्ण,—उस मन्वन्तरमें ये पांच प्रकारके देवगण और प्रत्येक गणमें दश दश देवता होंगे। यावतीय इन्द्रगुणसे युक्त महाबल ऋतधामा उनके इन्द्र होंगे। अब सप्तर्षियोंके विषयमें सुनो।

जीवके ज्ञान, दैवी जगत्की श्रृंखला आदिमें उलट पुलट हो जाता है। वस्तुतः वैदिक विज्ञानके अनुसार सभ्यता आदिके बदलनेका समय एक मन्वन्तर माना गया है। इस दुर्ज्ञेय दैवी श्रृंखलाका रहस्य इस समयका जगत् समझनेमें प्रमादके कारण असमर्थ है। प्रत्येक मन्वन्तरके साथ जो देवसंघ, ऋषिसंघ और पितृसंघ बदलनेका वर्णन पाया जाता है, वह तो स्पष्ट ही है। देवतागण कर्मके चालक, ऋषिगण ज्ञानके चालक और पितृगण स्थूल भूतके चालक प्रत्येक मन्वन्तरमें होते हैं। उक्त पदधारियोंके नीचे अनेक छोटे छोटे देवपदधारी भी हुआ करते हैं। जिनका वर्णन पुराणोंमें आनेकी आवश्यकता नहीं है। इन वर्णनोंके साथ जो राजाओंका वर्णन आता है, वे भी दैवी राज्यके राजा हैं। जैसे एक साम्राज्यमें सम्राट् और माण्डलिक राजा अलग अलग होते हैं, वैसेही इन्द्र और उक्त राजाओंका सम्बन्ध समझना उचित है। उक्त दैवी जगत्के देवता, ऋषि, पितर और राजपदधारी आदिकी प्रेरणा मृत्युलोकमें काम करती है। मृत्युलोकके जिस जिस शरीरमें उनकी प्रेरणा काम करती है, वे उक्त देवता, ऋषि आदिके अवतार कहाते हैं। यही दैवी राज्यकी श्रृंखला और मन्वन्तरका संक्षिप्त रहस्यहै। भगवान् कार्तिकेयके भावी इन्द्र होनेका रहस्य यह है कि, दैवी जगत्की कर्मश्रृंखलाके अनुसार वहां भी पदोन्नति होती है। वह पदोन्नति भगवान् ब्रह्मा, भगवान् विष्णु और भगवान् शिवके पदोंतक पहुंचती है। जैसा कि, पुराणोंमें कहीं कहीं लिखा है कि, भगवान् हनूमान् भविष्यत्में भगवान् ब्रह्माके पदको प्राप्त करेंगे ॥ ९–१० ॥

द्युति, तपस्वी, सुतपा, तपोमूर्त्ति, तपोनिधि, तपोरति और सप्तम तपोधृति, येही सप्तर्षि होंगे। देववान्, उपदेव, देवश्रेष्ठ, विदुरथ, मित्रवान् और मित्रविन्द येही इस मनुके पुत्र भावी नृपति होंगे। रौच्य नामके तेरहवें मनुके समयमें जो सप्तर्षि और जो मनुपुत्रगण राजा होंगे, उनके विषयमें कहता हूं, सुनो ॥ २३-२७ ॥ हे मुनिसत्तम! उस मन्वन्तरमें सुधर्मा, सुकर्मा और सुशर्मा, येही सब देवगण होंगे। महाबल महावीर्य दिवस्पति उनके इन्द्र होंगे। अब भविष्यत्के सप्तर्षियोंके बारेमें कहता हूँ, सुनो। धृतिमान्, अव्यय, तत्त्वदर्शी, निरुत्सुक, निर्मोह, सुतपा और सप्तम निष्प्रकम्प, येही सात सप्तर्षि होंगे। चित्रसेन, विचित्र, नयति, निर्भय, दृढ़, सुनेत्र, क्षत्रबुद्धि और सुव्रत, येही उस रौच्य मनुके पुत्र राजा होंगे ॥२८-३१॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका नवम सावर्णि मनुसे त्रयोदश मनु रौच्य पर्यन्तके वर्णनका चौरानवेवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

पंचानवेवाँ अध्याय।

—०:*:०—

मार्कण्डेयने कहा,—पहिले प्रजापति रुचि निर्मम, निरहंकृत, भयविरहित और परिमितशायी होकर पृथिवीका परिभ्रमण करते थे। उनके पितृगणने उन्हें अग्निहीन,

---

टीकाः—यह पहिले अच्छी तरह कहा गया है, कि हमारा यह स्थूल मृत्युलोक सूक्ष्म दैवीलोकके आश्रयपर स्थायी रहता है और उन्नति तथा अवनतिको प्राप्त होकर सृष्टि, स्थिति और लयका साथ देता है। हमारा यह स्थूल मृत्युलोक प्रत्येक ब्रह्माण्डके चौदहवें हिस्सेका एक-चौथा हिस्सा मात्र है। हमारे मृत्युलोकके अतिरिक्त बाकी सब हिस्सा देवलोक कहाता है। उस देवलोकमें नाना प्रकारके देवतागण, ऋषिगण, पितृगण और असुरगण वास करते हैं और इस मृत्युलोकसे भी दैवी संबन्ध रखते हैं। देवलोकके जिन देवताओंका जितना संबन्ध इस मृत्युलोकसे साक्षात् रूपसे रहता है, उन्हीं का नाम आदि इस पुराणमें आया है। ये सब देवपद स्थायी होते हैं, परन्तु उनकी संख्यामें और देवपदोंके पदधारियोंमें प्रत्येक मन्वन्तरमें हेर-फेर हुआ करता है। कालके सम्हालनेवाले राजा मनु कहाते हैं। एक मन्वन्तर मनुष्यके कितने वर्षोंका होता है, सो पहिले कहा गया है। प्रत्येक मन्वन्तरकी दैवी शृङ्खला जब बदल जाती है, तो उस समय सृष्टिका बहुतसा अंश और दैवीराज्यकी बहुतसी व्यवस्था बदल जाया करती है। जब कालके सम्हालनेवाले देवता मनु बदल जाते हैं, तो सृष्टिशृङ्खलाके संभालनेवाले देवताओंके पदधारी भी बदल जाते हैं। इस कारण प्रत्येक मन्वन्तरके देवसंघोंमें हेर-फेर हुआ करता है और जब देवपदधारी बदल जाते हैं, तो सृष्टिक्रियाको संभालनेवाले देवताओंके राजा इन्द्र भी बदल जाते हैं और प्रत्येक मन्वन्तरमें जब ज्ञानका तारतम्य होना भी संभव है, तो उस समयके ऋषिपदके पदधारी भी बदल जाते हैं। इसी कारण प्रत्येक मन्वन्तरके देवता आदि और ऋषि आदिका नाम त्रिकालदर्शी भगवान् व्यासने अपनी समाधिके द्वारा जानकर इस पुराणमें प्रकाशित किया है। मन्वन्तरज्ञानके प्राप्त करनेके लिये सूत्ररूपसे इस पुराणमें भगवान् व्यासजीने बहुत कुछ कहा है ॥ ११—३१ ॥

गृहहीन, एकाहार, आश्रमवर्जित और सङ्गत्यागी मुनिव्रतचारी देखकर कहा,—हे वत्स ! तुम दारपरिग्रह (विवाह) जैसा पवित्र कार्य्य क्यों नहीं करते ? वह स्वर्ग और अपवर्गका कारण होनेसे उसमें सभी कुछ सम्बद्ध है। यावतीय देवता, पितृगण, पूज्यगण, ऋषिगण और अतिथिगणका अन्नदान द्वारा सत्कार कर गृहस्थ स्वर्गादि लोकोंकाभी भोग करते हैं। "स्वाहा" उच्चारण कर देवगणकी, "स्वधा" उच्चारण कर पितृगणकी और अन्नदान द्वारा अतिथिगणकी ऋणमुक्ति करते हैं; किन्तु तुम गृहस्थ न होकर देवगण, पितृगण, मनुष्य और यावतीय प्राणियोंके निकट बन्धनप्राप्त हो रहे हो। पुत्रोत्पादन न करके तथा देवतागण और पितृगणका सन्तर्पण न करके और अकृतकर्मा होकर मूर्खतावश किस तरह सुगति पानेकी इच्छा करते हो ? हे पुत्र ! तुम्हें जो जो क्लेश होगा, वह हम जानते हैं। मृत व्यक्तिके नरकभोगकी तरह तुम्हें दूसरे जन्ममें विभिन्न क्लेश होंगे ॥ १–५ ॥ रुचिने कहा,—दारपरिग्रह अत्यन्त दुःखप्रद और पापका कारणस्वरूप है। उससे अधोगति होती है। इसीलिये पहिले मैंने दारपरिग्रह (विवाह) नहीं किया। इन्द्रियदमनके लिये जो आत्मसंयम किया जाता है, वही मुक्तिका कारण है। परिग्रह करनेसे वह किसी प्रकार नहीं हो सकता। परिग्रहहीन होकर ममत्वरूपी पंकसे लिप्त आत्माको जो प्रतिदिन चिन्तनरूपी जलके द्वारा प्रक्षालित करते हैं, वेही उत्तम पुरुष हैं। अनेक जन्मार्जित कर्मरूपी पङ्कसे अनुलिप्त आत्माको सद्वासनारूपी सलिलसे जितेन्द्रिय होकर प्रक्षालन करना चाहिये ॥ ६–१२ ॥ पितृगण बोले,—जितेन्द्रियोंको आत्मप्रक्षालन करना तो उचित ही है, किन्तु हे पुत्र ! तुमने जिस पथका अवलम्बन किया है, क्या वह मोक्षप्राप्तिका पथ है ? कामनावर्ज्जित दानसे जैसे अशुभ नष्ट होता है, वैसे ही शुभाशुभ फल तथा उनके उपभोग द्वारा पूर्वजन्मार्जित कर्मका क्षय होता है। इसप्रकार निष्कामबुद्धिसे कर्म करनेवालोंको बन्धन नहीं होता। फलकी अनाकाङ्क्षा रखकर किया हुआ कर्म बन्धनका हेतु नहीं हो सकता। सुख-दुःखोंके उपभोगसे ही मनुष्यका पूर्वजन्मकृत पुण्य तथा पापसम्बन्धी कर्म क्षयको प्राप्त होता है। बुद्धिमान् लोग आत्माको इस प्रकार विशुद्ध करते रहते हैं और बन्धनसे

टीका :—घटाकाश, मठाकाश आदिकी तरह एक ही सर्वव्यापक आकाश नाना नामोंको धारण करता है ; परन्तु वस्तुतः आकाश एक ही अद्वितीय है। केवल घट, मठ आदिकी उपाधिसे वह अलग अलग प्रतीत होता है। सर्वव्यापक आकाशकी तरह एक अद्वितीय आत्मा सबमें रहकर भी सबसे निर्लिप्त है। अतः प्रत्येक देहमें देही आत्मा निर्लिप्त रहनेपर भी उसे अज्ञानके कारण चित् जड़ ग्रंथि रूपी बन्धनदशाकी प्राप्ति होती है। देहीका देह चाहे स्थूल शरीररूपी हो चाहे सूक्ष्म शरीररूपी हो, सभी प्रकृतिसंजात हैं। और कर्मबन्धन भी प्राकृतिक ही हैं। केवल अज्ञानके कारण इन सब प्राकृतिक प्राणियोंका

उसकी रक्षा करते हैं; किन्तु अविवेकरूपी पापके पङ्कमें उसे लिप्त नहीं होने देते ॥ १३-१७॥ रुचिने कहा,—हे पितामहगण! वेदमें कर्ममार्गको अविद्या कहा है। तब किस प्रकार आप लोग मुझे कर्ममार्गमें प्रवर्त्तित करते हैं? पितृगण बोले,—यह सच है कि, कर्म अविद्यामूलक है, परन्तु कर्मसे अविद्याकी उत्पत्ति होती है, यह बात मिथ्या है; क्योंकि यह निःसन्दिग्ध है कि, कर्म ही विद्याप्राप्तिका हेतु है। समस्त कर्त्तव्यकर्मका अनुष्ठान न कर असाधुजन संयमपूर्वक मुक्तिके लिये जो प्रयत्न करते हैं, उससे अधोगति होती है। हे वत्स! "आत्माको विशुद्ध करेंगे" तुम ऐसा समझते हो, किन्तु विहित कर्मके अनुष्ठान न करनेसे जो पाप उत्पन्न होगा, उससे तुम दग्ध होगे। अपकारक विष जिस प्रकार मनुष्यका उपकारक भी हो सकता है, उसी प्रकार अविद्या भी मनुष्यकी उपकारिणी हो सकती है। अविद्याका स्वरूप भले ही भिन्न हो, किन्तु कर्त्तव्यबुद्धिसे अनुष्ठित कार्य हम लोगोंके लिये मंगलप्रद होते हैं। उनके करनेसे अविद्याका बन्धन नहीं होता। हे पुत्र! इसलिये तुम विधिवत् दार-परिग्रह (विवाह) करो। लौकिक कर्माचरण न करके तुम्हारा जन्म विफल न हो। रुचि बोला,—हे पितृगण! अब तो मैं वृद्ध हो गया; फिर कौन मुझे अपनी कन्या प्रदान करेगा? विशेषतः मेरे जैसे अकिञ्चनके लिये दारपरिग्रह अतीव दुष्कर है। पितृगण बोले,—हे वत्स! यह निश्चय समझो कि,

---

सम्बन्ध अन्तःकरण मनवा देता है। स्वच्छ आत्मामें प्रकृतिका इस प्रकार आभास-सम्बन्ध होनेसे भ्रमजनित बन्धनदशाका उदय होता है। कामना या वासनाके कारण ही इस प्रकारका संस्कारसंग्रह होता है। तात्पर्य यह है कि, आत्मा निर्लिप्त है। यावत् क्रियायें प्रकृतिमें ही होती हैं। प्रकृतिको अपने आपमें आरोप कर लेना अज्ञानका कारण है। निर्लिप्त आत्मामें जैसे—घटाकाश, मठाकाशमें जैसे आकाशका विशेषत्व बन जाता है, वैसे ही अज्ञानके कारण सर्वव्यापक निर्लिप्त आत्माका विशेषत्व अन्तःकरणमें समझा जानेसे चित् जड़ ग्रंथिरूपी जीवका उदय होता है। यही जीवका जीवत्व है। दूसरी ओर जीव जो जो कर्म करता है, शरीरसे, मनसे और बुद्धिसे करता है। उन सब कर्मोंका संस्कार वासनाके रहनेसे ही अन्तःकरणमें अंकित हो जाता है। येही वासनाद्वारा संगृहीत संस्कार-समूह बीज बनकर यथासमय अङ्कुरोत्पन्न करते हैं। वही अङ्कुर शरीर, शक्ति, प्रकृति, प्रवृत्ति, जाति, आयु और भोगसमूह उत्पन्न करके आवागमनचक्रको स्थायी करते हैं। ज्ञानके बलसे कामना अर्थात् वासनाका नाश कर देनेसे बन्धनदशाका नाश हो जाता है। यही निःश्रेयस पथका उदय कहाता है। आत्मज्ञानी महापुरुषगण तत्वज्ञान द्वारा वासनाका नाश करके जीवन्मुक्त पदको प्राप्त करते हैं। इसी प्रकारसे भोग द्वारा प्रारब्धका क्षय भी हो जाता है। तत्वज्ञान द्वारा वासनाका क्षय होकर कर्मका सम्बन्ध छूट जाता है और दूसरी ओर प्रारब्ध रूपसे जो कर्म अङ्कुरित हो चुके हैं, जिनके द्वारा शरीर, शक्ति, प्रकृति, प्रवृत्ति, जाति, आयु और भोग इन सातोंकी प्राप्ति हो चुकी है, वे प्रारब्धकर्मभोगसे नाश हो जाते है। जीवन्मुक्त दशामें भोगसे प्रारब्धनाश होता है और तत्वज्ञान द्वारा सञ्चित, क्रियमाणके फन्देसे महापुरुष बचकर ब्रह्मरूप ही बन जाता है ॥ १३—१७ ॥

यदि तुमने हम लोगोंकी बात न मानी, तो तुम्हारा पतन तथा अधोगति अवश्यंभावी है। मार्कण्डेय बोले,—हे मुनि श्रेष्ठ! यह कहकर उसके पितृगण देखते देखते वायुके झकोरेसे बुझे हुए दीपककी तरह सहसा अन्तर्हित हो गये ॥ १८-२५ ॥

इसप्रकार मार्कण्डेय महापुराणका रुचि-उपाख्यान सम्बन्धी पञ्चानवेवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

टीका :—अज्ञानजननी अविद्या और ज्ञानजननी विद्या है। ब्रह्मप्रकृति महामायाके दो स्वरूप हैं। जो शक्ति आत्मासे विमुख करके अज्ञान बढ़ावे, वह अविद्या कहाती है और जो शक्ति आत्माकी ओर उन्मुख करके ज्ञान प्रदान करती है, वही विद्या कहाती है। यही कारण है कि, वासनामें युक्त होकर कर्मकाण्डके अनुष्ठानको अविद्याजनित कहा गया है। परन्तु यही कर्मकाण्ड जब वासनारहित होकर केवल कर्त्तव्यबुद्धिसे अनुष्ठित होता है, तो वह विद्यासेवित माना गया है। अतः कर्मकाण्ड अविद्याका भी निलय कहा जा सकता है और विद्याका भी। यदि प्रमादसे कर्मकाण्डका त्याग किया जाय और वर्ण और आश्रमका उचित कर्म न किया जाय, तो जीवका घोर पतन होता है। दूसरी ओर सद्वासनासे कर्म करनेसे अभ्युदय होता है और केवल कर्त्तव्यबुद्धिसे कामका सेवन करनेसे निःश्रेयसपदकी प्राप्ति होती है। ब्रह्मकी शक्ति महामाया ही जगतकी उत्पत्ति, स्थिति और लयका कारण है। ऐसी ब्रह्मशक्तिरूपिणी, सर्वशक्तिमयी, सबकी मातृरूपा जगदम्बाका कोई अंग या कोई भाव अहितकारी नहीं हो सकता। इसका स्थूलसे स्थूल उदाहरण यह है कि, विष जैसे साधारण मनुष्यका प्राण नाश कर देता है, वैसेही पीड़ित मनुष्यको प्राण देता है। उसी शैलीपर अविद्या जीवके बन्धन और पतनकी कारण होनेपर भी नियमानुसार चलनेपर वही उसके अभ्युदयका कारण बन जाती है। माता कभी कुमाता नहीं हो सकती, कुपुत्र होनेपर भी माता प्रत्येक दशामें उसका कल्याण ही करती है। विश्वजननी भगवती महामायाका ही एक रूप विद्या है, दूसरा अविद्या है। अतः विद्या ज्ञानजननी होकर जीवको गोदमें उठाकर नियमित अभ्युदय कराती हुई निःश्रेयस भूमिमें पहुंचा देती है। परन्तु अविद्या भी जीवको गोदमें न लेकर उसको ठोकती पीटती हुई घसीटकर आगे ही बढ़ा देती है। जिस प्रकार सकाम कर्म बन्धनका हेतु है, उसी प्रकार पाप और पुण्य दोनों ही बन्धनके हेतु हैं। जैसे लोहे और सोनेकी श्रृंखला दोनोंही जीवोंको बांधती है, वैसेही पाप और पुण्य दोनोंही जीवोंको बन्धन दशामें पहुंचाते हैं। परन्तु सूक्ष्म विज्ञान द्वारा कर्मपारदर्शी मुनिगण यह देखते हैं कि, पुण्यकर्म सीधा जीवको अभ्युदयके मार्गमें लेजाता है और पापकर्म भी उसको ठोक पीटकर सीधा रास्ता बताता है। पापी जीव भी बार बार प्रेतलोक, नरकलोक और इस मृत्युलोकमें सजा पा पाकर होशमें आता है। जैसे जेलखानेमें गये हुए कैदी प्रायः पापसे डरने लगते हैं, वैसेही पापफलभोगी जीव पुण्यकी ओर झुकने लगता है। यह तो पाप और पुण्यकी गतिका रहस्य है। इसके द्वारा अविद्यादेवी कृपामयी है, यह सिद्ध है। दूसरी ओर यह तो सिद्ध ही किया गया है कि, कर्म यदि कर्तव्य-बुद्धिसे किया जाय, तो वह कभी बन्धन नहीं कराता, किन्तु निष्कामकर्म निःश्रेयसका द्वार खोल देता है। और तीसरी बात यह है कि, कर्म किये बिना जब जीव रह नहीं सकता, तो यदि मनुष्य विहित कर्मोंका त्याग करने लगे, तो वह बलात् अविहित कर्म कर डालेगा। प्रकृति उससे कर्म कराये बिना छोड़ेगी नहीं। ऐसी दशामें विहित कर्म छड़कर अविहित कर्म करनेसे उसका घोर पतन होगा। यही पितरोंके उपदेशका सारांश है ॥१८-२५॥

छानबेवां अध्याय ।

मार्कण्डेय बोले,—उस विप्रर्षि रुचिने इस प्रकार पितृवाक्य श्रवण कर अत्यन्त उद्विग्न तथा कन्याभिलाषी होकर पृथिवीकी परिक्रमा की। पितृवाक्यरूपी अग्निके द्वारा उद्दीपित होकर जब वह कन्यालाभ न कर सका, तब व्याकुलचित्त होकर प्रगाढ़ चिन्तामें निमग्न हो गया। "क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? किस प्रकारसे पितरोंका अभ्युदय करनेवाला मेरा विवाह सम्पन्न होगा ?" इस तरह चिन्ता करते करते उस महात्मा रुचिके मनमें आया कि, मैं तपस्या द्वारा भगवान् कमलयोनि ब्रह्माकी आराधना करूँ। तदनन्तर उसने ब्रह्माकी आराधनाके लिये यथावत् दिव्य शतवर्ष तक तपस्या की। फिर लोकपितामह ब्रह्माने उसे अपना दर्शन देकर कहा,—मैं प्रसन्न हो गया। अब तुम क्या चाहते हो, सो कहो ॥ १-६ ॥ इसके बाद रुचिने विश्वके रचयिता ब्रह्माको प्रणाम करके पितृगणके वचनानुसार अपनी इच्छा प्रकट की। ब्रह्माने उस विप्रर्षि रुचिकी प्रिय बातें सुन कर कहा,—हे पुत्र ! तुम प्रजापति होगे। तुमसे प्रजाकी सृष्टि होगी। प्रजासृष्टि तथा सन्तानोत्पादन द्वारा समस्त कार्य करते हुए जब तुम अपने अधिकार सन्तानको सौंप दोगे, तब सिद्धिप्राप्तिमें समर्थ होगे। इसीलिये पितृगणने तुम्हें विवाह करनेकी आज्ञा दी है। "वह अवश्य कर्त्तव्य है" ऐसा निश्चय करके तुम पितृपूजा करो। तब पितृगण सन्तुष्ट होकर तुम्हें अभीष्ट पत्नी तथा पुत्र प्रदान करेंगे। क्योंकि सन्तुष्ट होनेपर पितृगण बिना वरदान दिये नहीं रहते। मार्कण्डेय बोले,—ब्रह्माके इस प्रकारके वाक्य सुनकर रुचिने नदीके निर्जन तटपर पितृतर्पण किया। हे विप्र ! इस प्रकार उसने आदरके साथ एकाग्र तथा संयतचित्त होकर भक्तिभावसे नत मस्तक कर स्तुति द्वारा पितरोंको सन्तुष्ट किया ॥ ७-१२ ॥ रुचिने कहा,— श्राद्धमें जो अधिदेवतारूपमें वास करते हैं तथा देवतागण भी श्राद्धके समय 'स्वधा' कहकर जिनका तृप्ति-साधन करते हैं, उन पितृगणको मैं नमस्कार करता हूं। स्वर्गमें भुक्ति-मुक्तिके अभिलाषी महर्षिगण भक्तिसहित जिनका मनोमय श्राद्ध करके तृप्तिसाधन करते हैं, उन पितृगणको मैं नमस्कार करता हूं। स्वर्गमें सिद्धवर्ग श्राद्धकालमें अत्युत्तम यावतीय दिव्य उपहारसे जिनको तृप्त करते हैं, उन पितृगणको मैं नमस्कार करता हूं। अत्युत्कृष्ट अत्यन्त समृद्धिके अभिलाषी गुह्यकगण तन्मयभावसे भक्तिसहित जिनकी अर्चना करते हैं, उन पितृगणको मैं नमस्कार करता हूं। मृत्युलोकमें मनुष्यगण श्राद्धके

समय अभीष्ट लोक प्रदान करनेवाले जिन पितृगणका श्रद्धापूर्वक पूजन करते हैं, उन पितृ-गणको नमस्कार करता हूं । प्राजापत्य-पदको देनेवाले जिन पितृ-गणकी इष्ट लाभके निमित्त विप्रगण पृथ्वीमें पूजा करते हैं, उन पितरोंको नमस्कार करता हूं । परिमित भोजन करके तपस्यासे पापक्षय करते हुए वनवासीजन श्राद्धके द्वारा जिनको तृप्त करते हैं, उन पितृगणको नमस्कार करता हूँ । जितेन्द्रिय नैष्ठिक ब्रह्मचारी विप्रगण समाधि द्वारा जिन लोगोंको तृप्त करते हैं, उन पितृगणको नमस्कार करता हूं ॥१३–२०॥ राजन्यगण जिन तीनों लोकोंके फल देनेवाले पितृगणको श्रद्धापूर्वक अशेष कव्य (श्राद्धान्न) द्वारा तृप्त करते हैं, उन पितृगणको नमस्कार करता हूं । स्वकर्ममें रत वैश्यगण भूतलमें जिनको पुष्प, धूप, अन्न तथा जल द्वारा सन्तुष्ट करते हैं, उन पितृगणको नमस्कार करता हूं । इस जगत्में शूद्रगण जिन सुकालीन नामक विख्यात पितरोंको भक्तिपूर्वक श्राद्धके द्वारा तृप्त करते हैं, उन पितृगणको नमस्कार करता हूं । पातालमें दम्भ और मदको त्याग किये हुए महान् असुरगण जिन पितरोंको स्वधाकारके साथ श्राद्धके द्वारा तृप्त करते हैं, उन पितृगणको नमस्कार करता हूं । रसातलमें कामाभिलाषी नागकुल जिनको अशेष उपभोग्य पदार्थोंसे श्राद्ध द्वारा सर्वदा यथाविधि सन्तुष्ट करते रहते हैं, उन पितृगणको नमस्कार करता हूँ । पातालमें मंत्र, उपभोग्य वस्तु तथा सम्पत्तियोंसे सर्पगण जिन पितृ-गणकी सर्वदा श्राद्ध द्वारा विधिवत् पूजा करते हैं, उन पितृ-गणको नमस्कार करता हूं ॥२१–२६॥ जो देवलोकमें तथा अन्तरीक्षमें प्रत्यक्षरूपसे वास करते हैं और पृथ्वीमें देवता आदि द्वारा पूजित होते हैं, उन पितृ-गणको प्रणाम करता हूं । वे मेरी दी हुई पूजाको ग्रहण करें । जो योगीश्वर प्रत्यक्षरूपसे

टीका:—पितृपूजाका रहस्य वैदिक मतावलम्बीजन ही अच्छी तरह समझते आये हैं । लौकिक पितृ-मातृ भक्ति तो सब अनार्य जातियोंमें प्रचलित है । जो मनुष्य जाति पिता माताकी पूजा नहीं करती, वह असभ्य और बर्बर समझी जाती है । परन्तु देवलोकवासी, देवपदधारी अर्यमा आदि नित्य पितर जिनके अवतार हमारे पिता माता बनकर उत्तम सृष्टि उत्पन्न करते हैं, ऐसे नित्य पितरोंका स्वरूप और ज्ञान केवल वेदमतानुयायी विद्वानोंको ही विदित है । जैसे देवलोकवासी ऋषिगण ज्ञानराज्यका सञ्चालन करते हैं और जैसे देवलोकवासी देवतागण कर्मराज्यका सञ्चालन करते हैं; ठीक वैसेही देवलोकवासी नित्य पितृगण आधिभौतिक स्थूल भौतिक राज्यका सञ्चालन करते हैं । देवतागण जीवको मातृगर्भमें पहुंचाते हैं; परन्तु उसके रहनेका घररूपी यह स्थूल शरीर मातृगर्भमें पितृगण बनाते हैं । एक पवित्र कुलकी रक्षा पितृगण करते हैं; यदि किसी कारणसे स्त्रीके व्यभिचारसे कोई जारज सन्तति किसी पवित्र कुलमें उत्पन्न हो जाती है, वह कुल यदि पितरोंका भक्त हो तो उस जारज व्यक्तिकी सन्तति आगे नहीं चलती है । उसके स्थलपर पितरोंकी कृपासे रजवीर्यसे शुद्ध उस कुलका कोई दूसरा व्यक्ति पहुंचकर उस पवित्र कुलकी विशुद्धताकी रक्षा नित्य पितरोंकी कृपासे करता है । उत्तम सन्ततिका होना पितरोंकी कृपापर ही निर्भर है । विशुद्ध वीर्य और विशुद्ध रजकी सुरक्षा होना पितरोंकी कृपासे ही होता है । किसी व्यक्तिमें स्वास्थ्य और वीर्यकी सुरक्षा पितरोंकी कृपासे ही हुआ करती है । क्योंकि पितृगण स्थूल भूतोंके सञ्चालक हैं ।

विमानमें विराजमान होते हैं और क्लेशसे छुड़ानेके कारणस्वरूप और परमात्मतुल्य हैं, उन पितृगणको विशुद्ध अन्तःकरणसे मैं नमस्कार करता हूं। जो स्वर्गमें साक्षात् रूपसे निवास करते हैं और काम्य फलोंको देनेका अवसर आ पड़नेपर समस्त अभिलषितोंको देनेमें समर्थ होते हैं; इसी तरह जो निष्काम कर्म करनेवालोंको मुक्ति प्रदान करते हैं, स्वधाभोजी उन पितृगणको नमस्कार करता हूं। जो प्रार्थियोंकी सब प्रार्थनाओंको पूर्ण करते हैं और सुरत्व, इन्द्रत्व अथवा उससे भी श्रेष्ठ पद प्रदान कर सकते हैं; तथा पुत्र, पशु, धन, बल, गृह आदि इच्छानुसार दिया करते हैं, वे मेरी चढ़ायी हुई पूजाकी वस्तुओंसे तृप्त हों। जो चन्द्रकिरणोंमें, सूर्यबिम्बमें और शुक्ल विमानमें निवास करते हैं, वे पितृगण मेरे द्वारा तृप्त हों और मेरे दिये हुए अन्न, जल और गन्ध आदिके द्वारा पुष्ट हों। जो अग्निमें घृताहुति देनेसे तृप्त होते हैं, जो ब्राह्मणोंके शरीरोंमें बसकर भोजन करते हैं और पिण्डदानसे जो सन्तुष्ट होते हैं, वे पितृगण मेरे दियेहुए अन्न-जलसे तृप्त हों ॥२७-३२॥ गेंडेके मांस और अभीष्ट दिव्य तथा मनोहर कृष्णतिलके द्वारा देवगण जिनको प्रसन्न करते हैं और महर्षिगण वर्षान्तमें कालशाक द्वारा जिन्हें तृप्त करते हैं, वे पितृगण मुझसे

यह स्थूल शरीर स्थूल भूतोंका ही परिणाम है। इस कारण सबसे पहिली कृपा मनुष्यजातिपर पितरोंकी होती है, यह मानना ही पड़ेगा। पितरोंकी कृपा असाधारण है। जैसी माताकी कृपा पुत्रपर अहैतुकी होती है, वैसीही पितरोंकी मनुष्योंपर कृपा अहैतुकी होती है। आर्य्यजाति पितरोंको मानती है और पृथ्वीकी अनेक अनार्य जातियां पितरोंके अस्तित्वतक को नहीं जानतीं। तौभी पितरोंकी कृपा अनार्य जातियोंपर भी बनी रहती है। पितृगण मनुष्यके ही होते हैं, अन्य चतुर्विध भूत-संघके नहीं होते। क्योंकि अन्य सब प्रकारके भूतसंघोंकी श्रेणियोंके एक अलग अलग संरक्षक देवता होते हैं। वे देवता चतुर्विध भूतसंघोंकी अलग अलग प्रकृतिके अनुसार उनको चलाते हुए उनको आगे बढ़ाते रहते हैं। इस विषयको और प्रकारसे भी समझा जा सकता है। मनुष्यके अतिरिक्त उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज भूतसंघको अपने अपने मातृगर्भमें अथवा वीर्यगर्भमें एकही प्रकारका शरीर प्राप्त होता है। उनका कर्मवैचित्र्य न होनेसे शरीरवैचित्र्य नहीं होता। इसी कारण ऐसे भूत-संघोंको पितृसहायताकी आवश्यकता नहीं है। अब यह शंका होती है कि, अनार्य जातिको पितृसहायता क्यों, कैसी और कितनी होती है? ऐसी शङ्काका समाधान यह है कि, यद्यपि अनार्य जाति नित्य पितरोंको नहीं जानती, परन्तु नित्य पितरोंके अवताररूपी पिता माताकी वह सेवा करती है। दूसरी ओर अपने अपने अधिकारके अनुसार धर्माधर्मका भी विचार रखती है और साधारण विचारके अनुसार धर्मार्जन भी करती है। धर्मरूपी यज्ञसाधनसे जैसे देवता और ऋषिगण प्रसन्न होते हैं, वैसे पितृगण भी होते हैं। अतः अनार्य जातिके कुल, रज और वीर्यकी विशुद्धतामें पितृगण सहायक न बनने-पर भी साधारणरूपसे उनके सहायक रहते हैं। इसी प्रकार पितृगण जैसे मनुष्यशरीर और कुलको सहायता देते हैं, उसी प्रकार ऋतु आदिके रूपमें मनुष्यवासोपयोगी कालको सहायता देते हैं। इसी तरह देशको भी सहायता देते हैं। क्योंकि स्थूल शरीरकी तरह देश और काल भी मनुष्यको आधिभौतिक सुविधा और असुविधा पहुंचाता है। यही कारण है कि, प्रत्येक मन्वन्तरमें पितृपदधारी देवगण भी बदल

सन्तुष्ट हों। देवपूजित उन पितृगणको जो अशेष कव्य अभीष्ट है, वह पुष्प, गन्ध, अन्न, भोज्य आदि मैंने संगृहीत किया है; उनका वे स्वीकार करें। जो प्रतिदिन पूजा ग्रहण करते हैं, जो भूतलमें प्रतिमास तीन अष्टकाओंसे पूजित होते हैं और जो वर्षके अन्तमें उत्सवके दिनमें सन्तर्पित किये जाते हैं, वे पितृगण मेरी दी हुई पूजासे तृप्त हों। जो कुमुद और चन्द्रमाके समान गौरवर्ण और सन्तानयुक्त हैं तथा ब्राह्मणोंके द्वारा पूजित होते हैं; जो उदित सूर्यके समान रक्तवर्ण विशिष्ट होकर क्षत्रियोंके द्वारा पूजित होते हैं; जो सुवर्णके समान सुन्दर कान्तियुक्त होकर वैश्योंके द्वारा पूजित होते हैं और जो नीलवर्णके रूपमें शूद्रोंके द्वारा पूजित होते हैं; वे सब पितृगण मेरे दिये पुष्प, गन्ध, धूप, अन्न, जलके द्वारा तथा अग्निहोमके द्वारा तृप्तिलाभ करें। मैं उन पितरोंको निरन्तर नमस्कार करता हूं। जो अत्यन्त तृप्तिके हेतु देवताओंके समक्ष लाये हुए शुभ कव्य द्रव्यका आहार करते हैं और तृप्त होकर जो अणिमादि अष्ट ऐश्वर्योंकी सृष्टि करते हैं, वे मुझसे सन्तुष्ट हों। मैं उन पितरोंको नमस्कार करता हूं। जो रक्षोगण, भूतगण और उग्र असुरगणके विघातक हैं और प्रजागणकी जो रक्षा करते हैं, जो देवताओंके आदिपुरुष हैं और जो सुरेन्द्र शची-

---

जाते हैं। आर्य जातिका श्राद्धविज्ञान अति गम्भीर है। पितृगण ही अधिदैव बनकर श्राद्धके द्रव्यादि भावरूपसे लोक लोकान्तरमें जीवको पहुंचा देते हैं। जैसे पदार्थविद्याके यन्त्रविशेष द्वारा तुरन्त ही सहस्रों योजनका शब्द और रूप भी एक जगहसे दूसरी जगह पहुंच जाता है, उसी प्रकार पितृ-अधिदेवतागण श्राद्धकर्ताका अन्न पिण्ड आदि लोकलोकान्तरमें पहुंचा देते हैं। जैसे 'स्वाहा' उच्चार देवताओंके लिये, वैसेही 'स्वधा' उच्चार पितरोंके लिये वेदने कहा है। देवताओंके पितर भी अलग होते हैं, क्योंकि उनकी भी आधिभौतिक शुद्धि हमारे यहांकी चातुर्वर्ण्यकी रीतिपर सदा आवश्यक होती है। महर्षिगण आध्यात्मिक उन्नतिशील होनेसे वे मनोमय श्राद्ध करनेमें समर्थ हैं। इसीसे मानसपूजा सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। जितेन्द्रिय नैष्ठिक ब्रह्मचारीगण पुत्रेषणासे रहित होनेके कारण जब आत्मचिन्तनसे समाधिस्थ होते हैं, तो उनके द्वारा स्थूल शरीरी होनेसे स्वाभाविक रूपसे उनकी पितृपूजा हो जाती है। यही कारण है कि, शास्त्रोंमें कहा है कि, ब्रह्मनिष्ठ व्यक्तिके चतुर्दश पुरुषोंका अपने आपही उद्धार हो जाता है। उसके पिता, पितामह आदि जो लोकान्तरसे उसकी ओर देखते हैं अथवा ऐसे महापुरुषका मन जिसकी ओर चला जाता है, उसको स्वाभाविक रूपसे उस समाधिस्थ अन्तःकरणकी सहायता मिलेगी। मनुष्यके अलग अलग अधिकारोंके अनुसार पितर भी अलग अलग होते हैं। जैसे कि, शूद्रोंके पितर सुकालीन कहाते हैं। पितृलोक जिसके राजा भगवान् यम धर्मराज हैं, उसमें ही नित्य पितरोंके वास करनेका विषय शास्त्रोंमें अधिक पाया जाता है। इसका कारण यह है कि, साधारण मनुष्य, जिनका मोह पुत्र-कलत्र आदिमें रहता है, वे सुखभोगके लिये पितृलोक तक ही प्रायः जाते हैं। इस कारण ऐसी प्रजासे सम्बन्धयुक्त पितर पितृलोकमें ही निवास करते हैं। परन्तु पितृगणका निवास चन्द्रलोकसे लेकर सूर्यलोकपर्यन्त रहनेका प्रमाण शास्त्रोंमें मिलता है। पितरोंकी तृप्ति हवनके द्वारा, तर्पणके द्वारा और पिण्डोंके द्वारा जिस प्रकारसे होती है, उसी प्रकार शास्त्रोक्त ब्राह्मणभोजनके द्वारा भी होती है, ऐसा वेद और शास्त्रोंका प्रमाण है। ब्राह्मणके शरीरमें प्रविष्ट होकर नित्य और नैमित्तिक पितृगण श्राद्धान्न ग्रहण करते हैं, इसके तो अनेक प्रमाण मिलते हैं।

पतिके पूज्य हैं, वे पितृगण मुझसे तृप्त हों। मैं उनको नमस्कार करता हूं ॥ ३३–३९॥ अग्निष्वात्ता, बर्हिषद, आज्यपा और सोमपा पितृगण मुझसे सन्तर्पित होकर श्राद्धमें तृप्तिलाभ करें। अग्निष्वात्ता पितृगण मेरे पूर्वकी ओर, बर्हिषद पितृगण दक्षिणकी ओर, आज्यपा पितृगण पश्चिमकी ओर तथा इसी तरह सोमपा पितृगण उत्तरकी ओर राक्षसों, भूतों, पिशाचों और असुरोंसे होनेवाले अपायोंसे मेरी रक्षा करें। जिन पितरोंके विश्व, विश्वभुक्, आराध्य, धर्म, धन्य, शुभानन, भूतिद, भूतिकृत् और भूति, ये नौ गण हैं और जिनके अधिपति साक्षात् यम हैं, वे मेरी सब दिशाओंमें रक्षा करें। जिन पितृपुरुषोंके कल्याण, कल्याणकर्ता, कल्य, कल्यतराश्रय, कल्यताहेतु और अवध, ये छः गण हैं; जिन पितृपुरुषोंके वर, वरेण्य, वरद, पुष्टिद, तुष्टिद, विश्वपाता और धाता, ये सात गण हैं; जिन पितरोंके महान्, महात्मा, महित, महिमावान् और महाबल नामक पांच पापनाशक गण हैं और जिन पितरोंके सुखद, धनद, धर्मद और भूतिद ये चार गण कहे गये हैं;—ये सब मिलाकर तीस पितृगण, जिनसे समस्त जगत् व्याप्त है, मुझसे तृप्त हों और मुझसे सन्तुष्ट होकर मेरा हितसाधन करें ॥ ४०–४८ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका रुचि-उपाख्यानके अन्तर्गत रुचि-कृत पितृपुरुषस्तोत्र-कथन नामक छानवेवां अध्याय समाप्त हुआ।

टीकाः—पि[illegible]

[illegible] पवित्र और विद्वान् ब्राह्मणोंको भोजन करानेकी विधि है। अन्नके विषयमें ऐसा माना [illegible] है कि, देवताओंके लिये प्रिय अन्न जैसा चावल है और जैसा ऋषियोंके लिये प्रिय अन्न यव है, उसी प्रकार पितरोंके लिये प्रिय अन्न तिल है। अन्नकी यह प्रियता विज्ञानानुमोदित है। पितरोंकी अनेक श्रेणियां हैं। जो उच्च जीवश्रेणियां सृष्टिमें विशेष विशेष अधिकारोंसे युक्त हैं, उनके पितृगण अलग अलग होते हैं। ऋषि और देवतागण भी पितरोंके द्वारा सुरक्षित रहते हैं। क्योंकि मृत्युलोकमें आध्यात्मिक उन्नतिशील मनुष्यजातिकी रक्षा वर्णाश्रमके द्वारा होती है और वर्णाश्रमश्रृंखला दैवीजगत्‌की भी सहायक है। इस कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारोंके अलग अलग पितर होते हैं और चातुर्वर्ण्यके जो शुद्ध कुल हैं, उनपर उनकी कृपा नियमित रहती है। यही कारण है कि, चातुर्वर्ण्यके पितरोंका रंग अलग अलग होता है। अणिमादि ऐश्री सिद्धियां जो योगियोंमें, अवतारोंमें और सिद्ध पुरुषोंमें जगत्‌के कल्याणके सम्बन्धसे प्रकट होती हैं, उनका प्रकट होना जैसा देवताओंके अधीन है, वैसा पितरोंके भी अधीन है। अधिभूत सम्बन्धयुक्त सिद्धियां पितरोंके अधीन, अधिदैव सम्बन्धयुक्त सिद्धियां देवताओंके अधीन और वेद, शास्त्र और ज्ञानके प्रकट होनेकी अध्यात्म सम्बन्धयुक्त सिद्धियां ऋषियोंके अधीन होती हैं। यही दैवी राज्यकी श्रृंखला है। दम्भ-दर्पादिसे युक्त, इन्द्रियपरायण, विषयासक्त दैवी सृष्टि असुर कहाती है। केवल पर-अहितमें रत, प्रमादसे सदा युक्त, इन्द्रियासक्त दैवीसृष्टि राक्षस कहाती है। पिशाच और भूत, दोनों प्रेतसृष्टि है। पिशाच भूतसे बलशाली होता है। ये चारोंही देवयोनि हैं। मृत्युलोकके आसपास और असुरलोकमें इनका निवास है। सकामी और नाना एषणाओंसे युक्त प्रजापर इनका प्रकोप प्रायः हुआ करता है पितृगण सन्तुष्ट रहनेपर वे अनायास इन दैवी बाधाओंसे प्रजाकी निरन्तर रक्षा किया करते हैं ॥१३–४८॥

सत्तानबेवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयने कहा,—इस प्रकार रुचिके स्तवन करनेपर चारों ओर प्रकाशित करनेवाली और आकाशको व्याप्त करनेवाली एक तेजोराशि सहसा प्रादुर्भूत हुई। समस्त जगत्को आच्छन्न करके जगमगानेवाले उस तेजका दर्शन करके भूमिपर घुटने टेककर रुचिने इस प्रकार स्तुति करना प्रारम्भ कियाः—रुचिने कहा,—मैं इस ध्याननिरत, दिव्यचक्षु, दीप्तिमान्, अर्चित और अमूर्त पितृतेजको प्रणाम करता हूं। जो सोमके आधार, योगमूर्तिधारी, सोमरूपी और जगत्के पिता हैं, उन पितरोंको नमस्कार करता हूँ। दक्ष, मारीच, सप्तर्षिगण और इन्द्रादि समस्त देवताओंके जो नेता हैं, उन कामदाता पितृगणको मैं नमस्कार करता हूं। जो मनु प्रभृति मुनीन्द्रोंके तथा सूर्य और चन्द्रमाके नेता हैं, उन समुद्र और जलमें रहनेवाले कामदाता पितृगणको नमस्कार करता हूं। जो नक्षत्र, ग्रह, वायु, अग्नि, आकाश, स्वर्ग और पृथिवीके नेता हैं, उन कामदाता पितृगणको हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूं। जो देवर्षियोंके जनक हैं, सर्वलोकोंके वन्दनीय हैं और अक्ष पितृ-आद्यदेवतागण प्रदान करते हैं, उन पितृगणको मैं कृताञ्जलि होकर नमस्कार करता हूं। जो देवताओंके लिये, कश्यप हैं और जो सोम, वरुण तथा योगेश्वरस्वरूप हैं, उन पितृगणको सर्वदा हाथ जोड़कर मैं नमस्कार करता हूं। जो सात लोकोंमें सात गणोंमें अवस्थित हैं और जो योगचक्षु स्वयम्भू ब्रह्माके स्वरूप हैं, उन पितृगणको मैं नमस्कार करता हूं। जो सोमके आधार, योगमूर्तिधारी, सोमरूपी और जगत्के पिता हैं, उन पितृगणको नमस्कार करता हूं। जिन समस्त पितरोंसे अग्निष्टोममय यह विश्व उत्पन्न हुआ है, उन अग्निरूपी अन्यान्य पितृगणको मैं नमस्कार करता हूं। जो तेजमें स्थित होकर सोम, सूर्य और अग्नि मूर्तिका अवलम्बन करनेसे जगत्स्वरूप तथा ब्रह्मस्वरूप हो रहे हैं, उन अखिलयोगी पितृगणको संयतमानस होकर मैं वारंवार नमस्कार करता हूं। वे स्वधाभोजी पितृगण मुझपर प्रसन्न हों ॥ १-६३ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—हे मुनिसत्तम! रुचिके द्वारा इस प्रकार स्तुत होनेके उपरान्त पितृगण अपने तेजसे चारों दिशाओंको आलोकित करते हुए वहांसे चले गये। फिर उस विप्रवर रुचिने पुष्प, गन्ध आदि जो कव्य द्रव्य उन्हें अर्पण किये थे, उनको सिर चढ़ाकर क्या देखा कि, वेही पितृगण पुनः उसके सामने आकर खड़े हुए हैं। रुचिने फिर हाथ जोड़कर भक्तिभावसे आदरके साथ प्रत्येकको पृथक् पृथक् "आपको नमस्कार करता हूं, आपको नमस्कार करता हूं" ऐसा कहते हुए नमस्कार किया। अनन्तर पित-

रोंने प्रसन्न होकर मुनिश्रेष्ठ रुचिसे कहा,—वर मांगो । तब विप्रवर रुचि सिर नीचा कर उनसे बोला,—सम्प्रति ब्रह्माने सृष्टि करनेका मुझे आदेश दिया है । इस कारण मैं चाहता हूं कि, मुझे धन्या, दिव्या और सन्तान उत्पन्न करनेमें समर्थ पत्नी प्राप्त हो ॥ १४-१८ ॥ पितृगणने कहा,—इस समय इसी स्थानमें तुमको मनोहारिणी पत्नीकी प्राप्ति होगी और उसके गर्भसे तुम्हें उत्तम पुत्र होगा, जो श्रेष्ठ मनुपदको प्राप्त करेगा । हे रुचे ! वह मन्वन्तराधिपति होकर तुम्हारे नामके अनुसार विख्यात होगा । अर्थात् वह रौच्य नामसे विख्यात होगा । उस रौच्यसे महाबली, पराक्रमी, महात्मा और पृथ्वीपालक अनेक पुत्र होंगे । तुम भी चतुर्विध प्रजाकी सृष्टि कर जब अपने अधिकार पुत्रोंको सौंप दोगे, तब हे धर्मज्ञ ! सिद्धिलाभ करोगे । जो मनुष्य इस स्तोत्रके द्वारा भक्तिपूर्वक हमारा स्तवन करेंगे, उनसे हम सन्तुष्ट होकर समस्त भोग और उत्तम आत्मज्ञान प्रदान करेंगे । शारीरिक आरोग्य, धन और पुत्र-पौत्रादि चाहनेवालोंको इस स्तोत्रके द्वारा सर्वदा हमारा स्तवन करना चाहिये । श्राद्धके समयमें भोजन करनेवाले ब्राह्मणोंके सम्मुख खड़े होकर हमारे प्रीतिकर इस स्तोत्रका पाठ भक्तिपूर्वक करना चाहिये । इस स्तोत्रके श्रवणसे प्रसन्न होकर हम निकट ही उपस्थित हैं, ऐसी भावना करनेसे हमारा अक्षय्य श्राद्ध

टीकाः—पहिले ही बार बार कहा गया है कि, इस स्थूल मृत्युलोकके अतिरिक्त चतुर्दश भुवनोंका और सब हिस्सा दैवीलोक कहाता है । एक ब्रह्माण्डमें दैवीलोकका अंश बहुत अधिक होनेपर भी अज्ञानके कारण और स्थूल दृष्टि होनेके कारण इस मृत्युलोकमें दैवी जगत्का पता प्रायः नहीं लगता है । किसी कल्प अथवा किसी मन्वन्तरमें अथवा किसी मन्वन्तरके किसी किसी विभागमें मृत्युलोक और दैवीलोकका सम्बन्ध बढ़ जाता और किसीमें घट जाता है । इस समय वह सम्बन्ध घटा हुआ है । इस कारण देवता, ऋषि और पितरोंके दर्शन होनेकी तो बातही क्या है, उनपर विश्वास करनेवाले विद्वान् बहुत ही कम पाये जाते हैं । जीवका समष्टि कर्म ही इसका कारण है । आधिभौतिक अंशके रक्षक और चालक जो देवता प्रत्येक ब्रह्माण्डमें होते हैं, वे पितर कहाते हैं । उनके संघ अलग अलग रहते हैं और यद्यपि उनका घनिष्ठ सम्बन्ध इस मृत्युलोकमें वर्णाश्रमश्रृंखला माननेवाली और रजोवीर्यकी शुद्धिसे युक्त आर्यप्रजासे अधिक रहता है, परन्तु वे मनुष्यजातिमात्रपर कृपालु रहते हैं । दूसरी ओर देवलोक और असुरलोककी आधिभौतिक सृष्टिके रक्षक और चालक पितृगण अलग अलग होते हैं । इस कारण पितरोंका माहात्म्य बहुत अधिक है; क्योंकि आधिभौतिक सम्बन्ध सृष्टिमें सबसे अधिक आवश्यकीय होता है । स्थूल शरीर सब लोकोंमें बिना रहे भोगकी निष्पत्ति नहीं होती और सब लोकोंके स्थूल शरीरोंसे पितरोंका सम्बन्ध है; इस कारण पितरोंकी स्तुतिमें उनको देवताओंका नेता कहकर वर्णन किया है । यद्यपि प्रत्येक ब्रह्माण्डमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनोंही ईश्वररूप हैं, परन्तु क्रियाशक्तिके विचारसे भगवान् शिव ऋषिसंघके प्रमुख नेता, भगवान् विष्णु देवसंघके नेता और भगवान् ब्रह्मा पितृसंघके नेता होनेसे उनको ब्रह्माके स्वरूप कहा गया है । यह पहिले ही बार बार कहा गया है कि, मनुपदके पदधारियोंका जन्मवृत्तान्त दैवीलोकसे सम्बन्ध रखता है । कहीं कहीं किसी मनुका जो पूर्वजन्मवृत्तान्त कहा गया है, वह मृत्युलोकका वर्णन है । परन्तु इस

सम्पन्न हो जाता है। यदि श्राद्धके लिये श्रोत्रिय ब्राह्मण न मिले, अथवा श्राद्ध दूषित हो जाय, अथवा अन्यायसे उपार्जित धनके द्वारा श्राद्ध किया जाय, अथवा सविधि श्राद्ध न हो, अथवा उचित काल और उचित देशमें श्राद्ध न किया जाय, अथवा विधिपूर्वक न किया जाय, अथवा श्राद्धके अयोग्य दूषित वस्तुओंसे श्राद्ध किया जाय, अथवा दम्भके साथ या अश्रद्धासे किया जाय, किन्तु श्राद्धकर्ता यदि इस स्तोत्रका पाठ कर ले, तो वही श्राद्ध हमारा तृप्तिकर हो जायगा ॥ १६-२६ ॥ जिस श्राद्धमें हमारा तृप्तिकर यह स्तोत्र पढ़ा जाता है, उस श्राद्धसे बारह वर्षतक हम तृप्त रहते हैं। हेमन्त ऋतुमें इस स्तोत्रका पाठ करनेसे हमारी बारह वर्षोंतक तृप्ति होती है। शीतकालमें इस शुभ स्तोत्रका पाठ करनेसे चौबीस वर्षोंतक हम तृप्त हो जाते हैं। वसन्त अथवा ग्रीष्मकालमें श्राद्धके समय यह स्तोत्र पढ़नेसे हम सोलह वर्षतक तृप्त रहते हैं। वर्षाकालमें श्राद्धके समय, चाहे वह श्राद्ध अङ्गहीन ही क्यों न हो, इस स्तोत्रके पाठ करनेसे हमारी अक्षय्य तृप्ति हो जाती है। शरत् कालके श्राद्धमें पुरुषके द्वारा यदि इस स्तोत्रका पाठ हो, तो पन्द्रह वर्षों तक हमारी तृप्ति होती है। हे रुचे! जिस घरमें यह स्तोत्र लिखा हुआ रक्खा रहता है, उस घरमें श्राद्धके समय हम उपस्थित होते हैं। हे महाभाग! श्राद्धके समय भोजन करनेवाले ब्राह्मणोंके

पुराणमें सब मनुजन्मवृत्तान्त प्रायः दैवीलोककी घटनावली समझना ही उचित है। ऋषियोंसे सम्बन्धयुक्त ब्रह्मयज्ञ है। देवताओंसे सम्बन्धयुक्त देवयज्ञ और सोम, चयन, आप्तोर्याम, वाजपेय आदि नाना वैदिकयज्ञ; रुद्रयाग, विष्णुयाग, विश्वधारकयाग, विश्वम्भरयाग, शक्तियाग आदि अनेक स्मार्तयज्ञ और शतचण्डी आदि अनेक तान्त्रिक यज्ञ हैं। इसी प्रकार पितरोंको प्रसन्न करनेके लिये नित्य पितृयज्ञ, नित्य-नैमित्तिक श्राद्ध, तर्पण आदि अनेक यज्ञ हैं। पितरोंके सम्वर्द्धनके विचारसे ही वेदोक्त और शास्त्रोक्त श्राद्ध-क्रियाकी इतनी महिमा वर्णाश्रमधर्मावलम्बी आर्यगणमें पायी जाती है। उच्च अधिकारी मानवगण, देव पदपर पहुंचे हुए जीवगण और आत्मज्ञानप्राप्त संन्यासी अथवा ज्ञानीगणकी संख्या बहुत कम होती है। वे स्वयं समर्थ होनेके कारण अभ्युदय और निःश्रेयस मार्गमें आगे बढ़ जाते हैं। इस कारण उनको दूसरोंकी सहायताकी इतनी अपेक्षा नहीं रहती। परन्तु साधारण नरनारीमात्रको परलोकमें चलते समय पदपदमें दैवी सहायताकी आवश्यकता होती है। परलोकगामी आत्माओंको इस प्रकारकी सहायता पितृगणकी कृपासे ही प्राप्त हो सकती है। पितृगण बड़े शक्तिशाली देवता हैं। उनकी कृपासे इस लोककी द्रव्यशक्ति, क्रियाशक्ति और मन्त्रशक्ति प्रेतलोक, असुरलोक, देवलोक आदि सब दैवी लोकोंमें जाकर वहां गये हुए हमारे नैमित्तिक पितर पिता, माता, आत्मीय आदिकी विपत्तिसे रक्षा करती है। उन्हें तृप्त करती है, शान्ति देती है और आगे अभ्युदयके लिये सहायता देती है। इस प्रकारकी श्राद्धक्रियामें श्राद्धकर्ताकी श्रद्धाही प्रधान वस्तु है। श्रद्धा और क्रिया ठीक रहनेसे देवपदधारी पितरों-की सहायता विशेष रूपसे मिलती है। इसी कारण वैदिक मतावलम्बी आर्यप्रजामें नित्य और नैमित्तिक श्राद्धकी इतनी महिमा है। श्राद्धविज्ञान विचारशक्ति, योगशक्ति और विज्ञानशक्तिसे सर्वदा परि-पूर्ण है। केवल अश्रद्धालु नास्तिक प्रजा श्राद्धके महत्वको भूल जाती है। ऐसे नित्य पितररूपी देवतागण,

समस्त हमारा पुष्टिकर यह स्तोत्र तुम श्रवण कराया करो। गया, पुष्कर, कुरुक्षेत्र और नैमिषारण्यमें श्राद्ध करनेसे जो फल होता है, इस स्तोत्रके पढ़ने और सुननेसे वही फल प्राप्त होता है। रुचिको इस प्रकार वरदान देकर पितृगणने अपना काम साध लिया। अर्थात् रुचि अब विवाह करेगा, यह जानकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ३०–३७ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका रौच्य मन्वन्तरान्तर्गत पितृवरप्रदान नामक सत्तानबेवां अध्याय समाप्त हुआ।

अट्ठानबेवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयने कहा,—फिर नदीमेंसे एक क्षीण अंगोंवाली, मनको हरण करनेवाली, उच्चकोटिकी प्रम्लोचा नामकी अप्सरा निकलकर रुचिके सम्मुख उपस्थित हुई। उस सुन्दरीने वहाँ आकर अत्यन्त विनयके साथ सुमधुर शब्दोंसे महात्मा रुचिसे कहा,—हे तापसश्रेष्ठ! वरुणपुत्र महात्मा पुष्करसे उत्पन्न हुई अत्यन्त सुन्दरी मेरी एक कन्या है। मैं उस वरवर्णिनीको दान करती हूं। आप उसको पत्नीरूपसे ग्रहण कीजिये। उसके गर्भसे तुम्हें जो पुत्र होगा, वह मनुपदको प्राप्त करेगा ॥ १–४ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—"ठीक है" कहकर रुचिके स्वीकार कर लेनेपर प्रम्लोचा उसी जलमेंसे सुन्दर कान्तिसे युक्त मालिनी नामकी अपनी कन्याको ले आयी। मुनिवर रुचिने उसी नदीके पुलिनमें अनेक महामुनियोंको बुलाकर यथाविधि मालिनीका पाणिग्रहण किया। समय पाकर उसीके गर्भसे महात्मा रुचिके महावीर्यशाली और बुद्धिमान् पुत्र उत्पन्न हुआ, जो रुचिके नामके अनुसार रौच्य नामसे जगत्में विख्यात हुआ। उसके मन्वन्तरमें जो देवता, सप्तर्षि और मनुपुत्र राजन्यगण हुए, उनकी कथा मैं भलीभाँति सुना चुका हूं। इस मन्वन्तरकी कथा सुननेसे श्रोता मानवोंकी धर्मवृद्धि होकर उन्हें आरोग्य, धन, धान्य और पुत्रकी प्राप्ति होती है। हे महामुने! पितरोंका स्तोत्र और पितृगणके गुण श्रवण करनेसे मनुष्योंकी सब कामनाएँ सिद्ध होती हैं ॥ ५–१० ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका रौच्य मन्वन्तरके अन्तर्गत मालिनी-परिणय नामक अट्ठानबेवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

जिनका वर्णन ऊपरके स्तोत्रोंमें आया है और जिनकी प्रसन्नताका अलौकिक लाभ ऊपरके स्तोत्रोंमें वर्णित है, पितृयज्ञ और श्राद्ध तथा तर्पणके द्वारा वे तो प्रसन्न होकर इस स्तोत्रमें वर्णित फल प्रदान करतेही हैं, अधिकन्तु श्राद्ध आदिके द्वारा हमारे परलोकगामी नैमित्तिक पितर पिता-माता-भ्राता-आत्मीय आदि विशेष सहायता, शान्ति और अभ्युदय प्राप्त करते हैं, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है। अन्तर्दृष्टिसम्पन्न योगिगण इसका अनुभव करते हैं ॥ १—३७ ॥

निन्यानबेवाँ अध्याय ।

——:※:——

मार्कण्डेयने कहा,—अब भौत्य मनुकी उत्पत्ति और उसके मन्वन्तरके देवतागण, ऋषिगण तथा मनुपुत्र राजन्यगणका वर्णन करता हूँ, सुनो। मुनिश्रेष्ठ अङ्गिराके भूति नामक एक पुत्र था। वह बड़ा ही क्रोधी, बात बातमें शाप देनेके लिये उद्युक्त होनेवाला और निरपराध व्यक्तियोंको भी कटु उक्तियाँ सुनानेवाला था। उस अति कोपी और तेजस्वी ऋषिके भयसे उसके आश्रममें वायुदेव अति निष्ठुरतासे प्रवाहित नहीं होते थे। सूर्यदेव अपना प्रखर उत्ताप आश्रममें नहीं फैलाते थे। पर्जन्यदेव अति वर्षा कर आश्रममें काँदा-कीचड़ नहीं करते थे और परिपूर्ण चन्द्रमा अपने शीत किरणों द्वारा आश्रममें अधिक ठण्ढक नहीं होने देते थे। उस ऋषिके आज्ञानुसार सब ऋतु अपना क्रम छोड़कर सर्वदा वृक्षोंमें फल फूल उत्पन्न करते थे। आश्रमके निकटसे बहनेवाला जल महात्मा भूतिके भयसे उनकी इच्छा होते ही उनके कमण्डलुमें भर जाता था। हे विप्र! अत्यन्त क्रोधी वे मुनि बहुत क्लेश सहन नहीं कर सकते थे। यह सब होते हुए भी वे सन्तानहीन थे। इसलिये उन्होंने तपस्या करनेका निश्चय किया और वे पुत्रकी कामनासे परिमित आहार करते तथा शीत, उष्ण, वायु आदिके क्लेशोंको सहते हुए तपस्या करने लगे ॥ १-६ ॥ हे महामुने! उनकी तपस्याके समय न तो चन्द्रमा शीत किरणोंसे शीत फैलाता, न सूर्य प्रखर उत्तापसे उत्तापित होता और न वायु प्रबल वेगसे प्रवाहित ही होता था। वे श्रेष्ठ मुनि भूति शीतोष्णादि अनेक द्वन्द्वोंको सहन करके भी अभिलषितकी सिद्धिके बिना ही तपस्यासे पराङ्मुख हो गये। उनका सुवर्चा नामक एक भाई था; जिसने अपने आरम्भ किये हुए यज्ञमें भूतिको निमन्त्रित किया। तब उन्होंने यज्ञमें सम्मिलित होनेका निश्चय कर अपने शान्ति नामक शिष्यको, जो परम बुद्धिमान्, प्रशान्त, अक्षके समान विनीत भावसे गुरुकार्यमें निरन्तर उद्यत, शुभाचारवान्, उदार और मुनिश्रेष्ठ था, बुलाकर कहा,—हे शान्ते! भाई सुवर्चाके निमन्त्रणसे मैं उसके यज्ञमें सम्मिलित होने जा रहा हूं। अब तुम्हें यहाँ रहकर क्या करना चाहिये, वह कहता हूं, सुनो। तुम मेरे आश्रममें अग्निको निरन्तर जगाये रहना और वह कभी शान्त न हो, इसकी सावधानी रखना ॥ ७-१४ ॥ मार्कण्डेय बोले,—गुरुकी आज्ञा सुनकर शान्तिने कहा,—ऐसा ही होगा। तत्पश्चात् भूति अपने छोटे भाईके आरम्भ किये हुए यज्ञमें सम्मिलित होनेके लिये चले गये। उनके चले जानेपर एक दिन महात्मा शान्ति गुरुके

अग्निका संवर्द्धन करनेके लिये वनमें समिधा तथा फल-फूल लाने चला गया और गुरु-भक्तिके वशवर्ती होकर गुरुके अन्य कार्य भी करता आया। वनसे लौट आकर वह क्या देखता है कि, आश्रमके कुण्डका अग्नि शान्त हो गया है। अब तो महामति शान्ति बहुत ही दुःखित हुआ और भूतिके भयसे भीत होकर बड़ी चिन्तामें पड़ गया। वह सोचने लगा कि, अब क्या करूँ? अब यहाँ गुरुदेवका आगमन कैसे होगा? इस समय मुझे क्या करना चाहिये और क्या करनेसे अच्छा होगा? यदि गुरुदेव अभी आकर यहाँ अग्निको शान्त हुआ देखेंगे, तो मुझे बड़े ही सङ्कटमें पड़ना होगा। यदि इस अग्निके स्थानमें मैं दूसरा अग्नि स्थापित कर दूँ, तो अन्तर्ज्ञानी गुरुदेव जान लेंगे और तब निःसन्देह मुझे भस्म कर देंगे। मैं ऐसा पापी हूं कि, गुरुका मुझपर कोप होगा और वे मुझे शाप देंगे, इसके लिये मैं अपने विषयमें शोक नहीं करता; किन्तु शोक इस बातका है कि, गुरुके निकट मैं पाप करूँगा। अपने अग्निको शान्त हुआ देखकर गुरुदेव मुझे अवश्य ही शाप देंगे अथवा अग्निदेव ही मुझपर क्रुद्ध हो जायंगे। अर्थात् मुनिके भयसे अग्निदेव ही मुझे शाप दे देंगे। क्योंकि गुरुदेवका प्रभाव ही असाधारण है। जब कि, देवता उनके प्रभावसे भयभीत होकर उनके शासनके अधीन हो रहे हैं, तब मुझे अपराधी देखकर वे कौनसा दण्ड न देंगे? मार्कण्डेयने कहा,—गुरुके भयसे भीत वह श्रेष्ठ बुद्धिमान् शान्ति इस प्रकार चिन्ता करता हुआ जातवेदा (जिससे वेदोंका आविर्भाव हुआ है) अग्निदेवके शरणापन्न हुआ। वह मनको काबूमें लाकर एकाग्र चित्तसे भूमिपर घुटने टेककर और हाथ जोड़कर सात शिखाओंसे युक्त अग्निदेवकी स्तुति करने लगा। शान्तिने कहा,—जो समस्त जीवोंके कारण स्वरूप हैं, महान् आत्मा हैं, एक, दो और पञ्च स्वरूप हैं और राजसूय यज्ञमें छः मूर्तियोंको धारण करते हैं, उन अग्निदेवको नमस्कार करता

टीका—नदीसे अप्सराका निकलना, वरुणदेवके द्वारा अप्सरासे सन्तति होना, यह सब दैवी सृष्टिका ही विषय है, इसमें सन्देह नहीं। अप्सराएं भी देवयोनि हैं। अप्सराओं और देवियोंमें भेद इतना है कि, देवियां देवताओंकी शक्ति होती हैं और जो देवी जिस देवताकी शक्ति होती है, वह उससे कदापि अलग नहीं रहती। धर्मविचारसे वे सती होती हैं और अपने देवमें तन्मय रहती हैं। परन्तु अप्सराएं ऐसी नहीं होतीं। वे दैवीशक्तिसम्पन्न होनेपर भी पुरुषान्तरसेविनी होती हैं। यहांतक कि, स्वर्गगामी आत्माओंको स्वर्गसुख भोगनेके निमित्त अप्सराएं मिलती हैं। येही दो भेद स्वर्गकी स्त्रियोंमें दो अलग अलग स्त्रीश्रेणियोंको सिद्ध करते हैं। अप्सराओंसे जो सन्तति होती है, वह पृथ्वीकी सृष्टिके ढंगपर नहीं होती। दैवी सृष्टिके लिये मृत्युलोककी तरह कालकी आवश्यकता नहीं होती। उस सृष्टिमें शरीरबलसे मनोबलकी अधिकता रहती है। दैवी सृष्टि तुरन्त हो जाती है। भूलोककी वेश्याओंकी तरह अप्सराएं अपवित्र और भ्रष्ट नहीं होतीं, क्योंकि वे दैवीशक्तिसम्पन्न होती हैं॥ ५—१७॥

अध्याय ९८।

हूं। जो समस्त देवताओंको वृत्ति (जीविका) देते हैं, जो अत्यन्त तेजस्वी हैं और जो सम्पूर्ण जगत्‌के स्थितिस्थापक हैं, शुक्ररूपी उन अग्निदेवको नमस्कार करता हूं। हे अग्निदेव! तुम देवताओंके मुखस्वरूप हो। तुम्हारे द्वारा भगवान् घृतपान करके समस्त देवताओंको सन्तुष्ट करते हैं। तुम सब देवताओंके प्राणस्वरूप हो। तुम्हारेमें हवनीय द्रव्य हुत होनेपर निर्मल मेघके रूपमें परिणत हो जाता है और फिर वह जल बन जाता है। हे वायुदेवके मित्र! उसी जलकी वर्षासे सब प्रकारकी औषधियाँ उत्पन्न होती हैं और उन्हीं औषधियोंसे जीव सुखपूर्वक जीवित रहते हैं॥ २७-३१॥ हे पावक! मनुष्यगण तुम्हारी उत्पन्न की हुई औषधियोंसे यज्ञ करते हैं और उन्हीं यज्ञोंके द्वारा देवता, दैत्य और राक्षसगण तृप्त होते हैं। हे हुताशन! तुम उन सब यज्ञोंके आधार स्वरूप होनेसे, हे वह्ने! तुम सबके उत्पादक और सर्वमय हो। हे पावक! देवता, दानव, यक्ष, दैत्य, गन्धर्व, राक्षस, मनुष्य, पशु, वृक्ष, मृग, पक्षी और सरीसृप आदि तुम्हारे द्वारा ही तृप्त होते हैं। वे सदा तुमसे सम्बन्धयुक्त होते हैं। तुम्हींसे उत्पन्न होते और अन्तमें तुम्हारेमें ही विलीन हो जाते हैं। हे देव! तुम जलकी सृष्टि करते हो और फिर उसको पी जाते हो। तुम उस पानीको पचा डालते हो, जिससे वह सब प्राणियोंके लिये पुष्टि-कारक होता है। हे भगवन् अग्ने! तुम देवगणमें तेजके रूपमें, सिद्धगणमें कान्तिके रूपमें, नागगणमें विषके रूपमें और पक्षियोंमें वायुके रूपमें रहा करते हो। हे देव! तुम मनुष्योंमें क्रोधके रूपमें, पृथ्वीमें काठिन्यके रूपमें और जलमें द्रवत्वके रूपमें अवस्थित होते हो। तुम वायुमें वेगके रूपमें और आकाशमें व्यापित्वके रूपमें निवास करते हो। हे अग्ने! तुम सब जीवोंका पालन करते हुए उनके अन्दर विचरण किया करते हो। मनीषी लोग तुम्हारा एक रूपमें वर्णन करते हैं और त्रिविध रूपमें भी॥ ३२-४०॥ कविगणने तुम्हारी आठ रूपोंमें कल्पना कर आद्य यज्ञकी कल्पना की है। महर्षिगणका कथन है कि, तुमसे ही समस्त जगत् उत्पन्न हुआ है। हे हुताशन! तुम्हारे बिना सारी सृष्टिका क्षणभरमें विनाश हो जायगा। ब्राह्मणगण तुम्हारी हव्य-कव्य आदि द्वारा पूजा कर स्वधाकार और स्वाहाकार करते हैं, जिससे उन्हें स्वकर्मसे प्राप्त होनेवाली उत्तम गति मिलती है। हे देवपूजित अग्निदेव! प्राणियोंकी परिणामिनी अवस्थामें अर्थात् उनकी अन्तिम अवस्थामें तुमसे अत्युग्र अग्निशिखाएँ उत्पन्न होकर समस्त जीवोंको दग्ध कर देती हैं। हे महाद्युतिसम्पन्न जातवेदः! यह सब विश्व तुम्हारी ही सृष्टि है। हे अनल! समस्त वैदिक कर्म और सर्वभूतात्मक जगत् तुम्हारे अधीन है। हे पिङ्गाक्ष अनल! तुम्हें नमस्कार करता हूं। हे पावक! तुम्हें प्रणाम करता हूं। हे हव्यवाहन! तुमको प्रणिपात करता हूं। तुम ही खाये-पीये हुए द्रव्योंके पाचन करनेवाले विश्वपावक हो। तुम ही कृषिको परिपक्व

करनेवाले और जगत्को पुष्ट करनेवाले हो । तुम ही मेघ, वायु, शस्यके उत्पन्न करनेवाले बीज और सब भूतोंके पोषण करनेवाले भूत, भविष्यत् और वर्तमान स्वरूप हो । तुम ही सब भूतोंके ज्योतिःस्वरूप और तुमही आदित्य स्वरूप सूर्य हो । तुमही दिन, रात्रि और दोनोंके बीचकी संध्याएँ हो । हे वह्ने ! तुम ही हिरण्यरेता और सुवर्णको उत्पन्न करनेवाले हो । तुम हिरण्यगर्भ और सुवर्णके समान प्रभासे युक्त हो । तुमही मुहूर्त्त, क्षण, त्रुटि और लव हो । हे जगत्प्रभो ! तुम ही कला, काष्ठा, निमेष आदि रूपोंसे परिमाणात्मक अनन्त काल हो । हे प्रभो ! तुम्हारी जो कालको नियन्त्रण करनेवाली काली नामकी जिह्वा है, हे देव ! वह पापोंसे, भयसे और ऐहिक महाभयसे हमारी रक्षा करे । महाप्रलयकी कारणस्वरूप कराली नामकी जो तुम्हारी जिह्वा है, वह ऐहिक महाभय और पापोंसे हमारी रक्षा करे ॥ ४१–५३ ॥ लघिमा नामक सिद्धिको देनेका जिसमें गुण है, वह तुम्हारी मनोजवा नामकी जिह्वा हमारी ऐहिक महाभय और पापोंसे रक्षा करे । तुम्हारी जो सुलोहित नामकी जिह्वा है, जो प्राणिमात्रकी कामनाओंको पूर्ण करती है, वह ऐहिक महाभय और पापोंसे हमारी रक्षा करे । जो सुधूम्रवर्णा नामकी तुम्हारी जिह्वा है, जिससे प्राणियोंके सब रोग दग्ध हो जाते हैं, वह ऐहिक महाभय और पापोंसे हमारी रक्षा करे । तुम्हारी स्फुलिङ्गिनी नामकी जो जिह्वा है, जिससे सब मूल द्रव्य उत्पन्न होते हैं, वह हमारी ऐहिक महाभय और पापोंसे रक्षा करे । तुम्हारी विश्वा नामकी जिह्वा, जो प्राणियोंका मंगल साधन करती है, वह ऐहिक महाभय और पापोंसे हमारी रक्षा करे । हे हुताशन ! तुम्हारे नेत्र पिङ्गलवर्ण, ग्रीवा लोहितवर्ण और देहावयव कृष्णवर्णके हैं । तुम हमें सब दोषोंसे बचाओ और इस संसारसे हमारा उद्धार करो । हे वह्ने ! तुम सप्तर्चि, हव्यवाहन, कृशानु, अग्नि, पावक, शुक्र आदि नामोंसे वर्णित होते हो । तुम हमपर प्रसन्न हो । हे अग्ने ! तुम समस्त भूतोंके सामने समुद्भूत हुए हो; अतः हे विभावसो ! हे अव्यय ! हे हव्यवाह ! तुम्हारी हम स्तुति करते हैं । हमारी स्तुतिसे तुम प्रसन्न हो । हे वह्न ! तुम्हारा क्षय हो नहीं सकता । तुम्हारे स्वरूपका विचार करना असम्भव है । तुम समृद्धिशाली, असह्य और अतितीव्र हो । मूर्तिमान् होनेपर तुम ऐसे बलवान् हो जाते हो कि, अव्यय और भीमरूपी यह सब जगत् नाश हो जाता है । हे हुताशन ! तुम उत्तम सत्त्व और समस्त प्राणियोंके हृदयकमल हो । तुम सबके उपास्य और अनन्त ब्रह्मस्वरूप हो । तुम ही ब्रह्मस्वरूप होकर इस चराचर विश्वको व्याप्त करके स्थित हो । तुम एकही होकर अनेक रूपोंसे इस संसारमें अवस्थान कर रहे हो ॥५४—६३॥ हे अनल ! तुम अक्षय होकर भी पर्वतों और वनोंसे भरी हुई इस वसुन्धराके स्वरूप हो । तुम चन्द्र-सूर्य आदिसे युक्त नभःस्वरूप और दिन-रात्रिप्रभृति अखिल

कालस्वरूप हो। तुम ही महासमुद्रमें वड़वाग्नि हो और अपनी परम विभूतिद्वारा सब किरणोंमें रहा करते हो। हे हुताशन! तुम हुत हवनीय द्रव्यको भक्षण करते हो यह जानकर नियम परायण महर्षिगण महायज्ञमें तुम्हारी पूजा करते हैं। तुम उनसे स्तुत होकर जगत्के मंगलके लिये सोमरस और वषट्कार सहित सब हवनीय द्रव्योंका पान करते हो। सब वेदाङ्गोंमें तुम्हारा गान गाया गया है और यज्ञपरायण द्विजश्रेष्ठगण तुम्हारे लिये ही निरन्तर वेदाङ्गोंका अध्ययन किया करते हैं। तुम यजनपरायण ब्रह्मा हो, तुम महाविष्णु और तुम ही भूतनाथ महादेव हो। सुरपति इन्द्र, अर्यमा, जलेश्वर वरुण, सूर्य और चन्द्र भी तुम ही हो। सुर और असुरगण सभी हव्यके द्वारा तुम्हें सन्तुष्ट कर अपने इच्छित फलको प्राप्त करते हैं। अशुद्ध मन्त्रोंसे दिये हुए दूषित द्रव्योंको भी तुम अपनी लौसे पवित्र कर देते हो। सब स्नानोंमें भस्मस्नान श्रेष्ठ है। इस कारण मुनिगण

टीका:—देवताओंमें भी वर्णव्यवस्था है। अग्निदेवता ब्राह्मण हैं और बड़े उच्चकोटिके देवता हैं। अग्निके आधिभौतिक स्वरूप अनेक हैं। क्रिया और शक्तिके भेदसे ये सब भेद माने गये हैं। स्थूल क्रिया और शक्तिके विचारसे पुनः अनेक अलग अलग भेद अग्निके होते हैं। स्थूल अग्निके भेद, यथा:—बड़वानल, दावानल, साधारण अग्नि, यज्ञका अग्नि इत्यादि। सूक्ष्म भेदके विचारसे वैद्युतिक अग्नि, जठराग्नि, इत्यादि। इसी प्रकार अग्निका अधिदैवस्वरूप समझनेके लिये अग्निलोकवासी अग्निदेवता ही समझने योग्य हैं। इस प्रकार अग्निका अधिदैवस्वरूप और अधिभूतस्वरूपका दिग्दर्शन किया गया। अग्निदेवका अध्यात्मस्वरूप बहुत ही गम्भीर विज्ञानसे युक्त है। यह अग्नि ही जगत्प्रतिष्ठाका कारण है। परमाणुसे लेकर प्रत्येक ब्रह्माण्डके ग्रह उपग्रहतक यही अग्नि सब शक्तियोंका समन्वय करके जगत्की प्रतिष्ठाका कारण बनता है। एक पत्थरका टुकड़ा जब पत्थर बना था, तब आकर्षण शक्तिद्वारा पत्थरके उपयोगी परमाणु आकर्षित हुए थे; वह जब पत्थर लयको प्राप्त होगा, तो विकर्षणशक्ति द्वारा वे परमाणु बिखर जायंगे। परन्तु पत्थरकी धर्म (अस्तित्व) रक्षक यही शक्ति आकर्षण-विकर्षणकी समता रखकर उस पत्थरके स्वरूपकी रक्षा करती है। उसी प्रकार अनन्त ग्रह-उपग्रहोंमें आकर्षण और विकर्षणके समन्वयकी रक्षा करनेवाली महाशक्ति जगत्की प्रतिष्ठा करती है। इसी प्रकार जीवोंके अन्तःकरणोंमें रागरूपी आकर्षण और द्वेषरूपी विकर्षण दोनों शक्तियोंके समन्वयद्वारा चित्तवृत्ति-निरोध होनेपर आत्मा अपने स्वरूपमें अधिष्ठित होता है। इस कारण वही अग्नि जगत्की प्रतिष्ठारूपी है। वस्तुतः ऐसे अग्निका स्वरूप वाणी, मन और बुद्धिसे अतीत होने पर भी केवल ज्ञानगम्य है। विश्वधारक अग्नि साधारण और विशेषरूप धारण करके साधारण और विशेष धर्मोपाधिको प्राप्तकर स्थावर-जङ्गमात्मक सृष्टिको धारण करता है। यही उस अग्निका अध्यात्मस्वरूप है। अग्निके स्वरूपको समझनेके लिये यह भी कह सकते हैं कि, वह महाशक्ति जो जीवमात्रको, जैसे सूर्यदेव वाष्पराशिको नियमित रूपसे अपनी ओर आकर्षित करते हैं, उसी प्रकार ब्रह्मस्वरूपकी ओर नित्य नियमपूर्वक आकर्षित करती है, उसीका नाम तेज है। वह भगवत्-तेज ही अग्निरूपसे अभिहित होता है। वही रूपान्तरसे विश्वधारक धर्म शब्द-वाच्य है और वही अग्निदेवताका अध्यात्मस्वरूप समझनेके लिये सूत्ररूप है। इस अध्यात्म

सन्ध्यावन्दनके समय भस्मस्नान किया करते हैं। हे वह्ने! इसीसे तुम शुचि नामको धारण किये हो। उसी नामके नाते तुम हमपर प्रसन्न हो। तुम विमल और अतिप्रबल वायुस्वरूप हो; इस कारण उसी रूपमें मुझपर प्रसन्न हो। हे पावक! तुम वैद्युताग्नि आदि नामोंसे कीर्तित होते हो; अतः उसी तरह तुम प्रसन्न हो। हे हव्याशन! तुम प्रसन्न हो और हमारी रक्षा करो। हे वह्ने! तुम्हारा जो मङ्गलमय रूप है और तुम्हारी जो सात जिह्वायें हैं, हे देव! हमसे स्तुत होकर उनके द्वारा, पिता जिस तरह पुत्रकी रक्षा करता है, उसी तरह तुम हमारी रक्षा करो॥ ६४ – ७०॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका भौत्यमन्वन्तरान्तर्गत अग्निस्तोत्र नामक निन्यानवेवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

विज्ञानमें बुद्धिभेद न हो, इस कारण कहा जाता है कि, जीवके धर्माधर्मके फलदाता होनेके कारण भगवान् यम धर्मराज कहाते हैं और धर्मकी धारिकाशक्तिके नियामक होनेसे भगवान् अग्निदेव कहाते हैं। कर्मके द्वारा ही जीवको शुभाशुभ फलप्राप्ति होती है। पुण्यकर्म शुभप्रद और पापकर्म अशुभप्रद होता है। ये ही दोनों कर्म धर्म और अधर्म बनजाते हैं। मनुष्योंके समष्टिधर्मके कार्यके अनुसार ही देशका शुभ होता है। धर्म और यज्ञ पर्यायवाचक शब्द हैं। इस कारण यज्ञके द्वारा ही देशमें उत्तम वृष्टि होती है। यही यज्ञसे वृष्टि होनेका रहस्य है। यज्ञके भी पुनः अनेक भेद हैं,—यथाः—दानयज्ञ, तपोयज्ञ, कर्मयज्ञ, योगयज्ञ, ज्ञानयज्ञ, वैदिकयज्ञ, स्मार्तयज्ञ, तान्त्रिकयज्ञ इत्यादि। यज्ञके इस विस्तृत स्वरूपके अनुसार अनार्य देशोंमें भी यज्ञ ही वृष्टिका कारण बनता है। अग्निदेवता उस यज्ञशक्तिको देवलोकमें पहुंचाते हैं और देवताओंको तृप्त करते हैं। वैदिक यज्ञमें अग्निदेवका प्राधान्य तो प्रत्यक्ष ही है। उसी यज्ञशक्तिसे संवर्द्धित होकर देवराज इन्द्र अपने माण्डलिक राजाओंके द्वारा यथायोग्य रूपसे पृथ्वीपर पर्जन्यकी वर्षा कराते हैं। यज्ञके इस अलौकिक स्वरूपके साथ अग्निदेवके मुखका भी अलौकिक सम्बन्ध विद्यमान है। वैदिक यज्ञमें आहुति उनके मुखमें ही दी जाती है। ऐसे देवताओंमें ब्राह्मणरूप अग्नि सृष्टिमात्रके रक्षक हैं, पालक हैं और सर्वमान्य हैं। अग्निदेवका अध्यात्मस्वरूप, अधिदैवस्वरूप और अधिभूतस्वरूप ये तीनों ही अलग अलग स्वरूप समझनेके लिये पदार्थ-विद्या-शक्ति, योगशक्ति और ज्ञानशक्तिकी कैसी आवश्यकता है, वह ऊपरके विज्ञान और इस अग्निस्तोत्रके अति चमत्कारपूर्ण रहस्योंसे प्रमाणित होता है। भगवान् अग्निके मुख और सप्त जिह्वाओंके मौलिक विज्ञानका अनुसन्धान करनेपर उनकी सर्वव्यापक शक्तिका पता लगता है। इस स्तोत्रोक्त विज्ञानका मनन करनेसे वेद और शास्त्रोक्त यज्ञके गुरुत्वका कुछ कुछ पता लग जाता है। यज्ञके सम्बन्धसे भस्मकी महिमा भी भगवान् अग्निदेवकी महिमाके साथ प्रमाणित होती है। स्नान आठ प्रकारके शास्त्रोंमें कहे गये हैं। यथाः—जलस्नान, मन्त्रस्नान, मानसस्नान, भस्मस्नान आदि। उनमेंसे यज्ञशेषका सम्बन्ध होनेके कारण भस्मस्नानकी महिमा इस स्तोत्रमें कही गयी है॥ १—७०॥

सौवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयने कहा,—हे मुने! शान्तिके इस प्रकार स्तवन करनेपर भगवान हव्यवाहन अग्नि ज्वालामालाओंसे परिवेष्टित होकर उसके सामने आविर्भूत हुए। हे द्विज! अग्निदेव शान्तिकृत स्तोत्रसे प्रसन्न होकर उस विनम्र शान्तिसे मेघगम्भीर वाणीसे बोले,—हे विप्र! तुमने भक्तिपूर्वक जो मेरी स्तुति की है, उससे मैं बड़ा प्रसन्न हुआ हूं। मैं तुम्हें वर प्रदान करता हूं, तुम जो चाहो, वह वर मांग लो। शान्तिने कहा,—हे भगवन्! आपको मूर्तिमान देखकर कृतकृत्य हुआ हूं। अब मैं भक्तिसे विनम्र होकर निवेदन करता हूं, आप श्रवण कीजिये। हे देव! हमारे आचार्य अपने भाईके यज्ञमें सम्मिलित होनेके लिये आश्रमसे चले गये हैं। अब वे लौट आकर आश्रमके अग्नि-कुण्डको आपसे शून्य देखेंगे। हे विभावसो! मेरे अपराधसे आपने जो अग्निकुण्ड त्याग दिया है, गुरुदेवके आनेपर वे उसे पहिलेकी तरह आपसे युक्त देखें। हे देव! यदि आप मुझपर प्रसन्न हुए हैं, तो मेरी दूसरी प्रार्थना यह है कि, मेरे सन्तानहीन गुरुदेवको विशिष्ट गुणशाली पुत्रकी प्राप्ति हो और उस पुत्रपर उनका जैसा मोह होगा, वैसा ही समस्त प्राणियोंपर भी हो। हे अव्यय! आप मुझपर प्रसन्न हुए हैं यह जानकर जो कोई इस स्तोत्रका पाठ करेगा, मुझसे प्रसन्न हुए आप उसे इस स्तोत्रका पाठ करनेसे वरदान देवें ॥ १-९॥ मार्कण्डेयने कहा,—अग्निदेव द्विजश्रेष्ठ शान्तिकी गुरुभक्ति और स्तोत्रके पाठसे सन्तुष्ट होकर उससे बोले,—हे ब्रह्मन्! तुमने अपने गुरुके लिये तो दो वर मांग लिये; किन्तु अपने लिये कोई याचना नहीं की, इससे मैं बड़ा ही प्रसन्न हुआ हूं। गुरुके लिये तुमने जो कुछ मांगा है, वह अवश्य सम्पन्न होगा। प्राणिमात्रके प्रति उनका प्रेम होगा और उन्हें पुत्रकी प्राप्ति भी होगी। तुम्हारे गुरुको परम बुद्धिमान्, बड़ा बलवान् और महावीर्यवान् भौत्य नामक पुत्र होगा, जो मन्वन्तराधिपति कहावेगा। इसी तरह भक्ति-भावसे जो इस स्तोत्रका पाठ करेगा, उसकी सब कामनाएं सफल होंगी और वह पुण्य सञ्चय भी कर सकेगा। यज्ञमें, पर्वकालमें, तीर्थस्थानमें और होम करते समय धर्मप्राप्तिके हेतु जो इस स्तोत्रको पढ़ेगा, उसे ऐश्वर्य और आरोग्यकी प्राप्ति होगी तथा इसके श्रवणसे दिन और रात्रिके किये हुए पाप कट जायँगे। यह स्तव मेरे लिये अति सन्तोषप्रद है। होमकाल बीत जाने था अनधिकारीके द्वारा होम आदि कार्योंके होनेसे जो दोष होता है, वह इस स्तोत्रके सुननेसे उसी क्षण दूर हो जाता है। मेरे इस

श्रेष्ठ स्तवको पौर्णिमा, अमावास्या अथवा पर्वकालमें श्रवण करनेसे मनुष्योंके सब पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १०-१६ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—हे मुने! वायुके झखोरेसे दीपककी ज्योति जैसी सहसा निवृत्त हो जाती है, वैसे ही भगवान् अग्निदेव यह सब कहकर देखते-देखते वहाँ अन्तर्हित हो गये। अग्निके अन्तर्हित होनेपर शान्तिने हर्षसे रोमाञ्चित होकर गुरुके आश्रममें प्रवेश किया। वहाँ जाकर जब उसने गुरुके अग्निकुण्डमें अग्निको पहिलेकी तरह प्रज्वलित देखा, तब तो उसे बहुत ही प्रसन्नता हुई। इतनेमें उस महात्मा शान्तिके गुरु भी अपने कनिष्ठ भ्राताके यज्ञसे निवृत्त होकर आश्रममें लौट आये। शिष्यने आगे बढ़कर उनका पादवन्दन किया। गुरुने शिष्यकी पूजा ग्रहण कर और उसके बिछाये हुए आसनपर बैठकर कहा,—हे वत्स! तुम्हारे तथा अन्यान्य समस्त प्राणियोंके प्रति मेरे हृदयमें स्नेह उत्पन्न हो रहा है। यह क्यों हो रहा है, मैं समझ नहीं सकता। हे वत्स! यदि इसका रहस्य तुम जानते हो, तो मुझसे शीघ्र कहो। हे महामुने! तदनन्तर उस शान्ति नामक विप्रने अग्निलोप आदिकी समस्त घटना आचार्यसे निवेदन की। हे महामुने! वह सब वृत्तान्त श्रवण कर स्नेहार्द्रनयन होकर भूतिने शिष्यको आलिङ्गन किया और साङ्गोपाङ्ग वेद उसे प्रदान किये। फिर भूतिके भौत्य नामक पुत्र हुआ, जिसने मनुपदको प्राप्त किया। उस विख्यातकर्मा भावी मनुके मन्वन्तरमें जो देवता, ऋषि, राजा और इन्द्र होंगे, उनके विषयमें मैं अब सब कुछ कहता हूं, सुनो। चाक्षु, कनिष्ठ, पवित्र, भ्राजिर और धारावृक, ये पांच प्रकारके उस समय देवगण होंगे। समस्त इन्द्र-गुणोंसे युक्त, महाबली और महावीर्यशाली शुचि नामक इन्द्र होंगे ॥ २०-३० ॥ आग्नीध्र, अग्निबाहु, शुचि, मुक्त, माधव, शक्र और अजित नामक सात सप्तर्षि होंगे और गुरु, गभीर-ब्रध्न, भरत, अनुग्रह, स्त्रीमानी, प्रतीर, विष्णु, संक्रन्दन, तेजस्वी और सबल ये सब उस भौत्य मनुके पुत्र राजा होंगे। इस प्रकार मैंने तुमसे चौदह मनुओंका क्रमशः वर्णन किया है। हे मुनिसत्तम! इन मन्वन्तरोंका वृत्तान्त श्रवण करनेसे मनुष्य पुण्यसञ्चय करनेमें समर्थ होते हैं और उनका वंश कभी क्षयको प्राप्त नहीं होता। पहिले मन्वन्तर (स्वायम्भुव) की कथा सुननेसे मनुष्यको धर्मकी प्राप्ति होती है। द्वितीय स्वारोचिष मन्वन्तरकी कथा सुननेसे सब कामनाओंकी सिद्धि होती है। तृतीय उत्तम मनुकी कथा सुननेसे धनकी प्राप्ति, चतुर्थ तामस मन्वन्तरकी कथा सुननेसे ज्ञानका लाभ, पञ्चम रैवत मन्वन्तरकी कथा सुननेसे बुद्धि और सुन्दरी

टीकाः—अग्निदेवका अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत तीनोंरूपोंका स्वतन्त्र रूपसे पहिले दिग्दर्शन कराया गया है। इस समय जो रूप प्रकट हुआ था और जो अन्तर्हित हुआ, वह उनका अधिदैव रूप है। वैदिक विज्ञानकी यही पूर्णता है कि, वह इन तीनों विज्ञानोंसे पूर्ण है और उसमें सूक्ष्म दैवी जगत्की सत्यता और प्रधानता मानी गयी है ॥ २०-२९ ॥

स्त्रीकी प्राप्ति, छठे चाक्षुष मन्वन्तरकी कथा सुननेसे मनुष्योंको आरोग्यका लाभ होता है। सातवें वैवस्वत मन्वन्तरकी कथा सुननेसे बलकी प्राप्ति, आठवें सूर्य्यसावर्णिक मन्वन्तरकी कथा सुननेसे गुणवान् पुत्र-पौत्रका लाभ, नवम ब्रह्मसावर्णिक मन्वन्तरकी कथा सुननेसे माहात्म्यवृद्धि, दशम धर्मसावर्णिक मन्वन्तरकी कथा सुननेसे मङ्गल और ग्यारहवें रुद्रसावर्णिक मन्वन्तरकी कथा सुननेसे सुमति और जयकी प्राप्ति होती है। हे नरोत्तम! बारहवें दक्षसावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके श्रवणसे मनुष्य ज्ञातियोंमें श्रेष्ठ और गुणयुक्त होता है। तेरहवें रौच्य मन्वन्तरकी कथा सुननेसे मनुष्य शत्रुबलको जीतनेमें समर्थ होता है और चौदहवें भौत्य मन्वन्तरकी कथाके श्रवण करनेसे देवप्रसाद, अग्निहोत्रका फल और गुणयुक्त पुत्रकी प्राप्ति होती है ॥ ३१—४० ॥ हे मुनिसत्तम! जो मनुष्य स्वायम्भुव मन्वन्तरसे लेकर सब मन्वन्तरोंकी कथा क्रमशः सुनते हैं, उनको जो फल प्राप्त होता है, वह सुनो। हे विप्र! उस उस मन्वन्तरके देवगण, ऋषिगण, पितृगण, मनुपुत्र नृपतिगण और उनके वंशोंका वृत्तान्त श्रवण करनेसे मनुष्योंके सब पाप नष्ट होते हैं और देवगण, ऋषिगण, इन्द्र, नृपगण और अन्य जो मन्वन्तरके अधिपति हों, वे सब प्रसन्न होते हैं। उनके प्रसन्न होनेसे अच्छी बुद्धि प्राप्त होती है। अच्छी बुद्धि प्राप्त होनेपर उत्तम कर्म करनेसे जबतक चौदह इन्द्रोंका अस्तित्व रहेगा, तबतक मनुष्यको शुभगति प्राप्त होती रहेगी। क्रमशः मन्वन्तरोंकी स्थिति श्रवण करनेसे सब ऋतु कल्याणकर होते हैं और सब ग्रह सौम्य हो जाते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ४१—४५ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका चतुर्दशमन्वन्तरकथन
नामक सौवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एकसौएकवां अध्याय।

क्रौष्टुकिने कहा,—भगवन्! आपने मन्वन्तरोंकी स्थितिके सम्बन्धमें सब बातें अच्छी तरह समझा कर कहीं और मैंने भी क्रमशः विस्तृत रूपसे आपसे समझ ली हैं।

टीकाः—वेद और पुराणादि शास्त्रोंमें फलश्रुतिके रहस्यके विषयमें अनेक प्रकारकी शंकाएं हुआ करती हैं। ऐसी शंकाओंका सुगम समाधान यह है कि, नित्य शब्दब्रह्मरूपी वेद अथवा उनके आश्रयसे प्रकट होनेवाले समाधिभाषा आदिके शास्त्रीय शब्द अन्तर्जगत्रूपी सूक्ष्म दैवीराज्यसे साक्षात् सम्बन्धयुक्त होते हैं। कार्य-कारणसम्बन्धसे उनमें दैवीशक्ति विद्यमान रहती है। इसी दैवीशक्तिकी श्रेणीको लक्ष्यमें रखकर रुचि उत्पादक फलश्रुति कही जाती है ॥ २६—४५ ॥

हे विप्रवर! अब ब्रह्मासे लेकर सब राजाओंके वंशका वृत्तान्त सुनना चाहता हूं; अतः हे भगवन्! उसका आप भलीभांति वर्णन कीजिये। मार्कण्डेय बोले,—हे वत्स! जगत्के मूल प्रजापति ब्रह्मासे लेकर समस्त राजाओंके जन्मवृत्तान्त और चरित मैं कहता हूं, तुम सुनो। अब तक जो राजवंश हुए, वे अनेक यज्ञ करनेवाले, रणमें विजय पाये हुए और धर्मात्मा सैंकड़ों राजाओंसे अलंकृत हुए हैं। उन महात्मा नरेन्द्रोंके जन्म-वृत्तान्त और चरित सुननेसे मनुष्योंके सब पाप कट जाते हैं ॥ १–५ ॥ जिस वंशमें मनु, इक्ष्वाकु, अनरण्य, भगीरथ और ऐसे ही अन्यान्य सैंकड़ों धर्मज्ञ, यज्ञ करनेवाले, शूर और परम ज्ञानी भूपालोंने जन्म ग्रहण कर उत्तम रीतिसे पृथ्वीका पालन किया, उसका वृत्तान्त सुननेसे मनुष्योंका पापसमूह नष्ट हो जाता है। अतः पहिले इसी वंशका विषय श्रवण करो। वटवृक्षकी जटाएँ (बरोह) लटककर भूमितक पहुंचते ही प्रत्येक जटाका जिस प्रकार एक एक स्वतन्त्र वटवृक्ष हो जाता है, उसी प्रकार इस वंशसे मनुष्योंके सहस्रों वंश उत्पन्न हुए हैं। हे द्विजश्रेष्ठ! प्रारम्भमें प्रजापति ब्रह्माने विविध प्रजाकी सृष्टि करनेकी इच्छा कर अपने दाहिने अँगूठेसे दक्षको उत्पन्न किया। फिर जगत्को उत्पन्न करनेवाले प्रभु भगवान् ब्रह्माने जगत्को उत्पन्न करनेके लिये अपने बाएँ अँगूठेसे दक्षकी पत्नीकी सृष्टि की ॥ ६–१० ॥ दक्ष और उस दक्ष-पत्नीसे अदिति नामक एक सुंदरी कन्या हुई। उसका कश्यपसे विवाह हुआ और उससे मार्तण्डदेवकी उत्पत्ति हुई। हे द्विज! जो ब्रह्मस्वरूप हैं, समस्त जगत्को वर देनेमें समर्थ हैं, सृष्टि-स्थिति-लयकार्यमें आदि-मध्य-अन्तस्वरूप हैं, जिनसे समस्त जगत् उत्पन्न हुआ है, जिनमें अशेष जगत् अव-स्थित है, देव-असुर-मानवोंसे समन्वित यह जगत् ही जिनका स्वरूप है, जो सर्वभूत-स्वरूप हैं, सर्वात्मा और सनातन परमात्मा हैं, उन भास्वान सूर्यदेवकी अदितिने आराधना की थीं; इसीसे वे उसके गर्भसे पुत्ररूपमें आविर्भूत हुए थे। क्रौष्टुकिने कहा,—हे भगवन्! विवस्वान् सूर्यका स्वरूप क्या है? वे आदिदेव किस कारणसे कश्यपके पुत्र हुए? उनकी कश्यप और देवी अदितिने किस प्रकार आराधना की? आराधित होनेपर वे भास्करदेव क्या बोले? जिन्होंने जन्म ग्रहण किया है, उन दिवाकर भगवान्का प्रभाव क्या है? यह सब आपने जैसा कुछ पहिले कहा हो, हे मुनिसत्तम! वह मैं विस्तृतरूपसे सुनना चाहता हूं। मार्कण्डेय बोले—विस्पष्टा परमा विद्या, ज्योति, शाश्वती, प्रकाशिता, दीप्ति, कैवल्य, ज्ञान, आविर्भाव, प्राकाम्य, संवित्, बोध, अवगति, स्मृति और विज्ञान, यह सब सूर्यमूर्तिका स्वरूप है। हे महाभाग! तुमने पूछा है कि, सूर्यका आविर्भाव कैसे हुआ? इसका उत्तर विस्तारपूर्वक देता हूँ, सुनो। सृष्टिके आदिकालमें जब कहीं कुछ नहीं था, तब यह सब जगत् निष्प्रभ, प्रकाशरहित और सब प्रकारसे

अन्धकारमय था। उस समय परमकारण और क्षयरहित एक बड़ा अण्डा उत्पन्न हुआ ॥ ११—२१ ॥ उसके मध्यमें स्थित भगवान् प्रपितामह पद्मयोनि, जो जगत्के स्रष्टा हैं, उन प्रभु ब्रह्माने स्वयं उस अण्डका भेदन किया। हे महामुने! ब्रह्माके मुखसे तब "ॐ" यह महाशब्द निकला। उसी ॐकारसे प्रथम "भूः," फिर "भुवः" और अनन्तर "स्वः" उत्पन्न हुआ। ये तीन व्याहृतियां ही भगवान् सूर्यका स्वरूप है। इस ॐ स्वरूपसे ही रविका परम सूक्ष्म स्वरूप हुआ है। उसके पश्चात् उसका स्थूल-रूप "महः", फिर उससे भी स्थूलरूप "जनः", फिर उससे भी स्थूलरूप "तपः" और

टीका:—भगवत् ज्योतिरूप भगवान् सूर्यदेवके तीन रूप हैं। वह ज्योति षोडश कलाओंसे पूर्ण है। उन्हीं षोडश कलाओंका वर्णन ऊपर उनके अध्यात्मरूपके वर्णनमें आया है। उन सोलह नामोंके पढ़नेसे भगवान् सूर्यदेवका यह अध्यात्मरूप है, इसका पता लगता है। वेद और पुराण-शास्त्र आदिकी इसीप्रकार अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत विभिन्न विभिन्न वर्णनशैलीका रहस्य न समझनेसे साधारण पाठकगण प्रायः विमोहित हुआ करते हैं। इस कारण पूर्ववर्णित विज्ञानोंपर ध्यान रखकर वेद और शास्त्रोंका अनुशीलन करनेपर अनुकूल और प्रतिकूल किसी व्यक्तिको भी विमोहित होनेका अवसर नहीं रहेगा। सूर्यदेवके अधिदैवरूपके प्रकार तो शास्त्रोंमें बहुधा आते ही हैं और उनका अधिभूतरूप तो प्रत्यक्ष ही है। जो स्थूलदृष्टिसे इन्द्रियगम्य होनेपर भी अनेक शक्तियों और विभिन्न अधिकारोंकी क्रियाओंसे अनुभव करने योग्य है। जिसको दार्शनिकगण अन्य प्रकारसे और पदार्थविद्यासेवी अन्य प्रकारसे देखते हैं। ऊपरके सृष्टिप्रकरणमें जो अण्डा उत्पन्न होनेका वर्णन है, वह प्रथम प्राकृतिक सृष्टि समझनी चाहिये। अर्थात् एक महाप्रलयके अनन्तर जब पुनः उस ब्रह्माण्डकी सृष्टि होती है, तो पहिले जगज्जननी महामाया ब्रह्मप्रकृतिकी कृपासे बिखरेहुए परमाणुपुञ्ज एकत्र होकर वह प्रथम अण्ड बनता है। वही अण्ड ब्रह्माण्डगोलक है। इसी दशाको पदार्थविद्यासेवी बुधगण जीवसृष्टिके अनुपयुक्त पृथ्वी आदि वासस्थानकी आदि-अवस्था कहकर वर्णन करते हैं। शास्त्रोंमें जो ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और जगदम्बाके कालका वर्णन किया है, वह जगदम्बाका काल इसी प्राकृतिक सृष्टिके कालका द्योतक है। * यह अवस्था जीवोत्पत्ति अवस्थाकी पूर्व अवस्था है। इसी अवस्थातक पहुंचकर पदार्थवाद-दर्शनसमूह परमाणुओंकी नित्यता मानते रहते हैं। इस अवस्थाके अनन्तर ब्रह्माजी उत्पन्न होकर जो सृष्टि करते हैं, वह ब्राह्मीसृष्टि कहाती है। उसके अनन्तर तीसरी अवस्थामें जो प्रजापतिरूपी देवता उत्पन्न होकर सृष्टि करते हैं, वह मानस अथवा दैवीसृष्टि कहाती है और चतुर्थ अवस्थामें स्त्री-पुरुषजनित जो सृष्टि होती है, वह मिथुनी याबैजी सृष्टि कहाती है। यही सृष्टिका अलौकिक और दुर्ज्ञेय रहस्य है। इस सृष्टिप्रकरणमें एकसे बहुरूप होनेका जो क्रम है, उसी क्रममें त्रिगुणमयी ब्रह्मप्रकृति अपनी साम्यावस्थासे वैषम्यावस्थाको प्राप्त होती है। तब तीनों गुण एकसाथ हिलते हैं। जहां हिलना है, वहां कम्पन है और जहां कम्पन है, वहां शब्द होता है। यही प्रकृतिकी प्रथम हिल्लोल ॐकार है। अतः सूर्यदेवके साथ भी उसका सम्बन्ध है। उसका सम्बन्ध सब सृष्टियोंकी आदि अवस्थाके साथ होनेपर भी ज्योति और रूपके साथ जितना

* इसका प्रमाण इस ग्रंथमें सप्तशतीगीताकी प्रस्तावनामें उद्धृत किया जा चुका है।

फिर उससे भी स्थूलरूप "सत्य" उद्भूत हुआ। सूर्यका यह समस्त रूप मूर्त अर्थात् स्थूल है। ॐकारसे विवस्वान् सूर्यदेवके स्थूल-सूक्ष्म भेदसे सात रूप प्रकट हुए हैं। भगवान् भास्करके ये सब रूप कभी प्रकट होते हैं और कभी छिपे रहते हैं; क्योंकि स्वभाव और भाव दोनोंके भावमें परिणत होनेके कारण उनके विषयमें सन्देह उत्पन्न हो जाता है। हे विप्र! विश्वके आदि और अन्तमें जो परम सूक्ष्म परमात्मा विद्यमान रहता है, मैंने जो ॐकार कहा, वह वही है। हे द्विज! वह परमब्रह्म ही मार्तण्डदेवका शरीर है॥ २२—२७॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका वंशानुकीर्तन नामक
एकसौ एकवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ दोवां अध्याय।

मार्कण्डेयने कहा,—हे मुने! उस अण्डके फटनेपर उसमें स्थित अव्यक्तजन्मा ब्रह्माके पहिले मुखसे उढौलके फूलके समान तेजोमयी रजोरूपधारिणी ऋचाएं (ऋक्)

सम्बन्ध है, वही सूर्यदेवका सम्बन्ध है और उसीके ज्योतिःसम्बन्धी सप्तभेद सात रङ्ग हैं और वेही सूर्यदेवके सात घोड़े हैं। अब यह शंका हो सकती है कि, सप्त ऊर्ध्वलोकोंमें भूसे लेकर सप्त-उत्तरोत्तर लोक स्थूल क्यों बताये हैं? क्योंकि भूलोक ही देखनेमें सबसे स्थूल है। इस श्रेणीकी शंकाका समाधान यह है कि, जहाँ आधिभौतिक स्थूलता होगी, वहां आध्यात्मिक सूक्ष्मता होगी। जैसे कि, स्थूलकाय शारीरिक बलसम्पन्न जड़ मनुष्यकी बुद्धि स्थूल होती है। उसी प्रकार जहां आधिभौतिक सूक्ष्मता होगी, वहां आध्यात्मिक स्थूलता होती है। जैसा कि, भूलोकमें आध्यात्मिक सूक्ष्मता है और सप्तम उर्ध्वलोक सत्यलोकमें सबसे अधिक आध्यात्मिक स्थूलता है यही। कारण है कि, ऊपरके इस वर्णनमें भूसे भुवर्लोक और इसी तरह सत्यलोक तक एकसे दूसरेकी अधिक स्थूलता बतायी गयी है। स्वभाव अध्यात्म है। जैसे कि, गीतामें कहा है:—"स्वभावोऽध्यात्म उच्यते।" उस अवस्थामें प्रकृति विकृति नहीं बनती। उसी दशाकी प्रकृति विद्या नामधारिणी होती है। वही ब्रह्मदर्शन कराती है। उसी अवस्थाका नाम है, 'स्वस्वरूपावस्था।' तदनन्तर प्रथम अध्यात्म-अधिदैव-अधिभूतभाव और तदनन्तर नाना भाव प्रकट होते हैं। यह सब द्वैतावस्था है। जब द्वैतावस्था होती है, तब चित् और जड़, सत् और असत् आदिके भेद उत्पन्न होकर द्वैत प्रपञ्चमें अन्तःकरण फँस जाता है। तब सूर्यदेवका प्रकाश अन्तःकरणसे रहित हो जाता है। अविद्या देवी सूर्यदेवको छिपाती है। विद्यादेवी उस तेजको—अन्तःकरणको—जगाती है। इस तेजके जागृत करनेके लिये ही गायत्री मन्त्रका जप और गायत्रीकी उपासना की जाती है। यही गायत्रीजपका रहस्य है। ब्रह्मप्रकृति महामायाका विद्यारूप ही वेदजननी गायत्री देवी है और सच्चिदानन्दमय ब्रह्मकी आधिभौतिक प्रतिकृति ही सूर्यदेव हैं। वे ही ब्रह्मरूप हैं॥ १—२७॥

उसी समय आविर्भूत हुईं, जो एक दूसरीसे भिन्न होने परभी अन्तमें सब सुसङ्गत थीं। फिर दक्षिण मुखसे स्वर्णके समान कान्तिवाली एक दूसरीसे न मिलने जुलनेवाली सब याजुष ऋचाएँ अनिरुद्ध रूपसे बहिर्गत हुईं। अनन्तर परमेष्ठी ब्रह्माके पश्चिम मुखसे सब साम प्रकट हुए। ये सभी साम छन्दोमय थे। तत्पश्चात् ब्रह्माके उत्तर मुखसे मारण-उच्चाटनादि आभिचारिक, शान्तिकारक घोर स्वरूप, भौंरों और काजलके समान कृष्णवर्ण प्रजाओंसे युक्त, सुख, सत्व और तमस्-बलको धारण किये हुए, सौम्य और असौम्य रूपी अशेष अथर्वोंका प्रादुर्भाव हुआ ॥ १—६ ॥ हे मुने! समस्त ऋक् रजोगुणान्वित, समस्त यजु सत्वगुणान्वित, समस्त साम तमोगुणान्वित और समस्त अथर्व सत्व-तमोगुणान्वित हैं। ये सभी अप्रतिम तेजके द्वारा प्रकाशमान होते हुए पहिले की तरह पृथक् पृथक् भावसे स्थित हो गये। तदनन्तर वह पहिला तेज, जो 'ओं' कहा जाता है, अपने स्वभावसे उत्पन्न हुए तेजको आवृत करके स्थिर हो गया। फिर हे महामुने! उस तेजने साममय और यजुर्मय तेजको भी आवृत कर लिया। इस प्रकार समस्त तेजोराशि उस ॐकार रूपी परम तेजका आश्रय करके एकत्वको प्राप्त हुई। हे ब्रह्मन्! फिर ऋगादि वेदत्रयमें शान्तिक, पौष्टिक और आभिचारिक त्रिविध अथर्ववेद लीन हो गया। हे विप्रर्षे! तदनन्तर अन्धकारका नाश हो जानेसे यह सब विश्व उसी क्षण सुनिर्मल हो गया और उससे उसका ऊपरी, नीचेका और दोनों ओरका सब भाग प्रकाशित हो गया ॥ ॥ ७—१२ ॥ हे ब्रह्मन्! उसके उपरान्त वह वैदिक उत्तम और श्रेष्ठ तेज गोलाकार होकर ॐकारमें मिल गया। इस प्रकार यह तेज सबके आदिमें उद्भूत होनेके कारण इसे आदित्य संज्ञा प्राप्त हुई। हे महाभाग! यही इस विश्वका अव्ययात्मक कारण है। ऋक्, यजु और साम नामकी यह त्रयी प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायंकालमें ताप (उष्णता) प्रदान किया करती है। हे मुनिश्रेष्ठ! इन तीनोंमें प्रातःकालमें ऋक्, मध्याह्नमें यजुः और अपराह्नमें साम उष्णता दिया करते हैं। पूर्वाह्नमें ऋक् शान्तिसम्बन्धी, मध्याह्नमें यजुः पुष्टिसम्बन्धी और सायाह्नमें साममन्त्र आभिचारिक कर्मोंका सम्पादन किया करते हैं। मध्याह्न और सायाह्नमें ही आभिचारिक कर्म किये जाते हैं और केवल अपराह्नमें साम मन्त्रोंके द्वारा पितरोंका काय करना चाहिये। सृष्टिकालमें ब्रह्मा ऋक्मय, स्थितिकालमें विष्णु यजुर्मय और संहारकालमें रुद्र साममय हो जाते हैं। इसीसे अपराह्न

टीकाः—वेदों और शास्त्रोंमें पुस्तकें पांच तरहकी कही गयी हैं, यथा—ब्रह्माण्ड, पिण्ड, नाद, बिन्दु और अक्षर। इनमेंसे अक्षरमयी पुस्तक क्षणभंगुर है। प्रत्येकके कालविभागमें उनका नाश होना सम्भव है और चार पुस्तकें दैवी हैं, इस कारण चिरस्थायी हैं। उन चारोंमेंसे पुनः नादमयी पुस्तककी महिमा सर्वोपरि है। नादमयी पुस्तक ही वेद है। चार प्रकारकी दैवी पुस्तकोंमेंसे और तीनों

अशुचि कहा जाता है ॥ १३—१६ ॥ और यही कारण है कि, पूर्वोक्त प्रकारसे वेदात्मा, वेदमें निवास करनेवाले और वेद विद्यामयभगवान् भास्वान् परमपुरुष रूपसे वर्णित हुए हैं। सृष्टि-स्थिति-प्रलयकारी यही शाश्वत आदित्यदेव सत्व, रज और तमोगुणका आश्रय कर ब्रह्मा, विष्णु और शिव नामको धारण किये हुए हैं। सर्वदा देवताओंद्वारा

तो प्रेरणाद्वारा अन्तःकरणमें भावरूपसे प्रकट होती हैं। परन्तु नादमयी वाणी-वेदका-प्राकट्य वैसा नहीं होता। सृष्टिके आदिमें वेदके मन्त्र ज्योंके त्यों ऋषियोंके अन्तःकरणोंमें सुनायी देते हैं। यही वेदका सर्वोपरि महत्व है। ऊपरके वर्णनसे भगवान् ब्रह्माके द्वारा सृष्टिकी आदि अवस्थामें वेदका प्राकट्य कहा गया है, उसका रहस्य यही है। प्रेत आदिसे सम्बन्ध रखनेवाला साधक अथवा देवताओंके उपासक व्यक्तिमात्र इसको अनुभव करते हैं कि, प्रेतकी भाषा अथवा देवताओंकी देववाणी केवल उसीको सुनायी देती है, जिसके साथ उक्त प्रेत या देवताका सम्बन्ध हुआ हो। यदि दस मनुष्य इकट्ठे रहें और किसी एकके शरीरसे प्रेतका सम्बन्ध हो, तो उन दसोंमेंसे केवल वही व्यक्ति प्रेतकी बात सुनेगा, जिससे सम्बन्ध हुआ है और वह सुनायी देना बाहरसे नहीं, भीतरसे होगा। इस कारण उसको और कोई नहीं सुनेगा। इसी कारण किसी उपासकमण्डलीमें जब देववाणी सुनायी देती है, तो इसी प्रकारसे उसीको सुनायी देती है, जिसपर दैवी कृपा हुई हो और वह दैवी वाणी भी बाहरसे नहीं, भीतरसे सुनायी देती है। वेदके प्राकट्यके लिये यह उदाहरण यथेष्ट होगा। जिनकी थोड़ी भी अन्तर्दृष्टि है और जो थोड़ा भी दैवी जगत्से सम्बन्ध रखते हों, वे अवश्य इस रहस्यका अनुभव कर सकेंगे। सृष्टिके आदिकालमें जब केवल ब्रह्माण्डगोलक बना, उस समय जैव सृष्टि नहीं थी; वही प्राकृतिक सृष्टि कहाती है। तदनन्तर अनन्त-कोटिब्रह्माण्डभाण्डोदरी ब्रह्मशक्ति महामाया उस ब्रह्माण्डकी ब्रह्मा, विष्णु, महेशरूपी मूर्ति की जननी बनी। भगवान् विष्णु योगनिद्रामें विमोहित और सुप्त रहे। भगवान् ब्रह्मा उनके नाभिकमलसे प्रकट होकर सृष्टिक्रियाके लिये जागृत हुए। भगवान् शिव उन दोनोंके शरीरोंमें व्याप्त रहे। उस समय भगवान् ब्रह्माजीने ज्ञानमय तप किया। अर्थात् बहिर्ज्ञानसे प्रत्याहार करके अन्तरमें एकतत्वसे युक्त हुए। तब भगवान् ब्रह्माको पूर्वकल्पमें क्या था, इसकी स्मृति प्राप्त हुई। यही अवस्था 'यथापूर्वमकल्पयत्' श्रुतिसंप्रतिपाद्य है। जब भगवान् ब्रह्माजीके अन्तःकरणसे सृष्टिका प्रवाह बाहरकी ओर चला, तब साम्यावस्थाकी प्रकृति वैषम्यावस्थाको प्राप्त हुई। त्रिगुण हिला। तीनों गुण एक साथ हिले। जहां हिलना है, वहां शब्द है। वही तीनों गुणोंके बराबर हिलनेका शब्द प्रणव है। शब्द आकाश तत्वका गुण है। आकाश तत्व सब तत्वोंसे सूक्ष्म है। इस कारण आदि सृष्टिमें सबसे पहिले शब्दका ही आगे प्रकट होना स्वाभाविक है। यही कारण है कि, सृष्टिमें सबसे पहिले शब्द प्रकट हुआ और वही एक अद्वितीय शब्द प्रकट हुआ है। वही प्रणव है और वही भगवान्का सच्चा और स्वाभाविक नाम है। नामके अनन्तर रूपका प्राकट्य होता है। यह भी स्वाभाविक है। क्योंकि जहां नाम है वहां रूपका होना भी स्वाभाविक है। इस कारण ब्रह्मप्रकृतिसे जैसा प्रणवका सम्बन्ध है, ब्रह्मज्योतिका उसी प्रकार मार्तण्डसे सम्बन्ध है। सच्चिदानन्दमय ब्रह्मकी चिन्मयी सत्ताने ही घनीभूत होकर ज्योतिरूपको धारण किया है। उसी ज्योतिसे अन्तर प्रकाशित हुआ और बहिः भी प्रकाशित हुआ। वही अन्तर्जगत्में ज्ञानाधार और बहिर्जगत्में सूर्यमण्डल बन गया। यही प्रकृतिसे प्रणव और चित्सत्तासे आदित्य भगवान्की उत्पत्तिका रहस्य है। सृष्टिके आदिमें जब जैव सृष्टि प्रारम्भ हुई और ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयरूपी त्रिपुटी बनी, तो उस

पूजे जानेवाले ये वेदमूर्ति (सूर्य) निराकार होते हुए भी अखिल प्राणियोंकी मूर्तियोंके रूपमें मूर्तिमान् हो रहे हैं। येही ज्योतिःस्वरूप आदिपुरुष भगवान् आदित्यदेव विश्वके आश्रयस्वरूप हैं और येही अवेद्यधर्मा, वेदान्तगम्य प्रभु श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठतर हैं॥ २०—२२॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका मार्तण्ड-माहात्म्य नामक एक सौ दोवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ तोनवां अध्याय।

मार्कण्डेयने कहा,—तदनन्तर आदित्यके तेजसे ऊपर, नीचे और सब ओर उत्तप्त हो जानेपर सृष्टिको उत्पन्न करनेकी इच्छा करनेवाले भगवान् पद्मयोनि पितामह विचार करने लगे कि, यदि मैं सृष्टि करना प्रारम्भ कर दूं, तो सृष्टि-स्थिति-संहारकारी महात्मा भाष्करके तीव्र तेजसे वह सब नष्ट हो जायगी। उनके तेजसे समस्त प्राणी प्राणहीन और जल शुष्क हो रहा है। इसके अतिरिक्त जलके बिना विश्वकी सृष्टि हो भी नहीं सकती। लोकपितामह ब्रह्मा इस प्रकार विचार करते हुए तन्मय होकर भगवान् रविकी स्तुति करने लगे। ब्रह्मा बोले,—जो समस्त विश्वके आत्मा स्वरूप हैं और जो इस विश्वके रूपमें ही विद्यमान रहते हैं; विश्व ही जिनकी मूर्ति है और इन्द्रियोंसे अगोचर जिनकी ज्योतिका योगिगण ध्यान करते हैं, उन भगवान् सूर्यदेवको मैं नमस्कार करता

समय सबसे पहिले भगवान् ब्रह्माको प्रणव सुनायी दिया। उसी प्रणवसे पुनः वेदोत्पत्ति हुई। वे ही वेद श्रुतियोंसे ऋषियोंके अन्तःकरणोंमें पहुंचे और उनके द्वारा सृष्टिमें प्रचारित हुए और उसी समय त्रिपुटीके प्राकट्यके साथ ही साथ ज्योतिका प्राकट्य हुआ। उस समयके विश्वज्योति ही आदित्यदेव हैं। ये ही आदित्यदेव प्रणवयुक्त गायत्रीमन्त्रके द्वारा गायत्रीदेवीके रूपमें गायत्रीउपासनामें उपस्थित होते हैं। गायत्रीउपासना प्रणवयुक्त इसी तेजोमयी ब्रह्मसत्ताकी उपासना है। गायत्रीउपासनासे अधिक और कोई ब्रह्मोपासनाकी प्रणाली हो ही नहीं सकती। यही आदिसृष्टिके शब्दरूपकी उत्पत्तिका अतिगूढ़ रहस्य है। यही सृष्टिकी आदि अवस्था है। इस अवस्थामें उपासकका अन्तःकरण पहुंचते ही ब्रह्मसान्निध्यको पहुंचता है, इसमें सन्देह ही क्या है? इसी पुराणमें आदित्य देवकी उत्पत्ति जो अदिति देवीसे कही गयी है, उसके विषयमें शङ्का हो सकती है। उसका सुगम समाधान यह है कि, यहांके आदित्य-प्राकट्यका वर्णन आदित्यका अध्यात्म रूप है और अदितिसे जो आदित्यकी उत्पत्ति कही गयी है, वह उनका अधिदैव रूप है और जो देवताविशेष हैं॥ १—२२॥

हूं । १-५ ॥ जिनकी शक्ति अचिन्त्य है और जो ऋग्वेदमय हैं, जो यजुर्वेदके आधार हैं, जो सामवेदकी उत्पत्तिके कारण हैं, स्थूलताके कारण जो त्रयीमय हैं, जो अर्द्धमात्रा-स्वरूप हैं, जो परब्रह्मस्वरूप और गुणातीत हैं, आदिमें जो सबके कारणस्वरूप हैं, जो परमपूज्य और परमवेद्य हैं, अग्निके रूपमें न होते हुए भी जो परमज्योति हैं, देवात्मा होनेके कारण जो स्थूलरूपी और श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठतर आदिपुरुष हैं, उन भगवान् भास्करदेवको मैं नमस्कार करता हूं। हे देव! तुम्हारी शक्ति ही आद्याशक्ति है; जिसकी प्रेरणासे मैं प्रेरित होकर जल, पृथ्वी, पवन, अग्नि आदि देवताओंके मूलभूत प्रणवादिकी समस्त सृष्टि किया करता हूं। इसी तरह मैं अपने आप स्थिति अथवा प्रलयकी इच्छा नहीं करता; किन्तु तुम्हारी शक्तिकी प्रेरणासे ही किया करता हूं। हे भगवन्! तुम वह्निरूपी हो। तुम्हारे पृथ्वीका जल शोषण करलेनेपर मैं जगत्की सृष्टि और आद्यपाक सम्पन्न किया करता हूं। तुम सर्वव्यापक आकाशस्वरूप हो। तुम पञ्चभूतात्मक इस विश्वका रक्षण किया करते हो। हे विवस्वन्! परम आत्मज्ञानी-लोग अखिल यज्ञमय विष्णुके रूपमें यज्ञके द्वारा तुम्हारी पूजा किया करते हैं। अपनी मुक्तिकी इच्छा करनेवाले और अपने मनको वशमें रखनेवाले यतिगण सर्वेश्वर जानकर तुम्हारा ध्यान किया करते हैं। तुम देवतास्वरूप हो इसलिये मैं तुम्हें नमस्कार करता हूं। तुम यज्ञस्वरूप और योगिगणके चिन्तनीय परब्रह्मस्वरूप हो। मैं तुमको नमस्कार करता हूं। हे विभो! तुम अपने तेजको संवरण करो। मैं सृष्टि करनेकी इच्छा कर रहा हूं। तुम्हारा यह तेजःपुञ्ज सृष्टि करनेमें विघ्नस्वरूप हो रहा है। मार्कण्डेय बोले,—सृष्टिकर्ता ब्रह्माके द्वारा इस प्रकार स्तुत होनेपर भगवान् भास्वान्ने अपने परम तेजको बटोर लिया। उन्होंने अपना बहुत ही थोड़ा तेज प्रकाशित किया। इसके अनन्तर महाभाग पद्मयोनि ब्रह्माने पूर्वकल्पान्तरके अनुसार उस कल्पमें भी जगत्की सृष्टि की। हे महामुने! फिर ब्रह्माने पहिलेकी तरह देवता, असुर, नर, पशु, वृक्ष, लता तथा नरक आदिका सृजन किया ॥ ६—१५ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका आदित्यस्तव नामक एकसौतीनवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

टीकाः—यहां जो जलकी सृष्टिका वर्णन है, वह चतुर्थतत्त्व जलतत्त्व नहीं है। वह कारणवारिरूपी जल है। सृष्टिके आदिमें पूर्वकल्पकी सृष्टिसे उत्पन्न समस्त कर्मबीजरूपी संस्कारराशि विद्यमान रहती है। सबसे पहिले अन्तःकरणरूपी आकाशमें कारणवारिरूपी ब्रह्माण्डका संस्कारपुञ्ज प्रकट होता है। उसी पुञ्जीभूत संस्कारपुंजरूपी बीजसे संसाररूपी वृक्ष प्रकट होता है। अतः यह जल कारणवारि है। ज्योतिके प्रभावसे अन्तःकरणका उस संयम क्रियासे वह ंसे हट जानाही जलका सूखना है ॥ १—५ ॥

टीकाः—इस अध्यायमें जो सूर्य्य भगवान्की स्तुति है, उसका रहस्य भगवान् आदित्यदेवके अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूतरूपोंका अध्ययन करनेसे ही अच्छी तरह समझमें आजायगा। यह कई वार पहिले कहा गया है ॥ ६—१५ ॥

एक सौ चारवां अध्याय।

—०:*:०—

मार्कण्डेयने कहा,—ब्रह्माने सृष्टिकी रचना कर पहिलेकी तरह वर्ण, आश्रम, समुद्र, पर्वत और द्वीपोंका विभाग किया। भगवान् कमलयोनि ब्रह्मदेवने देव, दैत्य और उरगोंके रूप तथा स्थान पहिलेकी तरह निर्दिष्ट कर दिये। मरीचि नामक जो विख्यात् ब्रह्माका पुत्र था, उसका पुत्र कश्यप काश्यप नामसे ही प्रसिद्ध हुआ। हे ब्रह्मन्! दक्षकी तेरह कन्याएं उसकी पत्नियां हुईं। उनके गर्भसे देव, दैत्य और उरग आदि अनेक सन्तति हुई। अदितिने त्रिभुवनेश्वर देवगणको उत्पन्न किया। दितिसे दैत्यगण, दनुसे महा विक्रमशाली उग्र मानव, विनतासे गरुड़ और अरुण, खगासे यक्ष और राक्षस, कद्रूसे नागगण और मुनिसे गन्धर्वोंकी उत्पत्ति हुई। हे द्विज! क्रोधासे कुल्यगण, रिष्टासे अप्सराएं और इरासे ऐरावतादि मातङ्ग (हाथी) गण जन्मे। ताम्रासे श्येणी आदि कन्याओंकी सृष्टि हुई। इन्हीं कन्याओंसे श्येन (बाज), भास और शुक आदि पक्षियोंका जन्म हुआ। इलासे वृक्षसमूह और प्रधासे फतिङ्गे हुए। हे मुने! अदितिके गर्भसे कश्यपको जो पुत्र-कन्याएं हुईं, उनके पुत्रों, दौहित्रों, पुत्रियों, दौहित्रियों आदिसे यह जगत् व्याप्त हो गया ॥ १—१० ॥ हे मुने! उन कश्यपका सन्तानमें देवगण प्रधान थे। उनके सात्विक, राजस और तामस इस प्रकार त्रिविध गण हुए। ब्रह्मज्ञोंमें श्रेष्ठ परमेष्ठी प्रजापति ब्रह्माने देवोंको त्रिभुवनेश्वर और यज्ञभोजी बनाया। परन्तु सौतेले दैत्य, दानव और राक्षसगण मिलकर शत्रुताचरण करते हुए देवोंको विघ्न करने लगे। इस कारण उनसे देवोंका एक सहस्र दिव्यवर्षोंतक लगातार दारुण युद्ध होता रहा। हे विप्र! इस संग्राममें देवता हार गये और बल-शाली दैत्य-दानव विजयी हुए। हे मुनिसत्तम! तब दैत्य-दानवों द्वारा त्रिभुवन हरा जाने और अपने पुत्रोंको वहांसे निकाले जाने तथा यज्ञभागसे वञ्चित किये जानेके कारण अदितिको बड़ाही दुःख हुआ। इस आपत्तिको मिटानेके विचारसे उसने भगवान् सूर्यनारायणकी आराधना करना आरम्भ किया। वह श्रेष्ठ नियमोंका पालन और अल्पाहार करती हुई एकाग्र होकर आकाशमें विराजमान तेजोराशिस्वरूप दिवाकरका स्तवन करने लगी। अदिति बोली,—हे शाश्वत! तुम सुन्दर सूक्ष्म सुवर्णके समान शरीरको धारण किये हो, तुम ज्योतिःस्वरूप हो,

टीका:—सृष्टिके आदिसे वर्णाश्रमधर्मकी शृंखला बांधी गयी है। क्योंकि वर्णाश्रमशृंखला स्वाभाविक है। इसका फल आध्यात्मिक उन्नतिशील एक मनुष्यजातिका चिरजीवी होना है ॥ १—१० ॥

चमकने वाले ग्रह-नक्षत्रोंमें तुम प्रधान हो, सब ज्योतियोंके तुम आधार हो, तुम्हें नमस्कार है। हे वाणी, बुद्धि और इन्द्रियोंके नायक! जगत्‌का उपकार करनेके लिये पानीको सोखते समय तुम्हारी जो तीव्र मूर्ति हो जाती है, उसको नमस्कार है। तुम आठ मासतक चन्द्रमासे रस ग्रहण करनेके लिये जिस तीव्र मूर्तिको धारण करते हो, उसे नमस्कार है ॥ १०—२० ॥ हे भगवन्! वह समस्त गृहीत रस वर्षाके बहाने परित्याग करते समय तुम जो तृप्ति करनेवाले मेघोंकी मूर्ति धारण करते हो, तुम्हारी उस मेघमूर्तिको नमस्कार है। जलवर्षासे उत्पन्न हुई समस्त ओषधियोंको पकानेके लिये तुम जिस मूर्तिको धारण करते हो, तुम्हारी उस भास्करमूर्तिको नमस्कार है। हे देव तरणे! हेमन्तकालमें शस्यपोषणके लिये हिमवर्षण आदिके द्वारा तुम जो शीतल रूप धारण करते हो, उसको नमस्कार है। हे रवे! वसन्त ऋतुमें तुम्हारा रूप न तो बहुत शीतल होता है और न अति तीव्र; किन्तु सौम्य हो जाता है; हे देव! उस रूपको नमस्कार है। तुम्हारा जो रूप अशेष देववृन्दों और पितृगणको परम प्रीतिकर तथा शस्यसमूहको परिपक्व करनेवाला होता है, उसको नमस्कार है। तुम्हारा जो अमृतमय स्वरूप वृक्ष-लताओंके जीवनका कारण है और अमृतमय जानकर ही देवगण और पितृगण जिसका पान किया करते हैं, तुम्हारे उस सोमरूपको नमस्कार है। अग्नि और सोम ये दो अर्करूप मिलकर तुम्हारा जो विश्वमय रूप हो जाता है, उस गुणात्माको नमस्कार है। हे विभावसो! ऋक्, यजु और साम, ये तीनों वेद मिलकर तुम्हारा जो त्रयी नामक रूप विश्वको उष्णता प्रदान करता है, उस रूपको नमस्कार है। वेदोंसे भी श्रेष्ठ तुम्हारा जो सूक्ष्म, अनन्त और विमल रूप है, जिसे ॐकार कहते हैं, तुम्हारे उस नित्य रूपको नमस्कार है ॥ २१—२६ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—हे मुने! इस प्रकार देवी अदिति नियमपूर्वक दिन रात विवस्वान् सूर्यदेवकी स्तुति करती हुई आराधना करने लगी। आगे चलकर उसने आहार करना भी छोड़ दिया। हे द्विजोत्तम! बहुत दिनोंके उपरान्त भगवान् सूर्यदेव दाक्षायणी अदितिपर प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे आकाशमें ही दर्शन दिया। फिर जिनकी तेजःपुञ्ज किरणमालाओंसे युक्त मूर्तिको आकाशके रन्ध्रसे देखना कठिन हो जाता है, उन दीप्तिशाली रविको पृथ्वीपर आते हुए अदितिने देखा। इस प्रकार उन्हें आते देखकर वह देवी बड़ी भयभीत हुई और बोली,—हे गोपते! तुम मुझपर प्रसन्न हो, तुम्हें

टीकाः—इस स्तुतिमें जो ग्रह नक्षत्रसम्बन्धी और ऋतु आदि सम्बन्धकी बातें हैं, वे सब सूर्य भगवान्‌के आधिभौतिक रूपसे सम्बन्ध रखती हैं। जिनको स्थूलदर्शी पदार्थविद्यासेवी पंडितगण समझ सकते हैं। उनका अधिदैवरूप उपासकगण और उनका अध्यात्मरूप दार्शनिक योगिगण समझ सकते हैं ॥ २१—२६ ॥

मैं देख नहीं सकती। पहिले निराहार होकर आकाशमें विराजमान और देखनेमें कठिन सूर्यको जिस प्रकार ताप प्रदान करते हुए देखा था, इस समय उसी प्रकार भूतलमें तेजोराशि तुम्हारी मूर्ति देख रही हूं। हे दिवाकर! तुम मुझपर प्रसन्न हो और अपने प्रकृत रूपका दर्शन कराओ। हे विभो! तुम भक्तोंपर दया किया करते हो और मैं तुम्हारी भक्त हूं, इस लिये तुम मेरे पुत्रोंकी रक्षा करो। तुम धात्री रूपसे इस विश्वका सृजन करते हो, स्थिति कार्यमें प्रवृत्त होकर इसका पालन करते हो और प्रलय कालमें सब तत्व तुममें विलीन हो जाते हैं। अतः सब लोकोंमें तुम्हारे बिना अन्य गति नहीं है। तुमही ब्रह्मा, विष्णु और अजन्मा महादेव हो। तुम इन्द्र, कुवेर, यम, वरुण और वायुदेव हो। तुम सोम, अग्नि, आकाश, पर्वत, समुद्र और समस्त तेजस पदार्थोंके आत्मा हो। तुम्हारी स्तुति मैं किस प्रकार करूँ? हे यज्ञेश! अपने कर्मोंमें अनुरक्त ब्राह्मणगण प्रतिदिन विविध वैदिक छन्दोंके द्वारा स्तुति कर तुम्हारी पूजा किया करते हैं। जिनका चित्त वशमें है, वे योगिगण तुम्हारा ध्यान करते करते योगमूर्तिके द्वारा परम पदको प्राप्त करते हैं। तुम विश्वको उष्णता दिया करते हो और तुमही उसको परिपक्क, रक्षित, अपने किरणोंसे प्रकाशित और भस्मीभूत करते हो। फिर उसको जलगर्भमें अपने मयूखोंसे आह्लादित कर पुनः सृजते हो। देवगण और मनुष्य तुमको प्रणाम करते हैं और पापी स्थिर भावना करके भी तुम्हें पा नहीं सकते ॥ ३०—३६ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका दिवाकरस्तुति नामक एक सौ चारवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ पाँचवाँ अध्याय।

—०:*:०—

मार्कण्डेयने कहा,—तदनन्तर प्रभु विभावसु अपने उस तेजोमण्डलमेंसे तपे हुए ताँबेके समान कान्तिको धारण कर आविर्भूत हुए। हे मुने! तब अदितिके प्रणाम करने पर भास्वान् सूर्यदेव उससे बोले,—तुम्हारी जो इच्छा हो, तदनुसार तुम मुझसे वर मांग लो। देवी अदितिने घुटने टेककर और सिर झुकाकर वरदानके लिये उपस्थित हुए विवस्वानसे कहा, हे देव! आप प्रसन्न हों। अति प्रबल होनेके कारण दैत्यों और दानवोंने मेरे पुत्रोंके त्रिभुवनपर और यज्ञभागपर अधिकार कर लिया है। हे त्विषांपते! इस लिये तुम मुझपर प्रसन्न हो और अंशरूपसे उनके भ्राता होकर शत्रुओंका विनाश करो। हे प्रभो दिवाकर! जिससे मेरे पुत्र फिर यज्ञभाग पाने लगें और पुनः त्रैलोक्यके

अधिपति हों, हे रवे ! मेरे प्रति प्रसन्न होकर उनपर ऐसी कृपा करो। हे विपन्नोंके भयको दूर करनेवाले देव ! संसारमें तुम पालन करनेवाले कहाते हो ॥ १-७ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—हे विप्र ! फिर जलसमूहोंको हरण करनेवाले भगवान् भास्कर प्रसन्नवदन होकर विनयावनता उस अदितिसे बोले,—हे अदिते ! मैं सहस्रांशसे तुम्हारे गर्भसे जन्म ग्रहण कर तुम्हारे पुत्रोंके शत्रुओंका समूल विनाश करूंगा। तुम्हारे पुत्र अब शीघ्र ही सुखी होंगे। यह कहकर भगवान् भास्वान् वहीं अन्तर्हित हो गये और देवी अदिति भी इच्छित वरको प्राप्त कर तपस्यासे निवृत्त हुईं। हे विप्र ! फिर सूर्यदेवका सौषुम्न नामक सहस्रवाँ अंश देवमाता अदितिके गर्भमें अवतीर्ण हुआ। तब अदिति सावधान होकर कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रतोंका अनुष्ठान करती हुई पवित्र भावसे उस दिव्य गर्भका पोषण करने लगी। उसका कठोर व्रताचरण देखकर एक दिन कश्यप कुछ क्रुद्ध होकर उससे बोले कि, तू प्रतिदिन ही उपोषण करके क्या गर्भस्थ अण्डको मार डालना चाहती है ? अदितिने उत्तर दिया,—आप क्रोध क्यों करते हैं ? जिस गर्भके विषयमें आप क्रुद्ध हो रहे हैं, उसे मैं मारूंगी नहीं; किन्तु वही विपक्षियोंके विनाशका कारण होगा। मार्कण्डेय बोले,—यह कहकर देवमाता अदितिने पतिके वचनसे रुष्ट होकर तेजसे जाज्वल्यमान उस गर्भका परित्याग कर दिया। कश्यपने नवोदित सूर्यके समान प्रभाशाली उस गर्भको देखकर प्रणामपूर्वक आद्य ऋग्वेदके मन्त्रोंसे उसकी स्तुति करना प्रारम्भ किया। कश्यपके द्वारा स्तुत होनेपर भगवान् भास्कर अपने तेजसे दिङ्मण्डलको व्याप्त करते हुए कमलके दलके समान वर्णको धारण कर उस अण्डसे बाहर

टीकाः—सृष्टिप्रकरणका रहस्य सबसे अतिगहन है। दूसरी ओर वेद और पुराणोंमें सृष्टिका मिश्रित भेद एकाधारमें कहनेकी शैली है। इससे भी समझनेमें जटिलता होती है। ऐसा मिश्रित वर्णन करनेका कारण यह है कि, दुर्ज्ञेय सृष्टिप्रकरण उसीकी समझमें आसकता है, जिसका अन्तःकरण समाधिभूमिमें पहुंचा हो और समाधिस्थ अन्तःकरण ही इसका वर्गीकरण करनेमें समर्थ हो सकता है। सृष्टिके प्रथम तो चार भेद हैं। प्राकृतिकसृष्टि, जो ब्रह्माजीसे पूर्वकी सृष्टि है। दूसरी ब्राह्मीसृष्टि, जो भगवान् ब्रह्माके द्वारा होती है। तीसरी मानससृष्टि, जो प्रजापतियों द्वारा होती है और चौथी बैजीसृष्टि, जो स्त्री-पुरुषोंके मैथुनसे होती है। ये सृष्टि-प्रकरणके चार स्वतन्त्र स्वतन्त्र स्तर हैं। दूसरी ओर जीवसृष्टि प्रकट होते समय दैवी और मानुषी दो प्रकारकी सृष्टिका गाथारूपसे वर्णन आया करता है। उस समय कौनसी दैवी है और कौनसी मानवी है, इसका पृथक् वर्णन नहीं होता। इससे भी समझनेमें भ्रम होता है। ऊपर जो कुछ सृष्टिप्रकरण आया है, वह सब दैवी सृष्टिप्रकरण है। इस सृष्टिप्रकरणका लौकिक मनुष्यसृष्टिसे सम्बन्ध नहीं है। कश्यप, अदिति आदिके नाम दैवीराज्यके व्यक्तियोंके नाम हैं। यह बार बार कहा गया है कि, यह स्थूल मृत्युलोक एक ब्रह्माण्डके चौदहवें हिस्सेका एक चौथा हिस्सा है।

निकल आये ॥ ८-१७ ॥ अनन्तर जलसे भरे हुए मेघोंकी गर्जनाके समान गम्भीर अशरीरिणी आकाशवाणी कश्यपको सम्बोधन करके हुई कि, हे मुने! तुमने अदितिसे इस गर्भस्थ अण्डको मार डालनेकी बात कही थी, इस कारण तुम्हारे इस पुत्रका नाम "मार्तण्ड" होगा। यह विभु जगत्में सूर्यका कार्य करेगा और यज्ञभागको हरण करनेवाले देवोंके शत्रु असुरोंका विनाश करेगा। यह आकाशवाणी सुनते ही देवता बड़े प्रसन्न होकर आकाशसे वहां उतर आये और दानवगण हतप्रभ हो गये। फिर सब देवोंको साथ लेकर शतक्रतु इन्द्रने दैत्योंको युद्धके लिये ललकारा और दानव भी हर्षित होकर युद्धके लिये आ डँटे। उस समय देवों और दानवोंका घोरतर युद्ध छिड़ गया और समस्त भुवन देवों और दानवोंके शस्त्रास्त्रोंकी दीप्तिसे अच्छी तरह जगमगाने लगे। उस युद्धमें बड़े बड़े असुरगण भगवान् मार्तण्डदेवके द्वारा देखे जानेके कारण उनके तेजसे भस्मीभूत हो गये। तब सब देवोंको बड़ा ही आह्लाद प्राप्त हुआ और वे सब तेजोंके आकरस्वरूप मार्तण्ड देव और अदितिका स्तवन करने लगे। देवोंने पहिलेकी तरह अपने सब अधिकार प्राप्त कर लिये और उन्हें यज्ञभाग मिलने लगा। भगवान् मार्तण्ड भी अपने अधिकारके अनुरूप सूर्य्यका कार्य करने लगे। कदम्बके पुष्पके समान नीचे, ऊपर, सबओर वे अपनी रश्मियोंके द्वारा दीप्तशाली होकर गोलाकार अग्निपिण्डके समान देख पड़ने लगे और उन्होंने बहुत न हिलने-डोलनेवाला शरीर धारण किया ॥ १८-२७ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका मार्तण्डोत्पत्ति नामक
एकसौ पांचवां अध्याय समाप्त हुआ।

और शेष सब दैवीलोक हैं। ब्रह्माण्डमें दैवीलोक ही प्रधान है। दैवीलोकके आधारपर ही यह स्थूल मृत्युलोक स्थित है। दैवीलोकसे ही यह सञ्चालित और सुरक्षित रहता है। नित्य पितृगण स्थूलसृष्टि, देवतागण कर्मराज्य और ऋषिगण ज्ञानराज्यके रक्षक हैं। इस मृत्युलोकमें कर्मके बिगाड़नेवाले और आसुरी प्रवृत्ति करानेवाले असुरगण हैं। यह तो मानवपिण्डका विषय है। दूसरी ओर जो सहजपिण्डरूपी उद्भिज्ज, स्वेदज और जरायुजोंकी श्रेणियाँ हैं, उन चारोंकी प्रत्येक अलग श्रेणीके अलग अलग रक्षक और चालक एक अलग अलग देवता हैं। इन्हीं सब शृङ्खलाओंको बांधनेके लिये जो सबसे प्रथम दैवीसृष्टि हुई थी, उसीका संक्षिप्त वर्णन इस अध्यायमें आया है। देवासुरसंग्राम जो मानवपिण्डमें सदा होता है और नैमित्तिकरूपसे समय समयपर देवलोकमें हुआ करता है, उसका विस्तृत वर्णन और विशेषतः एक कल्पका वर्णन सप्तशतीगीतामें पहिले आ ही चुका है ॥ १—१० ॥

एक सौ छठा अध्याय।

मार्कण्डेय बोले,—फिर प्रजापति विश्वकर्माने बड़ी नम्रतासे भगवान् विवस्वानको सम्मानके साथ अपनी संज्ञा नामकी कन्या प्रदान की। इसी संज्ञाके गर्भसे विवस्वानको वैवस्वत मनु नामक जो पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका विस्तारपूर्वक वृत्तान्त मैं पहिले कह चुका हूं। हे मुनिवर! गोपति सूर्यको फिर संज्ञाके गर्भसे बड़े भाग्यशाली दो पुत्र और यमुना नामकी एक कन्या, इस प्रकार तीन सन्तान हुए। सब सन्ततिमें श्राद्धदेव प्रजापति वैवस्वत मनु श्रेष्ठ थे। तदनन्तर यम और यमी नामक जुड़ुवा बच्चे उत्पन्न हुए थे। (ग्रन्थकार वेदव्यासने जुड़ुवा दो बालकोंको एक ही माना है।) उस समय विवस्वान् मार्तण्डदेवका तेज इतना बढ़ गया कि, उससे चराचर तीनों लोक उत्तप्त हो गये ॥ १-५ ॥ विवस्वानके उस गोलाकार रूपको देखकर और उनके तेजको सहन करनेमें असमर्थ होकर संज्ञा अपनी छायाकी ओर देखकर उससे कहने लगी कि, हे शुभे! तुम्हारा कल्याण हो। अब मैं मायके जाती हूं। तुम मेरी आज्ञाका पालन करती हुई निर्विकार चित्तसे यहाँ रहो। मेरे इन दोनों बालकों और वरवर्णिनी इस कन्याके साथ तुम स्नेहका व्यवहार करो और यह (मेरे चले जानेकी) बात भगवानसे कदापि न कहो। छायाने कहा,—हे देवि! जब तक भगवान् आपके केशोंको नहीं पकड़ेंगे और जब तक मुझे शाप नहीं देंगे, तब तक मैं इस बातको छिपाये रहूंगी; तुम जहाँ चाहो, जा सकती हो। छायाके इस प्रकार कहनेपर संज्ञा अपने पिताके घर चली गयी और वहीं कुछ दिनों तक रही। हे विप्र! इसके उपरान्त संज्ञासे उसके पिता विश्वकर्मा बार-बार ससुराल जानेका अनुरोध करने लगे। तब वह वडवा (घोड़ी) का रूप धारणकर उत्तर कुरुदेशमें चली गयी और हे महामुने! वहीं वह साध्वी निराहार रहकर तपस्या करने लगी ॥ ६-१२ ॥ संज्ञाके मायके चले जानेके पश्चात् उसकी आज्ञाके अनुसार उसका रूप धारणकर छाया भास्करदेवकी सेवा-शुश्रुषा करने लगी। सूर्य भगवान्ने उसे अपनी पत्नी संज्ञा जानकर उसके गर्भसे भी दो पुत्र और एक कन्याको उत्पन्न किया। हे द्विजसत्तम! इन दोनों पुत्रोंमें जो श्रेष्ठ था, वह संज्ञाके पहिले पुत्र वैवस्वत मनुकी तरह सावर्णि

टीका:—यह सावर्णिक मनुकी जन्मकथा जो भगवान् सूर्यदेव और छायाके सम्बन्धसे कही गयी है, वह सावर्णिक मनुके परजन्मकी कथा है। यह देवलोककी कथा है और सप्तशती गीतामें जो कथा है, वह पूर्व जन्मकी कथा है और मृत्युलोककी है ॥ ६-१२ ॥

मनुके नामसे प्रसिद्ध हुआ और दूसरा शनैश्चर नामक ग्रह हो गया। कन्याका नाम तापती था, जिसका विवाह यथासमय संवरण नामक राजासे हुआ था। अब छाया जैसा अपने पुत्रों और कन्याओंके साथ स्नेहका व्यवहार करती, वैसा संज्ञाके वैवस्वत आदि सन्तानके साथ नहीं करती थी। छायाके इस प्रकारके पक्षपातपूर्ण व्यवहारको वैवस्वत चुप चाप सहते जाते थे; परन्तु यमसे वह सहा नहीं गया। इस दुर्व्यवहारसे वह बड़ा ही दुःखी हुआ। हे मुने! यमने क्रोध आ जानेसे, बाल्यभावसे अथवा भावी उत्कर्षके निमित्तसे छायाको बड़ी फिटकार सुनायी और उसपर लात उठायी। इससे छायाको बड़ा क्रोध हुआ और उसने यमको शाप दिया कि, जबकि, मैं तेरे पिताकी पत्नी और तेरी पूजनीया माता हूं और तूंने फिटकार सुनाकर मुझपर लात तानी है, तब अवश्य ही तेरा एक पैर टूट जायगा। धर्मात्मा यमको यह शाप सुनकर और भी अधिक दुःख हुआ। वह मनुको साथ लेकर पिताके पास गया और उसने यथावत् सब वृत्तान्त कह सुनाया। यमने कहा,—हे देव! माता हमपर अपने सब बच्चोंके समान प्रेम नहीं करती। यद्यपि हम उसके ज्येष्ठ पुत्र हैं, तथापि वह हमारी अवज्ञा करती और हमारे छोटे भाइयोंका अधिक दुलार करती है। इस कारण बाल्यचापल्यसे समझिये या अज्ञानसे, उसपर मैंने लात अवश्य उठायी, किन्तु चलायी नहीं। मेरे इस अपराधको आप क्षमा कर सकते हैं। तापदाताओंमें श्रेष्ठ हे पिताजी! पुत्रके दुराचरण करनेपर भी उसके साथ माता कदापि दुर्व्यवहार नहीं करती। मां कभी नहीं चाहेगी कि, अपने पुत्रका पैर टूट जाय। किन्तु जब मांने मुझपर क्रुद्ध होकर ऐसा शाप दिया है, तब मेरा अनुमान है कि, यह मेरी जननी नहीं है। हे भगवन्! माताके शापसे मेरा पैर टूट न जाय, अनुग्रहपूर्वक ऐसा उपाय सोचिये॥ १३-२६॥ सूर्यने कहा,—हे पुत्र! तुम धर्मज्ञ और सत्यवादी होते हुए जब क्रोधके वशीभूत हो गये, तब निःसन्देह तुम कहते हो, वैसा ही हुआ होगा। अन्यान्य सब शापोंकी शान्तिका उपाय हो सकता है, किन्तु माताके शापकी निवृत्तिका कोई उपाय ही नहीं है। अतः तुम्हारी माताके वचनको अन्यथा करनेमें मैं असमर्थ हूं। परन्तु पुत्रस्नेहके कारण कुछ अनुग्रह कर सकता हूं। अब कृमि तुम्हारे पैरके थोड़ेसे मांसको नोचकर पृथ्वीमें डाल देंगे। इससे तुम्हारी माताका वचन सत्य होगा और तुम्हारी रक्षा भी हो जायगी। मार्कण्डेयने कहा,—फिर आदित्यदेव छायासे कहने लगे कि, तुम्हारे सभी पुत्र समान स्नेहके पात्र

टीका—इस स्थल पर जो यमुना, यम, सावर्णि मनु, वैवस्वत मनु, शनैश्चर, तापती ये सब अधिदैव भावसे युक्त हैं। अर्थात् ये सब देव-देवियां हैं। यथाः—यमुना नदीका अधिदैव, शनैश्चर ग्रहका अधिदैव इत्यादि। इन सबका अध्यात्म और अधिभूत रूप और ही है॥ १३-१९॥

होते हुए भी तुम एकसे प्यार करती हो और दूसरेसे नहीं, इसका क्या कारण है? इससे तो यही जान पड़ता है कि, तुम इनकी मां संज्ञा नहीं, किन्तु कोई और ही संज्ञाके रूपमें मेरे साथ रहती हो। ऐसा न होता, तो पुत्रके दुर्व्यवहारसे कभी माता उसे शाप दे सकती है? छायाने अबतककी सब बातें दिवाकरसे छिपा रक्खी थीं; किन्तु दिवस्पति सूर्यने समाधिस्थ होकर सब वृत्तान्त जान लिया और वे छायाको शाप देनेके लिये उद्यत हो गये। हे ब्रह्मन्! सूर्यके उस क्रुद्ध स्वरूपको देखकर छाया भयसे कांपने लगी और उसने आरम्भसे सब वृत्तान्त सूर्यदेवसे कह दिया। विवस्वान् सब वृत्तान्त सुनकर क्रोधायमान होकर श्वसुरके घर पहुंचे। व्रतपरायण विश्वकर्माने उनको क्रुद्ध देखकर और उनके कोपानलसे सब कुछ दग्ध हो जायगा यह जानकर, उनकी यथाविधि अर्चना की और उन्हें समझा बुझाकर शान्त किया ॥२७-३५॥ विश्वकर्माने कहा,—संज्ञा आपके इस अतिरिक्त तेजसे भरेहुए दुःसह रूपको सह नहीं सकी, इसीसे वनमें जाकर तपस्या कर रही है। वह इसलिये तपस्या कर रही है कि, आपका रूप ऐसा हो जाय, जिससे वह सह सके। आज आप अरण्यमें जाकर उस परम तपस्विनी, शुभकार्यपरायणा अपनी भार्याको देखें। हे देव! मुझे ब्रह्माके वचनका स्मरण होता है। तदनुसार यदि आपकी अनुमति हो, तो हे दिवस्पते! मैं आपके इस रूपको बदलकर कान्त (सुन्दर) रूपमें परिवर्तित कर दूंगा। मार्कण्डेयने कहा,—तब भगवान् रविने त्वष्टा (विश्वकर्मा) को आज्ञा दी कि, ठीक है। पहिले जैसा मेरा मण्डलाकार रूप था, वैसा फिर बना दो। सूर्यकी यह आज्ञा पाते ही विश्वकर्मा उन्हें शाकद्वीपमें लेगया और वहाँ उनको भ्रमियन्त्र (सान) पर चढ़ाकर छील-छालकर गढ़ने लगा ॥ ३६-४० ॥ हे ब्रह्मन्! अखिलजगत्के नाभिस्वरूप आदित्यके सानपर घूमनेसे समुद्र-गिरि-वनोंसे वेष्टित महीतल आकाशमें उठ गया और हे महाभाग! चन्द्र-ग्रह-तारकादिसे भरा हुआ निखिल गगनमण्डल नीचेकी ओर फेका जाकर उध्वस्त होने लगा। समुद्रोंका पानी छितरा गया, बड़े बड़े पर्वतोंके शिखर टूट फूटकर गिरने लगे और ध्रुवके आधारपर ठहरे हुए अशेष नक्षत्र ध्रुवके आधारकी डोरियां कट जानेसे पातालकी ओर बढ़ चले। चारों ओर महामेघोंके वेगसे घूमनेके कारण उत्पन्न हुए वायुसे आहत होकर घोर गर्जनाके साथ वे एक दूसरेपर टकरा टकराकर नष्ट होने लगे। हे मुनिसत्तम! इस प्रकार स्वर्ग, मर्त्य, पाताल तीनोंलोक सूर्यके भ्रमणसे भ्रमित होकर निरतिशय आकुल हो उठे। हे विप्र! इस प्रकार त्रैलोक्यके घूमनेसे देवर्षि और देवगण ब्रह्माको साथ लेकर सूर्यका स्तवन करने लगे। उन्होंने कहा,—तुम्हारे स्वरूपसे ही जाना गया है कि, सब देवोंमें तुमहीं आदिदेव हो। सृष्टि,

स्थिति और प्रलयके कालभेदसे तुम त्रिधा भिन्न होकर अवस्थान करते हो। हे जगन्नाथ! हे ग्रीष्मवर्षाहिमाकर! तुम्हारा मङ्गल हो। हे देवदेव! हे दिवाकर! तुम तीनों लोकोंको शक्ति प्रदान करो। सूर्य बराबर घूम रहे हैं, यह देखकर वहाँ उपस्थित हुए इन्द्रने प्रार्थना की कि, हे देव! हे जगद्व्यापिन्! हे अशेष जगत्पते! तुम्हारी जय हो। फिर वसिष्ठ, अत्रि प्रभृति सप्तऋषियोंने स्वस्ति मन्त्रोंका उच्चारण कर विविध स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति की। बालखिल्यगण गढ़े जाते हुए सूर्यको देखकर खिलखिला उठे और उन्होंने वेदोक्त आदि ऋचाओंसे उनका इस प्रकार स्तवन किया,—हे नाथ! तुम मुमुक्षुओंके मोक्ष, ध्यानियोंके एकमात्र ध्येय और कर्मकाण्डपरायण लोगोंकी अन्तिम गति हो। हे देवेश! हे जगन्नाथ! समस्त प्रजाओंका, हमारा और हमारे द्विपादों तथा चौपायोंका मङ्गल करो। फिर विद्याधर, यक्ष, राक्षस और पन्नगगण हाथ जोड़कर रविको प्रणाम करते हुए मन और श्रवणको सुख देनेवाला यह वचन बोले कि, हे भूतभावन! आपका तेज भूत (प्राणि) मात्रके लिये सहनीय हो ॥ ४१-५६ ॥ अनन्तर षड्ज, मध्यम और गन्धार इन तीनों ग्रामोंके विशारद हाहा, हूहू, नारद, तुम्बरु आदि संगीतविद्याको जाननेवालोंने मूर्छना और ताल आदिके उत्तम प्रयोगोंके साथ रविके सम्मुख सुखप्रद संगीत आरम्भ किया। विभावसु देव सानपर घूमते जाते थे। उन्हें प्रसन्न करनेके लिये विश्वाची, घृताची, उर्वशी, तिलोत्तमा, मेनका, रहजन्या, रम्भा प्रभृति प्रसिद्ध अप्सराएँ हाव-भाव-विलास आदिके साथ अनेक अभिनय करती हुई नाच रही थीं और वेणु (बाँसरी), वीणा, दर्दुर, पणव, पुष्कर, मृदङ्ग, पटह, आनक, देव-दुन्दुभि आदि सहस्रों बाजे साथ साथ बज रहे थे। उस समय गन्धर्वोंके गीतों, अप्सराओंके नृत्यों और तूर्यवादित्रोंके महाशब्दसे समस्त जगत् कोलाहलपूर्ण हो उठा। फिर देवोंने हाथ जोड़कर और भक्तिसे विनम्र होकर घूमते हुए सूर्यदेवको प्रणाम किया। देवता आदिके वहां उपस्थित होनेसे बड़ा कोलाहल हो रहा था

टीका:—पुराणोंमें समाधि भाषा, लौकिक भाषा और परकीय भाषा जिस प्रकार अलग-अलग साधारण बुद्धिसे भी समझमें आती है, वैसे भाषाके भावत्रय समझमें नहीं आते। क्योंकि अति निगूढ़ भावोंका एक तो साधारण तौरसे समझमें आना कठिन होता है और दूसरी ओर वेद और पुराण दोनोंकी यह शैली है कि, अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैव भावत्रयका मिला जुला वर्णन प्रायः रहता है। इस कारण ऐसी शैलियां कभी असंबद्ध प्रतीत होती हैं और कभी समझनेमें नहीं आती हैं। जिनमें वैदिक दर्शनशास्त्रोंका परिपाक है अथवा जो समाधिस्थ हों, ऐसे तत्वज्ञानी विद्वान्‌गण ही ऐसी मिले जुले त्रिभावात्मक वर्णनशैलीका वर्गीकरण करनेमें समर्थ होते हैं। ऊपर जो वर्णनशैली थी, वह अधिदैवभावसे युक्त थी और यह अधिभूतभावसे युक्त है। ऊपरके वर्णनसे उपासकलोग और इस वर्णनसे वैज्ञानिक बुधजन लाभ उठा सकते हैं ॥ ४०-४५ ॥

और विश्वकर्मा धीरे धीरे सूर्यका तेज क्षीण कर रहा था। शिशिर, वर्षा और ग्रीष्मके कारण स्वरूप तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिवके द्वारा संस्तुत भानुदेवके खरादे जानेकी यह कथा जो सुनेंगे, वे जीवनका अन्त होनेपर दिवाकरलोकको प्राप्त होंगे ॥ ५७-६५ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका भानुतनुलिखन नामक
एक सौ छठां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ सातवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेय बोले,—प्रजापति विश्वकर्मा सूर्यके शरीरको गढ़ता हुआ पुलकित होकर विवस्वानकी इस प्रकार स्तुति करने लगा,—हे प्रणतोंका हितसाधन करनेवाले और उनपर कृपा करनेवाले, वेगवान् सात घोड़ोंके रथपर आरूढ़ होनेवाले, कमल-कुलको विकसित करनेवाले, तमोराशिका विनाश करनेवाले, महान् तेजवाले, महात्मा विवस्वन्! तुम्हें नमस्कार करता हूं। अतिशय पावन, पुण्यकर्मा, अनेक इच्छित फलोंके देनेवाले, धधकते हुए अग्निके समान मयूखशाली और सब लोकोंके हितकारी हे देव! तुम्हें नमस्कार है। स्वयं उत्पत्तिरहित होकर भी जो त्रैलोक्यकी उत्पत्तिके कारणस्वरूप हैं, जो भूतात्मा, रश्मिपति, साक्षात् धर्मस्वरूप, महाकारुणिकोंमें श्रेष्ठ और चाक्षुष विषयोंके आलयस्वरूप हैं, उन सूर्यदेवको नमस्कार है। ज्ञानियोंके जो अन्तरात्मास्वरूप हैं, जगत्के आधार हैं, जगत्के हितेच्छु हैं, स्वयम्भु हैं, समस्त लोकोंके चक्षुःस्वरूप हैं, सुरश्रेष्ठ हैं और अमिततेजा हैं, उन विवस्वान्को नमस्कार करता हूं। हे देव! तुम जगत्की हितकामनासे देवताओंके साथ क्षणकालपर्यन्त उदयाचलके शिरकी मालाके रूपमें उदित होकर अपने पहिले किरणसे ही सहस्रों शरीर धारण कर तमोराशिका विनाश करते हुए जगत्को प्रकाशित करते हो ॥ १-६ ॥ हे मिहिर! जागतिक तिमिररूपी मद्यका पान करनेसे उसके मदके कारण तुम्हारी लोहित मूर्ति हो गयी है और उस मूर्तिके किरण-निकरसे दीप्तिमान् होकर त्रिभुवन शोभा पा रहा है।

टीकाः—इसमें सूर्यभगवान्की सहस्रकलाओं का उल्लेख पहिले है। यह उनके अध्यात्म-रूपकी कला है। जिस अध्यात्मरूपका दिग्दर्शन पहिले किया गया है। अदितिके गर्भमें उसकी एक कला पहुंची। वह अधिदैवरूपसे संबद्ध है। तदनन्तर जो उसका षोडशांश अब कहा गया है, वह सूर्यगोलकस्थित अधिभूतरूपके साथ सम्बद्ध है। जिससे तीनों भूमियोंका तारतम्य लक्षित होता है और श्रीसूर्य्यभगवान्का यथार्थ रूप समझनेमें भी सहायता मिलती है ॥ १-६ ॥

हे भगवन्! तुम जगत्के हितके लिये निरन्तर समावयव, अतिमनोरम, ईषत् विकम्पित विस्तृत रथपर आरोहण कर अश्वोंकी सहायतासे विचरण करते हो। हे अरिनिषूदन! तुम सञ्जीवनी सुधाके द्वारा देवगण और पितृगणको एक साथ ही तृप्त कर देते हो। अतः जगत्के हितके लिये तुम्हें प्रणाम करता हुआ मैं तुम्हारा शरीर गढ़ रहा हूं और तुम्हारे तेजको घटा रहा हूं। हे प्रणतजनवत्सल! हे त्रिभुवनपावन भास्कर! मैं तुम्हारे तोतेके समान रङ्गवाले अश्वोंकी सृष्टि करनेके कारण विख्यात हुआ हूं और तुम्हारी चरणधूलिके प्रभावसे अपने गार्हस्थ्यको पवित्र कर रहा हूं। अतः मुझ प्रणत जनपर अनुग्रह कीजिये। समस्त जगत्के कारणस्वरूप, त्रिभुवन-पवित्रकारी, तेजःस्वरूप, समस्त जगत्के प्रदीपतुल्य, विश्वके उत्पन्नकरनेवाले हे रविदेव! तुम्हें नमस्कार है ॥ ७-११ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका सूर्यस्तवन नामक एकसौसातवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ आठवाँ अध्याय।

—०:※:०—

मार्कण्डेयने कहा,—विश्वकर्माने इस प्रकार दिवस्पति सूर्यकी स्तुति करते और उनको गढ़ते हुए उनके तेजका केवल सोलहवाँ हिस्सा मण्डलमें रहने दिया, शेष सब छाँट दिया। मण्डलसे तेजके पंद्रह भाग निकल जानेसे सूर्यका शरीर बड़ा ही सुन्दर और कान्तिमान् हो गया। सूर्यमण्डलके तेजके पन्द्रह भाग, जो मण्डलसे पृथक् किये गये थे, उनसे शत्रुओंका विनाश करनेके लिये विश्वकर्माने विष्णुका चक्र, शिवका शूल, कुबेरकी पालकी, यमका दण्ड, कार्तिकेयकी शक्ति और अन्यान्य देवोंके अनेक प्रदीप्त अस्त्र बना डाले। मार्तण्डका तेज मर्यादित हो जानेसे उनकी शोभा बढ़ गयी और उनके सब अवयव सुडौल होगये। फिर उन्होंने समाधि लगाकर देखा कि, उनकी पत्नी घोड़ीका रूप धारण कर तप कर रही है और तप तथा नियमके प्रभावसे ऐसी तेजस्वी हो गयी है, जिसे जीवमात्र देखनेमें असमर्थ हो रहे हैं ॥ १-६ ॥ उससे मिलनेके लिये भानुदेव घोड़ेका रूप धारण कर उत्तरकुरुदेशकी ओर चल पड़े। उनको दूरसे आते देख, घोड़ीका रूप धारण की हुई संज्ञाने पर-पुरुष जानकर सावधान हो, अपना पीछा बचाया और वह घोड़ीका रूप धारण किये हुए सूर्यके सामने आगई। दोनोंका आमने सामने मुंह होनेसे दोनोंकी नासिकाओंका संयोग हुआ; जिससे सूर्यकी नासिकासे निकला हुआ तेज संज्ञाकी नासिकामें प्रवेश कर उसके गर्भाशयमें स्थिर हो गया। उस गर्भसे दो पुत्र उत्पन्न हुए, जो अश्विनीकुमार कहाते

हैं और देवताओंके श्रेष्ठ वैद्य हैं। घोड़ेके मुखसे निकले हुए नासत्य और दस्र भी घोड़ेका रूप धारण किये हुए सूर्यके ही पुत्र हैं। वीर्यका जो शेष अंश बच रहा, उससे जिरह-बख्तर धारण किये, बाणोंसे भरा तरकस बाँधे, खड्ग-धनुधारी, अश्वारूढ़ रेवन्तकी उत्पत्ति हुई। फिर उनके अपना सुनिर्मल वास्तविक रूप धारण करनेपर उस शान्त रूपके दर्शनसे प्रसन्न होकर संज्ञाने भी अपना वास्तविक रूप धारण किया। तब जलको सोखनेवाले भास्कर-देव अपनी प्रेममयी पत्नीको घर ले आये। संज्ञाका ज्येष्ठ पुत्र वैवस्वत मनु मन्वन्तराधिप और दूसरा यम दण्ड तथा अनुग्रहके हेतु धर्मदृष्टिसम्पन्न हुआ ॥ ७-१४ ॥ यमको छायाने जो शाप दिया था, उससे वह बड़ा ही व्यथित और उसकी निवृत्तिके लिये सदा धर्माचरणमें प्रवृत्त रहता था; इसीसे 'धर्मराज' के नामसे प्रसिद्ध हुआ। पिताने भी उसे उःशाप दिया था कि, तेरे पैरका मांस कृमियों द्वारा नोचा जाकर जब पृथ्वीपर गिरेगा, तब मातृशापकी निवृत्ति हो जायगी। यमके धर्मदृष्टिसम्पन्न होनेसे वह शत्रु-मित्र सभीके साथ समान रूपसे व्यवहार करता था। इससे प्रसन्न होकर विवस्वान्ने उसे याम्य अधिकारपर नियुक्त किया। हे विप्र! भगवान् दिवाकरने उसे फिर लोकपालत्व और पितृगणका आधिपत्य प्रदान किया। महदाशय पिताने यमुनाको कलिन्ददेश-वाहिनी नदी और अश्विनीकुमारोंको देवताओंके वैद्य बना दिया। रेवन्त गुह्यकोंका अधिपति बना। उसे भूतभावन भगवान्ने आशीर्वाद दिया कि, हे वत्स! तुम सब लोकोंके पूज्य होगे। जो मनुष्य अरण्यमें, दावानलमें, शत्रु या चोरोंकी चंगुलमें फँस जाने-पर भयभीत होकर तुम्हारा स्मरण करेंगे, उनका तुम सब विपत्तियोंसे उद्धार करोगे और जो मनुष्य तुम्हारी पूजा करेंगे, उनसे प्रसन्न होकर तुम उन्हें मङ्गल, सुबुद्धि, सुख, राज्य, आरोग्य, कीर्त्ति और उन्नति प्रदान करोगे ॥ १५-२२ ॥ छायासे जो सावर्णि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ है, वह भविष्यत्में महायशा सावर्णिक नामक आठवाँ मनु होगा। इस समय वह मेरु पर्वतपर घोर तपस्या कर रहा है। उसका भाई शनैश्चर आदित्यकी आज्ञासे ग्रह बन गया है। हे द्विजोत्तम! आदित्यकी युवती कन्या लोकपावनी यमुना नदियोंमें श्रेष्ठ मानी गयी है। सूर्यदेवके ज्येष्ठ पुत्र वैवस्वत मनुकी सम्प्रति सृष्टि चल रही है। उसका जो वंशविस्तार हुआ, उसका वृत्तान्त आगे चल कर कहेंगे। इस सूर्यपुत्र देव-ताओंकी कथा और रविका माहात्म्य जो व्यक्ति सुनेंगे और पढ़ेंगे, वे उपस्थित विपदा-ओंसे मुक्त होकर महान् यशस्वी होंगे और आदिदेव महात्मा मार्तण्डका माहात्म्य सुननेसे दिन रातका किया हुआ सब पाप कट जायगा ॥ २३-२८ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका सूर्य-सन्तति नामक एकसौआठवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ नववां अध्याय।

——:※:——

कौष्टुकिने कहा,—हे भगवन्! आपने भानुदेवकी सन्ततिकी उत्पत्ति और आदिदेवके माहात्म्य तथा स्वरूपका विस्तारपूर्वक भलीभांति वर्णन किया सही, किन्तु हे मुनिसत्तम! भास्करदेवका सम्यक् माहात्म्य पुनः सुनना चाहता हूँ, आप प्रसन्न होकर वह सुनावें। मार्कण्डेयने कहा,—आदिदेव विवस्वानने पुराकालमें लोगोंके द्वारा आराधित होकर जो कुछ किया, वह सब माहात्म्यका विषय तुमसे कहता हूं। दमका विख्यात पुत्र राज्यवर्द्धन राजा होकर सब प्रकारसे पृथिवीका पालन करता था। उसके स्वधर्मानुसार राज्यशासन करते हुए समस्त राष्ट्र धन-जनके द्वारा प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त हो रहा था और उसके राजा होनेसे अन्यान्य राजन्यगण, समग्र पृथ्वी और पौरजन अतीव हृष्ट-पुष्ट थे ॥ १—६ ॥ उसके राजत्वकालमें किसी प्रकारके उपसर्ग, व्याधि, हिंसक जन्तु, अनावृष्टि या अतिवृष्टिसे भय नहीं था। वह बड़े-बड़े यज्ञकर याचकोंको दानके द्वारा सन्तुष्ट करता और अत्यन्त धर्मके अनुकूल विषयोंका उपभोग करता था। इस प्रकार राजकाज और प्रजापालन अच्छी तरहसे करते हुए उसने एक दिनकी तरह सात सहस्र वर्ष बिता दिये। विदूरथ नामक एक दाक्षिणात्य राजाकी मानिनी नामकी कन्यासे उसका विवाह हुआ था। एक दिन वह सुन्दर भौंहोंवाली मानिनी राजसेवकोंकी उपस्थितिमें राजाके सिरमें तेल मल रही थी। इसी अवसरपर उसकी आंखोंमें आंसू भर आये और वे धीरे धीरे राजाके शरीरपर ढुलक पड़े। अश्रुबिन्दुओंके शरीरपर गिरनेसे राज्यवर्द्धनने उसकी ओर देखा और पूछा कि, रोनेका कारण क्या है? परन्तु मानिनी कुछ उत्तर न देकर रोती ही गयी। राजाने फिर आग्रहपूर्वक रोनेका कारण पूछा। तब उस मनस्विनीने 'कुछ नहीं' कहकर बात टाल दी। इससे राजाको सन्तोष नहीं हुआ और बार-बार पूछकर रोनेका कारण बतानेके लिये उसे वह विवश करने लगा। इसपर राजाके सिरका एक सफेद बाल बताकर उस सुमध्यमाने कहा,—हे भूपाल! मुझ मन्दभागिनीके शोकका यह कारण देखिये। यह देख सुनकर राजा हँसने लगा। राजसेवकों और पौरजनके सामने ही उससे राजाने हंसते हुए कहा,—हे विशालाक्षि! हे कल्याणि! इसके लिये रोदन करना वृथा है। सभी जीवोंका जन्म होनेपर उनका बढ़ना और परिणामको पहुँचना स्वाभाविक है। जीव इन विकारोंसे छुटकारा पा नहीं सकते। इसके लिये किसीको शोक नहीं करना चाहिये। हे वरानने! मैंने सब वेदोंका अध्ययन किया है, सहस्रों यज्ञ किये हैं, ब्राह्मणोंको नाना प्रकारके दान दिये हैं, सन्तान उत्पन्न किये हैं, तुम जैसी मनुष्योंके लिये अति दुर्लभ

भोगाई वस्तुको पाकर उसका उपभोग किया है, भली भाँति पृथ्वीका पालन किया है, न्यायसे अनेक युद्ध कर उनमें विजय पायी है, प्रिय मित्रोंके साथ हास-परिहास और वन-विहार किया है। भद्रे ! मैंने ऐसा कौनसा कार्य नहीं किया है, जिसके लिये मेरा पलित (पका हुआ) केश देखकर तुम्हें भय हुआ ? हे शुभे ! मेरे चाहे केश पक जायं, शरीरमें झुर्रियां पड़जायं, मैं कितनाही शिथिल क्यों न हो जाऊं, उससे मेरी कोई क्षति नहीं। क्योंकि हे मानिनि ! इस समय सब प्रकारसे मैं कृतकृत्य हो गया हूं। हे भद्रे ! मेरे सिरके जो तुमने श्वेत केश देखे हैं, उनकी चिकित्सा मैं वानप्रस्थ आश्रमको ग्रहणकर और वनमें जाकर करूँगा ॥ ७—२३ ॥ बाल्यावस्थामें खेल-खिलवाड़ और कौमार तथा युवावस्थामें विद्याभ्यास, विषयभोगादि उन अवस्थाओंके योग्य कार्य सम्पादन कर वृद्धावस्थामें वनमें चले जानाही उचित है। हे भद्रे ! मेरे पूर्वज और उनके भी पूर्वज यही करते आये हैं। इस लिये तुम्हें रोनेका कोई प्रयोजन नहीं है। हे भद्रे ! तुम शोक न करो। मेरे केश पक चले हैं, यह मेरे अभ्युदयका चिह्न है। इसके लिये तुम रोदन मत करो। मार्कण्डेयने कहा,—तदनन्तर समीपस्थ राजसेवकों और प्रजाओंने राजा राज्यवर्द्धनको प्रणाम कर कहा,—हे नराधिप ! आपकी पत्नीका रोना व्यर्थ है, यह बात सही है; किन्तु हमारे और सभी जीवोंके लिये रोदनका समय उपस्थित हो गया है। हे नाथ ! आप हमारे प्रतिपालक हैं। हे नृप ! आपने वानप्रस्थाश्रमकी जो बात कही, उससे हमारे प्राण व्याकुल हो उठे हैं ॥ २४—२६ ॥ यदि आप वनमें गमन करेंगे, तो हम लोग भी यहांसे आपके साथ चल देंगे। किन्तु हे नाथ ! आपके वनमें चले जानेपर निश्चय ही भूलोकमें श्रौत-स्मार्त कर्मोंकी बड़ी हानि होगी। अतः यदि आप धर्मोपघातका विचार करें, तो अपने इस सङ्कल्पका त्याग करदें। हे नराधिप ! आपने जो इस पृथ्वीका लगातार सात सहस्र वर्षोंतक शासन किया है, उससे कैसे महापुण्यका उद्भव हुआ है, उसे अवलोकन करें। हे महाराज ! आप वनमें जाकर जो तपस्या करेंगे, वह इस पृथ्वी-पालनके सोलहवें हिस्सेके भी बराबर नहीं है। राजाने कहा,—मैंने इस पृथ्वीका सात सहस्र वर्ष राज्य किया है। अब मेरे वनगमनका समय उपस्थित हुआ है। मेरे पुत्र-पौत्र भी हैं। उनकी वंशपरम्परा मैं देखता बैठूं, यह यमराज कदापि सहन नहीं करेंगे। हे नागरिको ! मेरे मस्तकका जो पका हुआ केश तुमने देखा है, इसीको अनार्य और उग्रकर्मा लोग मृत्युका दूत समझेंगे। अतः मैं पुत्रको राज्याभिषेक कर समस्त भोगोंसे चित्तको हटाकर वनवासी होकर जबतक यमराजकी सेना उपस्थित न हो, तबतक

टीका:—पुराणशास्त्रमें त्रिविध भाषाओं और त्रिविध भावोंके वर्णनके साथही साथ कल्पकल्पान्तरका दैवीलोकोंका इतिहास और मृत्युलोकका इतिहास भी मिला जुला वर्णित होता है। इसको पुराणपाठकोंको

तपाचरण करता रहूंगा ॥ ३०—३७ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—फिर राजाने वानप्रस्थाश्रम ग्रहण करनेका निश्चय कर पुत्रको राज्याभिषेक करनेका शुभ मुहूर्त बतानेके लिये ज्योतिषियोंको बुलाया। यद्यपि सभी दैवज्ञ अच्छे शास्त्रज्ञ थे, तथापि राजाके वनगमनका निश्चय सुनकर व्याकुल हो उठे और दिन, लग्न, होरा आदि स्थिर करनेमें असमर्थ हो गये। उन्होंने रुँधे हुए कण्ठसे राजासे कहा,—हे नृप! आपका निश्चय सुनकर हमारी बुद्धि चकरा गयी है। मार्कण्डेयने कहा,—हे मुने! तब अन्यान्य नगरों, अधीनस्थ राष्ट्रों और उस राजधानीके अनेक वृद्ध ब्राह्मण वहां उपस्थित हुए और सिर हिलाकर कहने लगे,—हे राजन्! आप प्रसन्न हों और कृपा करके पहलेकी तरह हमारा प्रतिपालन करते रहें। हे भूपाल! आपके वनमें चले जानेसे सभी लोग बड़े दुःखित हो जांयगे। अतः हे राजन्! जिससे समस्त जगत् व्यथित न हो, ऐसा आचरण आप कीजिये। अब हम थोड़ेही दिन जीयेंगे। हमारे जीते जी आपसे शून्य सिंहासनको हम देखना नहीं चाहते ॥ ३८–४४ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—इस प्रकार उन तथा अन्यान्य ब्राह्मणों, प्रजाओं, भूपालों, अमात्यों, भृत्यों आदिके पुनः पुनः अनुरोध करनेपर भी राजाने वनवासका विचार नहीं बदला और केवल इतना ही कहा कि, कुछ भी हो, यमराज कदापि मुझे क्षमा नहीं करेंगे। तब सब विद्वान् ब्राह्मण, अनुभवी प्रजागण, अमात्य और राजसेवक एकत्र होकर परामर्श करने लगे कि, अब क्या करना चाहिये? हे विप्र! धार्मिकप्रवर उस राजापर प्रेम करनेवाले उन सब ब्राह्मण आदि लोगोंने अन्तमें निश्चय किया कि, हम लोग अच्छी तरह ध्याननिमग्न होकर तपस्याके द्वारा भगवान् भास्करकी आराधना करें और उन्हें प्रसन्न कर महीपतिकी दीर्घायुके लिये प्रार्थना करें। उन सबने इस प्रकार निश्चय कर किसीने तो घरमें ही अर्घ-उपचार आदिके द्वारा भास्करकी पूजा करना आरम्भ किया और कोई मौन होकर ऋग्वेदके मन्त्रों, कोई यजुर्वेदके मन्त्रों और कोई सामवेदके मन्त्रोंका जप करते हुए रविको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करने लगे। कितने ह लोगोंने नदीके पुलिनमें निराहार रहकर तपाचरण करते हुए बड़े परिश्रमसे भास्करकी आराधना करनी प्रारम्भ की ॥ ४५–५२ ॥ कुछ जो अग्निहोत्री थे, उन्होंने दिनरात रविसूक्तका जप करना आरम्भ किया और कोई सूर्यकी ओर अखण्ड दृष्टि लगाकर खड़े ही रह गये। इस प्रकार वे सब सुप्रसिद्ध शास्त्रीय विधिके अनुसार नाना रूपसे सूर्याराधना करने लगे। उनकी सूर्याराधनाका यह अतिशय प्रयत्न देखकर सुदामा नामक

अवश्य ध्यानमें रखना चाहिये। भगवान् सूर्यदेवकी सन्ततिका वर्णन दैवीलोकसे सम्बन्ध रखता है और इस अध्यायके महाराजा राज्यवर्धनका इतिहास मृत्युलोकका है, ऐसा समझना उचित है। ॥ ३०—३७ ॥

एक गन्धर्व वहाँ उपस्थित हुआ और बोला,—हे द्विजगण! यदि आपको भास्करकी आराधना ही करनी है, तो वह ऐसी कीजिये, जिससे वे प्रसन्न हों। कामरूप महापर्वत-पर सिद्धवृन्दसे घिरा हुआ जो गुरुविशाल नामक अरण्य है, वहाँ शीघ्र जाकर सावधान होकर आप लोग भानुदेवकी आराधना करें। इससे आपका अभीष्ट सिद्ध होगा; क्योंकि इस कार्यके लिये वही सिद्धक्षेत्र अधिक फलदायक है। मार्कण्डेयने कहा,—हे द्विज! गन्धर्वका यह वचन सुनकर वे ब्राह्मण उस अरण्यमें गये और वहाँ उन्होंने सूर्यदेवका एक पवित्र मन्दिर देखा। ब्राह्मणों और अन्य सब वर्णके लोगोंने मन्दिरमें जाकर निर-लस और नियताहार होकर धूप, पुष्प आदिसे भास्करकी पूजा की। हे ब्रह्मन्! अनुले-पन, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, जप, होम, नैवेद्य आदिके द्वारा संयतचित्तसे सूर्यदेवकी पूजा करते हुए सब वर्णके लोग सूर्यदेवकी स्तुति करने लगे॥ ५३-६१॥ ब्राह्मणोंने कहा,—देव, दानव, यक्ष और चमकनेवाले ग्रहोंमें अधिक तेजस्वी सूर्यदेवके हम शरणापन्न हुए हैं। जो देवेश्वर अन्तरिक्षमें अवस्थित होकर सब दिशाओंको प्रकाशित करते हैं, जो किरणोंके द्वारा वसुधा और अन्तरिक्षको व्याप्त किये हुए हैं, जो चारों युगोंके अन्तकालमें दुर्निरीक्ष्य कालाग्निस्वरूप हैं, जो प्रलयके अनन्तर भी स्थित रहते हैं, जो भास्कर, सविता, दिवाकर, पूषा, अर्यमा, स्वर्भानु, दीप्तदीधिति, योगीश्वर आदि नामोंसे अभिहित होते हैं, जो ऋषियोंके अग्निहोत्रके समयमें यज्ञदेवके अधिष्ठाता हैं, जो अक्षर, परमगुह्य, अत्युत्तम मोक्षद्वार और ब्रह्मस्वरूप हैं, जो तुरन्त जोड़े हुए छन्दोरूपी अश्वोंके द्वारा गगनमें सञ्चार करते हैं, जो उदयास्त और सुमेरुकी प्रदक्षिणा करनेमें सदा नियुक्त रहते हैं, जो रक्त, पीत और सितासित वर्णके हैं और मिथ्या, सत्य, पुण्यतीर्थ तथा पृथग्विध विश्वस्थितिस्वरूप हैं, उन अदितिगर्भ-सम्भूत, अनन्त, अचिन्त्य, आदिदेव प्रभाकरका हम आश्रय करते हैं॥ ६२-६८॥ जो ब्रह्मा, विष्णु, शिव, प्रजापति, वायु, आकाश, सलिल, पृथ्वी, पर्वत, समुद्र, ग्रह-नक्षत्र-चन्द्र आदि, वनस्पति, वृक्ष और औषधिस्वरूप हैं, जो व्यक्ताव्यक्त भूतवर्गके धर्माधर्म-प्रवर्तक हैं और जिन्होंने ब्राह्मी, वैष्णवी, और माहेश्वरीके रूपमें त्रिधा विभिन्नरूप धारण किये हैं, वे भास्करदेव हमपर प्रसन्न हों। जिनका अद्वितीय तेजस्वी प्रभामण्डल देखा नहीं जा सकता, ऐसे जो दिवाकर और सौम्यरूप सुधाकर भी हैं, वे भास्करदेव हमपर प्रसन्न हों। जिनके इन दोनों सुप्रसिद्ध रूपोंके द्वारा अग्निसोममय यह विश्व विनिर्मित हुआ

टीकाः—भगवान् भास्करदेवका अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत इन तीनों रूपोंका पृथक् पृथक् वर्णन पहिले आचुका है। उन्हीं तीनों रूपोंको ध्यानमें रखकर इस सूर्यस्तुतिका मनन करनेसे इसका रहस्य ठीक समझमें आवेगा। क्योंकि इस स्तुतिमें त्रिविध रूपोंका ही लक्ष्य कराया गया है॥ ६९-७४॥

है, वे भास्करदेव हमपर प्रसन्न हों ॥ ६६-७४ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—हे द्विजोत्तम! इस प्रकार उन्होंने अत्यन्त भक्तिके साथ तीन मासतक स्तोत्रपाठ कर भगवान् भास्करको सन्तुष्ट कर लिया। भास्करदेव स्वयं दुर्निरीक्ष्य होते हुए भी अपने दिव्यमण्डलसे निकलकर और उदयकालीन मण्डल-प्रभासे युक्त होकर उन आराधकोंके दृग्गोचर हुए। उनके स्पष्ट दर्शनसे सब लोगोंने पुलकित और भक्तिसे विनम्र होकर, उन अनादि सविताको यह कहकर प्रणाम किया कि,—हे सहस्ररश्मे! तुम्हें नमस्कार है। तुम समस्त भूतोंके कारण और निखिल जगत्के हेतुस्वरूप हो। हे अखिलयज्ञेश्वर! तुम पूज्य हो, निखिल यज्ञोंके आधार हो और योगियोंके ध्यानके विषय हो। तुम हमपर प्रसन्न हो ॥ ७५-७८ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका भानुस्तव नामक
एक सौ नववाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ दशवां अध्याय।

—०:✻:०—

मार्कण्डेय बोले,—तदनन्तर भगवान् भानु प्रसन्न होकर उन आराधकोंसे कहने लगे,—हे द्विजादि वर्णोंके आराधकों! तुम लोग मुझसे जो कुछ पानेकी अपेक्षा रखते हो, उसको माँग लो। अशीतांशु जगदीश्वर वर देनेके लिये प्रस्तुत रविदेवको उन द्विजादि वर्णोंके लोगोंने आगे खड़े देखा; तब हे विप्र! आश्चर्यसे चकित हो, सबने उन्हें प्रणाम किया और कहा,—हे तिमिरनाशक भगवन्! यदि हमारी भक्तिसे आप प्रसन्न हुए हैं, तो हम लोगोंका राजा राज्यवर्द्धन नीरोग, विजितशत्रु, पूर्णकोष और स्थिरयौवन होकर दश सहस्र वर्षतक जीवित रहे। मार्कण्डेयने कहा,—हे महामुने! फिर तथास्तु कहकर भगवान् वहीं अन्तर्हित हो गये और सब प्रजाजन भी वरलाभसे संतुष्ट होकर राजाके पास चले आये। हे द्विज! सहस्रांशुकी आराधना और उनसे वरलाभकी जो कुछ घटना हुई थी, प्रजाओंने वह सब राजासे कह सुनायी ॥ १-६ ॥ हे द्विज! वह सब सुनकर नरेन्द्रपत्नी मानिनी बहुत ही प्रसन्न हुई। परन्तु राजाने इस सम्बन्धमें कुछ भी नहीं कहा और वह बहुत देरतक विचार करता रहा। फिर मानिनीने हृष्ट अन्तःकरणसे पतिसे कहा,—हे महीपाल! आप बढ़ी हुई आयुसे अब सब प्रकारकी वृद्धि प्राप्त करें। हे विप्र! आनन्दित मानिनीके द्वारा इस प्रकार सत्कृत होनेपर भी राजा चिन्तामें ही पड़ा रहा और उसने रानीको कुछ उत्तर नहीं दिया। तब फिर मानिनीने नीचे मुंह

किये हुए चिन्ताकुल राजासे इस प्रकार कहना आरम्भ किया,—हे नृप! ऐसे आनन्दके अवसरपर भी आपको आनन्द क्यों नहीं होता? आप नीरोग और स्थिरयौवन होकर आजसे दश सहस्र वर्ष जीयेंगे, क्या यह आनन्दका विषय नहीं है? हे पृथिवीपते! ऐसे आनन्दके अवसरपर आप चिन्ताकुल क्यों हो रहे हैं, इसका कारण कहिये॥ ७-१२॥ राजाने कहा,—भद्रे! मेरा क्या अभ्युदय हुआ? तुम मेरा अभिनन्दन क्यों करती हो? सहस्रों दुःखोंकी प्राप्ति होनेपर मैं क्या आनन्दका उपभोग करूँगा? मैं अकेला दश सहस्र वर्ष तक जीऊँगा, किन्तु तुम नहीं जीयोगी। तब क्या तुम्हारे वियोगसे मुझे दुःख नहीं होगा? पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और अन्यान्य प्रिय बान्धवोंकी मृत्युको देखकर क्या मेरे दुःखकी कम सम्भावना है? हे भद्रे! अति भक्त मेरे भृत्यों और मित्रोंके मर जानेसे मुझे निरन्तर दुःखका ही अनुभव करना पड़ेगा। जिन्होंने मेरे लिये अपनी शिराओंको जलाकर तपस्या की, वह मर जायँगे और मैं जीवित रहकर सुखभोग करूँगा, क्या यह मेरे लिये धिःकारकी बात नहीं है? हे वरारोहे! मुझे जो दश सहस्र वर्षोंकी आयु मिली है, यह मेरे लिये आपत्ति है। इससे मेरा कुछ भी अभ्युदय नहीं हुआ है। इन सब बातोंका विचार न कर तुम मेरा सत्कार क्यों करती हो?॥१३-१८॥ मानिनीने कहा,—हे महाराज! आपने जो कहा, वह दुःखकर है, इसमें सन्देह नहीं है। हम प्रजावर्ग हैं, हमारा आपपर प्रेम है, इसीसे हम यह सब दोष देख नहीं सके। हे नरनाथ! यदि ऐसा ही है, तो इस समय क्या करना चाहिये, इसका विचार कीजिंये। भगवान् रविने प्रसन्न होकर जो कहा है, वह अन्यथा हो नहीं सकता। राजाने कहा,—पौरों और भृत्योंने प्रसन्न चित्तसे मेरा जो उपकार किया है, उससे निष्कृति पाये बिना मैं किस प्रकार भोगोंका अनुभव करूँगा? अतः मैं आजसे उसी पर्वतपर जाकर संयत-चित्तसे निराहार रहकर भानुदेवको प्रसन्न करनेके लिये तपस्या करूँगा। जिस प्रकार मैं उनके प्रसादसे स्थिरयौवन और निरामय होकर दश सहस्र वर्ष जीऊँगा, हे वरानने! उसी प्रकार मेरी समस्त प्रजा, भृत्य, तुम, कन्या, पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, सुहृद आदि जीवित रहें। यदि भगवान् भास्कर ऐसा अनुग्रह करें, तो मैं प्रसन्नचित्तसे इस राज्यमें राजा रहकर समस्त राजसुखोंका उपभोग करूँगा। यदि अर्कदेवने ऐसा अनुग्रह न किया, तो हे मानिनी! जब तक मेरे प्राण निकल न जायँ, तब तक उसी पर्वतपर रह कर निराहार हो, तपाचरण करूँगा॥ १९-२६॥ मार्कण्डेयने कहा,—राजाके वचन सुनकर मानिनीने तथास्तु कहा और वह भी पतिके साथ उसी पर्वतपर चली गयी। हे द्विज! सपत्नीक नरपतिने पूर्वोक्त पर्वतस्थित मन्दिरमें जाकर भास्करदेवकी आराधना करना प्रारम्भ किया। निराहार रहनेसे दिन दिन जैसा राजा कृश होने लगा, वैसी मानिनी

भी हो चली। शीत, वायु और धूपको सहनेका दोनोंको अभ्यास हो गया और दोनों उग्र तपस्यामें निरत हो गये। हे द्विजोत्तम! इस प्रकार भानुदेवकी आराधना और तपस्या करते हुए एक वर्षसे भी अधिक काल उन दोनोंने बिता दिया। अन्तमें भानुदेव प्रसन्न हुए और उन्होंने दोनोंकी अभिलाषाके अनुसार समस्त भृत्य, पुत्र, पौत्र आदिके लिये दश सहस्र वर्षोंकी आयुका वर प्रदान किया। वरप्राप्त हो जानेके उपरान्त राजा रानीके साथ राजधानीमें लौट आया और प्रसन्नचित्तसे धर्मानुकूल प्रजा-पालन करता हुआ राज्यशासन करने लगा। उस धर्मात्माने अनेक यज्ञ किये, अहोरात्र सत्पात्रोंको दान किया और महिषी मानिनीके साथ नानाप्रकारके भोग-विलास किये। इसी तरह उसने पुत्र, पौत्र, भृत्य, पुरजन आदिके साथ स्थिरयौवन होकर प्रसन्नताके साथ दश सहस्र वर्ष बिता दिये। उस समय भृगुवंशमें उत्पन्न हुए प्रमति नामक ऋषिने राजाके इस चरित्रको देखकर विस्मयके साथ इस गाथाका गान किया,—सूर्योपासनामें क्या ही अपूर्व शक्ति है? जिसके प्रतापसे राजा राज्यवर्द्धनने अपनी तथा अपने आत्मीयोंकी आयु बढ़ा ली ॥ २७-३६ ॥ हे विप्र! तुमने आदिदेव विवस्वान् आदित्यके माहात्म्यके विषयमें जो जिज्ञासा की, वह मैंने कह सुनाया है। भानुदेवके इस माहात्म्यको जो मनुष्य ब्राह्मणके द्वारा सुनेंगे अथवा स्वयं पढ़ेंगे, उनका सात दिनोंका किया हुआ पाप कट जायगा। जो व्यक्ति इस भानुमाहात्म्यको बुद्धिमें जमा लेगा, वह बुद्धिमानोंके बड़े कुलमें धनवान्, नीरोग और महाप्राज्ञ होकर जन्म ग्रहण

टीकाः—मूर्त्तिपूजा और देवमन्दिरप्रतिष्ठा आदिका अधिदैवविज्ञान अति गम्भीर रहस्यसे पूर्ण है। इस कारण इस भगवान् सूर्यदेवके चरित्रपाठकी फलश्रुतिमें ऐसा माहात्म्य कहा गया है कि, जहां यह चरित्र पाठ होगा, भगवान् सूर्यदेव वहां निरन्तर वास करेंगे। मन्दिरका शुद्धाशुद्धि विवेक बहुतही गम्भीर अधिदैवविज्ञानसे पूर्ण है। सनातनधर्मी पत्थर, अन्यान्य प्रतिमा, यन्त्र, जल, अग्नि आदि जड़ पदार्थोंकी पूजा नहीं करते। वे सोलह प्रकारके दिव्यदेशोंमें अधिदैवपीठ स्थापन करके उसमें देवताकी पूजा किया करते हैं। यह मृत्युलोक एक ब्रह्माण्डके चौदहवें हिस्सेका एक चौथा हिस्सा माना गया है। बाकी सब दैवीलोक हैं। प्राणमयकोष ही अन्नमयरूपी स्थूल शरीरको छोड़कर मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोषको साथ लेकर परलोकमें चला जाता है। इसलिये लोग कहते हैं कि, अमुकका "प्राण" निकल गया। अतः प्राणमयकोष ही स्थूल राज्य और सूक्ष्म दैवीराज्यको मिलानेवाला है और परस्परको अलग करनेवाला भी है। उसी प्राणमयकोषकी सहायतासे और सर्वव्यापक महाप्राणकी सहयोगितासे मूर्त्ति, यन्त्र आदिमें अधिदैवपीठ स्थापन किया जाता है। जिस अधिदैवपीठमें हम सर्वव्यापक भगवान् और देवदेवियोंकी पूजा किया करते हैं। यही मूर्त्तिपूजाका रहस्य है। मूर्त्ति आदिमें प्राणप्रतिष्ठा करनेकी शास्त्रमें जो शैली है, उसके समझनेसे ही इस विज्ञानका रहस्य अनुभवमें आ सकेगा। अपने शरीरमें भूतशुद्धि करके, अपने शरीरमें देवताको लाकर, तब मूर्त्तिमें उसकी प्रतिष्ठा की जाती है। यही कारण है कि, प्रतिष्ठित विग्रहमें प्रतिष्ठाताकी सत्ता और प्रतिष्ठाताका संस्कार विद्यमान

करेगा। हे मुनिसत्तम! मूर्ख और पापी मनुष्य भी इस भास्करके माहात्म्यका दैनिक पूजाके साथ तीनों वेला यदि पाठ करेगा, तो उसके सब पाप नष्ट हो जायंगे। जिस देवमन्दिरमें सूर्यके इस सम्पूर्ण माहात्म्यका पाठ होगा, भगवान् उसमें निरन्तर वास करेंगे, उस स्थानको कदापि नहीं छोड़ेंगे। हे ब्रह्मन्! तुम भी महत् पुण्यकी अभिलाषासे सूर्यदेवका यह उत्कृष्ट महा माहात्म्य अन्तःकरणमें जमा लो और इसका पाठ किया करो। हे द्विजश्रेष्ठ! सोनेसे मढ़े सींगवाली सुन्दर पयस्विनी (विपुल दूध देनेवाली) गौका दान करने और संयत होकर इस माहात्म्यका श्रवण करनेका पुण्यफल समान है, ऐसा समझो॥ ३७-४३॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका भानुमाहात्म्य नामक एक सौ दशवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

रहता है और यही कारण है कि, शूद्रके प्रतिष्ठित देवताको ब्राह्मणका प्रणाम करना निषेध है। ऐसे प्रणामसे सत्त्वगुणसम्पन्न ब्राह्मणको क्षति नहीं पहुंचती, किन्तु उस शूद्रप्रतिष्ठित पीठको क्षति पहुंचती है। जिसमें खास दैवीकला पीठके रूपमें रहती है और उसी कलामें कमी आ जाया करती है। अतः जिस देवालयमें जो संस्कार और मर्यादा तथा सदासे शुद्धाशुद्धिविवेक चला आ रहा है, उसको हानि पहुंचानेसे पीठकी शक्ति नष्ट हो जाती है अथवा कम हो जाती है और ऐसा करनेपर पुजारी और पीठकी ही केवल क्षति नहीं होती, बल्कि पीठशक्तिका अपमान करनेवाले और उसको अशुद्ध करनेवाले व्यक्तियोंको भी हानि पहुंचती है। शुद्धाशुद्धिविवेक, जिसका वर्णन वेदों और शास्त्रोंमें है, वह काल्पनिक नहीं है। सनातन वैदिक दर्शनसमूहसे यह सिद्ध है कि, सनातनधर्मका शुद्धाशुद्धि और स्पर्शास्पर्श विवेक पांच कोषोंसे सम्बन्ध रखता है, जिन पांच कोषोंसे आत्मा आच्छादित रहता है। यह विज्ञान बहुत गम्भीर है। परन्तु संक्षेपमें इतना ही कहा जा सकता है कि, इन पांचों कोषोंमें शुद्धाशुद्धि और स्पर्शास्पर्शका अच्छा-बुरा परिणाम हुआ करता है। अन्नमय कोषके बुरे परिणामको दर्शनशास्त्रमें मल कहा है। प्राणमय कोषके बुरे परिणामको विकार कहते हैं। मनोमय कोषके बुरे परिणामको विक्षेप कहते हैं। विज्ञानमय कोषके बुरे परिणामको आवरण कहते हैं और आनन्दमय कोषके बुरे परिणामको अस्मिता कहते हैं। जैसे विष्ठा आदि द्वारा अन्नमय कोषपर बुरा प्रभाव पड़ता है, वैसे ही दैवपीठसम्बन्धसे प्राणमय कोष कलुषित होता है। उसी प्रकार जननाशौच, मरणाशौच और सूर्य-चन्द्रके ग्रहणाशौचका असर मनोमय कोषपर पड़ता है। वैसे ही अन्य शुद्धाशुद्धिका विवेक अन्य दो कोषोंके साथ भी है, ऐसा मीमांसाशास्त्रने सिद्ध किया है। इस कारण विना दैवी सूक्ष्मराज्यकी पर्यालोचना किये और विना अन्तर्जगत्को दिखानेवाले दर्शनशास्त्रका श्रवण मनन किये ऐसे अतिगहन विषय समझमें नहीं आ सकते। इस अधिदैव-विज्ञानके अनुसार जिस देवमन्दिरमें शुद्धाशुद्धिविवेक और स्पर्शास्पर्शविवेकका पूरा विचार रखकर ऊपर लिखित सूर्यमाहात्म्यका संस्कार नित्य किसी देवमन्दिरके पीठमें अङ्कित किया जाय, तो वह देवपीठ उस पवित्रता और उस विशेष संस्कारके प्रभावसे जैसी चाहे वैसी उपयोगिता प्राप्त कर सकता है॥ १—४३॥

एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय।

—०:*:०—

मार्कण्डेयने कहा,—हे क्रौष्टुके! तुमने भक्तिपूर्वक मुझसे जिनका माहात्म्य पूछा, वे अनादिनिधन भगवान् रवि इस प्रकार प्रभावशाली हैं। संयतचित्त योगियोंके वे परमात्मा हैं, सांख्य-योगियोंके क्षेत्रज्ञ हैं और याज्ञिकोंके यज्ञेश्वर हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरके सूर्याधिकारोंसे सम्पन्न मनु नामक पुत्र इन्हीं मार्तण्डदेवसे उत्पन्न हुआ था। जिस सातवें मनुका मन्वन्तर इस समय चल रहा है। इसी मनुके महाबली और पराक्रमी इक्ष्वाकु, नाभाग, रिष्ट, नरिष्यन्त, नाभाग, पृषध्र और धृष्ट नामक पुत्र हुए, जो पृथक् पृथक् राज्योंके परिपालक और विख्यातकीर्ति, शास्त्रपारग तथा विशेष अस्त्राभिज्ञ थे। फिर कृतिश्रेष्ठ मनुने अतिविशिष्ट पुत्रकी कामनासे मित्राव-रुणका यज्ञ किया। हे महामुने! उस यज्ञमें अपचार हो जाने अर्थात् उसमें दोष आजानेसे वह अपहृत अर्थात् दूषित अथवा अङ्गहीन हो गया और उससे इला नामकी सुमध्यमा मनुकन्याकी उत्पत्ति हुई ॥ १—७ ॥ यज्ञसे उत्पन्न हुई उस कन्याको देखकर मनु मित्रा-वरुणकी स्तुति करने लगे और बोले,—आपके अनुग्रहसे मैं असाधारण पुत्र प्राप्त करूंगा, इस अभिलाषासे मैंने यज्ञ किया, किन्तु देखता हूं कि, यह कन्या प्राप्त हुई है। हे वरद-गण! यदि आप प्रसन्न हुए हैं, तो आपके अनुग्रहसे यही कन्या अति गुणवान् पुत्र हो जाय। मित्रावरुणने तथास्तु कहा और उसी क्षण वह इला सुद्युम्न नामक पुत्र हो गयी। एकवार वह बुद्धिमान् मनुपुत्र वनमें मृगया करता हुआ ईश्वरके कोपसे फिरसे स्त्रीत्वको प्राप्त हुआ ॥ ८—१२ ॥ उस अवस्थामें सोमपुत्र बुधने उसके गर्भसे पुरूरवा नामक तेजस्वी चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न किया। पुत्रोत्पत्तिके पश्चात् अश्वमेध यज्ञके प्रभावसे सुद्युम्नने फिर पुरुषत्व प्राप्त किया और वह राजा हुआ। सुद्युम्नके पुरुष हो जानेपर उसे उत्कल, विनय और गय नामक महावीर, याज्ञिक और परम तेजस्वी तीन पुत्र उत्पन्न हुए। उसकी पुरुष-अवस्थामें जो तीन पुत्र उत्पन्न हुए, उन्होंने ही राज्य लाभ किया और उत्तम प्रकारसे धर्मानुसार पृथ्वीका पालन किया। सुद्युम्नकी स्त्री अवस्थामें जो पुरूरवा

टीकाः—पुराणशास्त्रमें जो ऐतिहासिक गाथाएं और वंशवर्णन आता है और वंशके विस्तारका इतिहास आता है, उन सबके समझने और समझानेके लिये पुराण-पाठक और पुराण-वक्ताको पूर्वकथित समाधि भाषा, परकीय भाषा और लौकिक भाषा तथा आध्यात्मिक वर्णन, आधिदैविक वर्णन और आधि-भौतिक वर्णन इन छहों विषयों और सिद्धान्तोंका जैसे प्रतिमुहूर्त विचार रखना चाहिये, उसी प्रकार यह भी अवश्य ध्यानमें रखना चाहिये कि, पौराणिक गाथाओं और इतिहासोंमें दैवीसृष्टि और मानुषीसृष्टि इन

नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, वह बुधपुत्र होनेके कारण भू-भाग प्राप्त नहीं कर सका। किन्तु वशिष्ठके आदेशसे उसे प्रतिष्ठान नामक उत्तम नगर दिया गया। उसी मनोहर देशका वह राजा बना ॥ १३—१८ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका वंशानुक्रम नामक एक सौ ग्यारहवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ बारहवां अध्याय।

मार्कण्डेयने कहा,—पूर्वोक्त मनुका पृषध्र नामक जो पुत्र था, वह एक दिन मृगयाकी इच्छासे वनमें गया था। उस निर्जन वनमें इधर उधर बहुत भटका, परन्तु कोई मृग उसके हाथ नहीं लगा। वह सूर्यके किरणोंसे सन्तप्त और भूख-प्याससे पीडित

दोनोंका मिला जुला वर्णन आया करता है। इसका प्रधान कारण यह है कि, वैदिक विज्ञानके अनुसार दैवीजगत् मुख्य है और यह स्थूल मृत्युलोक गौण है। दैवीजगत्के आश्रयसे ही इस मृत्युलोकके सब काम चलते हैं। वस्तुतः सनातनधर्मावलम्बियोंके सब कार्य और सब चिन्ताप्रणालियां दैवीजगत्को मुख्य मानकर चलायी जातीहै। यहां तक कि, वर्णाश्रमधर्मी हिन्दु प्रजाका चलना, फिरना, उठना, बैठना, सोचना, समझना, उनकी शारीरिक क्रिया, मानसिक क्रिया और बौद्धिक क्रिया जो कुछ होती है, वह दैवी जगत्को मुख्य समझकर ही होती है। यही कारण है कि, पृथ्वीकी अन्य शिक्षित जातियां सनातनधर्मके आचार-व्यवहार और चिन्ताप्रणालीको ठीक समझ नहीं सकते और उनको असम्बद्ध तथा मिथ्या समझा करते हैं। दूसरी ओर पुराणोंकी गाथाओंके समझनेमें बड़ी भारी कठिनता इसलिये रहा करती है कि, इस मृत्युलोकके इस कल्पकी अथवा कल्पान्तरकी गाथा और इतिहासवर्णनके साथ ही साथ वेद और पुराणोंमें मृत्युलोक और देवलोक दोनोंके साथ ही साथ अथवा परस्पर सम्बन्धयुक्त गुम्फित वर्णन आया करते हैं। इससे भी आधिभौतिकदृष्टिसम्पन्न जनगण विमोहित हुआ करते हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि, त्रिकालदर्शी पूज्यपाद महर्षियोंकी समाधि-सुलभ ज्ञानदृष्टिके सम्मुख सूक्ष्म दैवीलोक और स्थूल मृत्युलोक दोनों एकसे ही दिखायी दिया करते हैं। जैसे हम अपने घरमें बैठकर घरके आकाशको और घरके बाहरके आकाशको एक दृष्टिसे देख सकते हैं, वैसे ही वे स्थूल मृत्युलोक और उसके आधारभूत सूक्ष्म दैवीलोकको समदृष्टिसे देखनेमें समर्थ हुआ करते हैं। शंका-समाधानरूपसे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं। क्षत्रियोंके सूर्यवंश अथवा चन्द्रवंशका वर्णन जब शास्त्रमें आवेगा और उसके साथ मिला जुला पृथिवीके इस मृत्युलोकके लौकिक राजवंशोंका वर्णन आवेगा, तो समझना चाहिये कि, उस वंशके ऊपरके कुछ लोगोंके नाम देवताओंके हैं और पीछेके नाम मनुष्योंके हैं। सूर्यवंशमें सूर्य आदि देवशरीर हैं और दशरथ आदि मनुष्यशरीरधारी हैं। उसीके अनुसार दैवीसृष्टिमें नाना प्रकारकी विचित्रता रहेगी और मनुष्यसृष्टिमें उस प्रकारकी विचित्रता नहीं रहेगी। अतः पूर्वकथित छः सिद्धान्तोंके साथ ही साथ इस सिद्धान्तको भी ध्यानमें रखना उचित है ॥ १३–१८ ॥

होकर इतस्ततः घूम रहा था कि, इतनेमें उसे किसी अग्निहोत्री ब्राह्मणकी कभी न देखी हुई और अनिर्बन्ध विचरण करनेवाली मनोहर होमधेनु देखपड़ी। उसने यह सोचकर कि, यह नीलगाय है, उसपर तीर चलाया और उस तीरसे आहत होकर वह गाय गिर पड़ी। हे मुने! उस गायकी रक्षाके लिये उस अग्निहोत्री ऋषिने अपने एक ब्रह्मचारी और तपस्यानुरागी बाभ्रव्य नामक पुत्रको नियुक्त किया था। उसने जब अपने पिताकी गायको गिरी हुई देखा, तब उसे बड़ा क्रोध हुआ और उसीके आवेशमें उसकी चित्तवृत्ति क्षुब्ध हो गयी। उसके शरीरसे पसीना चूने लगा और आंखोंसे आंसू बहने लगे। उसने राजाको घूरकर देखा और उसे वह शाप देनेके लिये उद्यत हो गया॥ १—६॥ मुनि-कुमारको इस प्रकार क्रुद्ध देखकर राजाने उससे कहा,—आप प्रसन्न हों। शूद्रकी तरह ऐसा क्रोध क्यों करते हैं? विशिष्ट ब्राह्मणकुलमें जन्मग्रहण करने परभी आपका जैसा आचरण देख रहा हूं, वैसा क्रोधपरवश होते हुए कभी किसी क्षत्रिय या वैश्यको भी देखनेमें नहीं आया। मार्कण्डेयने कहा,—राजाने अग्निहोत्री मौलि ऋषिके उस पुत्रको 'शूद्रकी तरह' कहकर तिरस्कार किया था, इस कारण उस दुर्मति राजाको मुनिकुमारने शाप दिया कि, तू अवश्य शूद्र होगा और जब कि, मेरे पितृदेवकी कामधेनुकी तूने हिंसा की है, तब तू उस ब्रह्मविद्याको भूल जायगा, जो तुझे गुरुने पढ़ायी है। हे विप्र! राजाको इस प्रकार शाप मिलनेपर वह बहुतही व्यथित हुआ और क्रुद्ध होकर मुनि-कुमारको प्रतिशाप देनेके अभिप्रायसे उसने हाथमें जल ले लिया। राजाका यह भाव देखकर द्विजोत्तम मुनिकुमार और भी क्रुद्ध हुआ और राजाके विनाशकी इच्छा करने लगा। इतनेमें उसके पिता शीघ्रतासे वहाँ आ पहुंचे और उन्होंने पुत्रको रोकते हुए कहा,—हे वत्स! तुम्हारा यह कोप भविष्यत्‌के लिये अहितकर होगा, इसलिये क्रोध न करो, कोपका परित्याग करो। ब्राह्मणोंके लिये शम ही इह-परलोकमें कल्याणकारी हुआ करता है॥ ७-१२॥ क्रोध तपस्याको नष्ट कर देता है। क्रोधसे आयु क्षीण होती है, ज्ञानका लोप हो जाता है और अर्थहीनता (दरिद्रता) आ जाती है। क्रोधी लोग धर्म और अर्थका सञ्चय नहीं कर सकते और जिनका चित्त क्रोधके वशीभूत हो जाता है, वे कामप्राप्ति और सुखसम्पादनमें समर्थ हो नहीं सकते। यदि राजा जानबूझकर इस धेनुकी हत्या करता, तो भी अपना हित चाहनेवालेको उसपर दया ही करनी चाहिये थी। यदि इसने बिना जाने गोहत्या की है, तो यह किस प्रकार शापयोग्य हो सकता है? क्योंकि इसका अन्तःकरण निर्दोष है। जो व्यक्ति अपने स्वार्थके लिये परपीड़न करता है, उस मूढ़के प्रति भी दयालुओंको दया ही करनी चाहिये। अज्ञानतः किसीके अपराध करनेपर यदि कोई उसे दण्ड दे, तो उसकी अपेक्षा मैं उस अक्रोधको ही श्रेष्ठ समझूंगा।

अतः हे पुत्र! इस समय तुम राजाको शाप न दो। गाय तो अपने कर्मानुसार ही दुःख पाकर मृत्युके मुखमें जा पड़ी है॥ १४–२०॥ मार्कण्डेय बोले,—पृषध्रने नत-मस्तक होकर मुनिपुत्रको प्रणाम करते हुए कहा,—आप प्रसन्न हों। मैंने जानबूझकर इस गायकी हत्या नहीं की है। हे मुने! मैंने नीलगाय जानकर इस अवध्या आपकी होम-धेनुका वध कर डाला है। अतः हे मुने! आप मुझपर रोष न करें। ऋषिपुत्रने कहा,—हे महीपाल! मैं जन्मसे कभी झूठ नहीं बोला हूं। अतः हे महाभाग! मेरा यह क्रोध भी कदापि मिथ्या हो नहीं सकता। अन्ततः मेरा शाप भी अन्यथा हो नहीं सकता। फिर भी तुम्हें जो दूसरा शाप देनेको उद्यत हुआ, उसे वापस ले लेता हूं। बालकके इस प्रकार कहनेपर उसके पिता उसे अपने आश्रममें ले गये और तत्पश्चात् वह राजा पृषध्र भी शूद्रत्वको प्राप्त हुआ॥ २१–२५॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका पृषध्रोपाख्यान सम्बन्धी
एक सौ बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ तेरहवाँ अध्याय।

—:*:—

मार्कण्डेयने कहा,—नृपात करुषके जो अनेक पुत्र हुए, वे कारुष क्षत्रिय कहलाये और वे सभी बड़े शूर थे। संख्यामें वे सात सौ थे और उनसे भी सहस्रों वीर उत्पन्न हुए थे। दिष्टके पुत्र नाभागने अपने यौवनके प्रारम्भमें किसी दिन एक मनोहर वैश्य कन्याको देखा। उसको देखते ही राजपुत्र कामसे विमोहित हो गया और दीर्घ निःश्वास परित्याग करते हुए कन्याके पिताके पास गया और अपने लिये उसने उस कन्याकी याचना की। हे विप्र! राजपुत्रकी बात सुनकर कन्याका पिता महाराज दिष्टके भयसे भीत होकर हाथ जोड़कर उस कामपीड़ित राजपुत्रसे बोला,—हम आपको कर देनेवाले भृत्य मात्र हैं। आप मुझ जैसे असमान व्यक्तिके साथ सम्बन्ध स्थापन करनेकी क्योंकर अभिलाषा करते हैं?॥ १–५॥ राजपुत्रने कहा,—समस्त मानवोंके शरीरोंमें काम, मोह

टीका—वर देनेकी शक्ति और शाप देनेकी शक्ति मनोबलसे सम्बन्ध रखती है। जो व्यक्ति जन्मभरमें कभी मिथ्या न बोला हो, उसमें ऐसा मनोबल होगा, इसमें सन्देह ही क्या है। दूसरी ओर कलिकल्मषदूषित मनुष्योंके अन्तःकरण स्वभावसे ही विषयोंमें लगे रहते हैं। उनमें मनोबल कैसे उत्पन्न हो सकता है? यही कारण है कि, तमःप्रधान कालमें यह शक्ति प्रायः देखनेमें नहीं आती। अन्य युगोंमें मनुष्योंका मनोबल स्वभावसे ही अधिक हुआ करता था। तब यह शक्ति प्रायः दिखायी देती थी॥२१–२५॥

आदि समान रूपसे ही होते हैं। परन्तु वे सर्वदा जागृत नहीं रहते, समयके अनुसार उनका दौरा हुआ करता है। भिन्न-भिन्न जातियोंके लोग उन्हींको चरितार्थ करते हुए एक दूसरेका आश्रय करके जीते हैं। इनसे कभी उपकार भी हो जाता है। और जो योग्यताकी बात कहते हो, उसका उत्तर यह है कि, योग्यता कालपर अवलम्बित रहती है। क्योंकि काल पाकर योग्य भी अयोग्य हो जाता और अयोग्य योग्यताको प्राप्त होता है। इच्छित आहारादिके द्वारा जो शरीर पोसा जाता है, वह यदि समयका ध्यान रखकर पोसा जाय, तो वही बच रहता है। और संसारमें है ही क्या? इसी विचारसे मैं आपकी कन्याकी अभिलाषा करता हूं, मुझे उसको दे डालिये। यदि ऐसा आप नहीं करेंगे, तो मेरा यह शरीर विपत्तिमें पड़ा हुआ देखेंगे। वैश्यने कहा,—हे कुमार! महाराजके जैसे आप अधीन हैं, वैसा मैं भी हूं। हम दोनों पराधीन हैं। अतः आप पितृदेवकी आज्ञा ले लें, तो मैं आपको कन्यादान करनेको प्रस्तुत हो जाऊँगा। राजपुत्रने कहा,—जो लोग गुरुजनकी आज्ञाके वशवर्ती रहते हैं, उन्हें सभी बातोंके सम्बन्धमें उनसे आज्ञा ले लेना उचित है। परन्तु यह कार्य ऐसा है कि, इसके विषयमें गुरुजनसे न पूछना ही अच्छा है। मदनपीड़ाका प्रसङ्ग और गुरुजनकी आज्ञा, इनमें बड़ा अन्तर है। दोनों एक दूसरेके विरुद्ध हैं। ऐसी बातोंके अतिरिक्त जितनी बातें हैं, उनके सम्बन्धमें गुरुजनसे आज्ञा लेना आवश्यक है। वैश्यने कहा,—आप सत्य कहते हैं। आप यदि गुरुजनसे आज्ञा लेने जायंगे, तो कामपीड़ासम्बन्धी बातें अवश्य ही छिड़ेंगी, जो मर्यादाके विरुद्ध होंगीं। अतः यह बात उनसे मैं ही पूछता हूं, जिससे कामालापकी सम्भावना नहीं रहेगी। मार्कण्डेयने कहा,—वैश्यके इस प्रकार कहनेपर राजपुत्र निरुत्तर हो गया। फिर उस वैश्यने राजपुत्र जो कुछ चाहता था, वह सब राजासे साद्यन्त कहा ॥ ७-१६ ॥ राजाने वह सब सुनकर ऋचीक आदि श्रेष्ठ ब्राह्मणों और अपने पुत्रको बुलाकर सबके सामने प्रकट रूपसे विचारार्थ यह प्रश्न उपस्थित किया और मुनिगणसे कहा,—हे द्विजश्रेष्ठो! इस विषयमें मुझे क्या करना चाहिये, वह आप सुझाइये। ऋषियोंने कहा,—हे राजकुमार! आप यदि इस वैश्यकन्यापर अनुरक्त हुए हैं, तो कोई अधर्मकी बात नहीं है; परन्तु यह कार्य न्यायक्रमके अनुसार होना चाहिये। पहिले आप मूर्द्धाभिषिक्त (क्षत्रिय) की कन्यासे विवाह कर फिर वैश्यकन्यासे परिणय कीजिये। इस रीतिसे आप इस वैश्यकन्याका उपभोग करें, तो किसी प्रकारके दोषकी सम्भावना नहीं रहेगी। नहीं तो बालिकाहरणके दोषके कारण आपको जातिसे च्युत होना पड़ेगा। मार्कण्डेयने कहा,—उन सब महात्माओंकी बात राजपुत्रने नहीं मानी। वह उठकर राजमहलसे निकल गया और वैश्यके घर जाकर उसकी कन्याको पकड़ लाया तथा

खड्ग खींचकर गरजकर बोला,—इस वैश्यकन्याको मैं राक्षस-विवाहविधिसे हरण करके लाया हूँ। जिसकी सामर्थ्य हो, वह मेरे सामने आकर इसे मुझसे छुड़ा ले ॥ १७-२३ ॥ हे द्विज! वैश्यने जब देखा कि, राजपुत्र कन्याको पकड़कर ले गया है, तब वह दौड़ा हुआ राजाके पास गया और बोला,—हे महाराज! मेरी रक्षा कीजिये। राजाने भी क्रुद्ध होकर तुरन्त अपनी सेनाको आज्ञा दी कि, धर्मदूषक दुष्ट नाभागका शीघ्र वध करो। राजाज्ञा पाकर सेनाने राजपुत्रके साथ युद्ध प्रारम्भ कर दिया। राजपुत्रने शस्त्रास्त्रोंके द्वारा अधिकांश सैनिकोंको मार गिराया। यह समाचार पाकर राजा स्वयं अन्यान्य सैनिकोंको साथ लेकर युद्धके लिये उपस्थित हुआ। अपने पुत्रके साथ युद्ध करते हुए अस्त्रशस्त्रोंके प्रभावसे राजाकी विजयकी ही अधिक सम्भावना देख पड़ने लगी। इतनेमें सहसा आकाशसे परिव्राजक मुनि नारद वहाँ उतर आये और बोले,—हे महीपाल! युद्धसे निवृत्त होइये। हे नृप! आपका पुत्र विजातीय हो गया है; अर्थात् वह वैश्य हो गया है; उसके साथ युद्ध करना धर्मसंगत नहीं है ॥ २४-३० ॥ ब्राह्मण प्रथम ब्राह्मणकन्यासे विवाह कर फिर यदि अन्य त्रिवर्णकी कन्यासे विवाह करे, तो उसके ब्राह्मणत्वकी हानि नहीं होती। इसी तरह क्षत्रिय पहिले क्षत्रियकन्यासे विवाह कर फिर यदि वैश्य-शूद्र-कन्यासे विवाह करे, तो वह धर्मच्युत नहीं होता। वैश्य भी पहिले वैश्यकन्यासे विवाह कर फिर यदि शूद्रकन्यासे विवाह करे, तो वह वैश्यकुलसे नहीं गिरता। इसी तरह क्रमानुरूप नीतिका व्यवहार चला आया है। हे नृप! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य प्रथम अपने वर्णकी कन्याका पाणिग्रहण न कर यदि अन्यवर्णके कन्यासे विवाह करें, तो वे उसीके वर्णके हो जाते हैं, जिस वर्णकी वह कन्या हो। इसके अतिरिक्त प्रथम असवर्ण कन्याके साथ विवाह करनेसे वह दायका भी अधिकारी नहीं रह जाता। आपका यह मन्दबुद्धि पुत्र वैश्यत्वको प्राप्त हुआ है और आप क्षत्रिय हैं। आपके साथ युद्ध करनेका यह अधिकारी नहीं है। हे नृपनन्दन! इस युद्धसे कौनसा कारण उत्पन्न होगा, यह हम नहीं जानते। इस समय इस युद्धसे आप मुंह मोड़ लीजिये ॥ ३१-४२ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका नाभागचरित नामक एकसौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

टीका:—यह वर्णाश्रमशृंखलाका बहुत उत्तम उदाहरण है। वर्णाश्रमशृंखलामें रजोवीर्य दोनोंकी शुद्धि सबसे मुख्य मानी गयी है और तदनन्तर रजकी अशुद्धता होनेपर भी वीर्यका प्राधान्य माना गया है। इसी कारण प्राचीन कालमें सवर्णविवाह मुख्य और धर्मसङ्गत माना जाता था। नीचेके वर्णोंकी कन्याओंके साथ विवाह करना तभी सम्भव होता, जब सवर्ण कन्याके साथ विवाह हो गया हो। वह विवाह धर्मविरुद्ध न होनेपर भी कामज कहाता था और ऊंची जातिकी कन्यासे विवाह करना तो पाप समझा जाता था॥ १७-२३ ॥

एक सौ चौदहवाँ अध्याय।

—०:※:०—

मार्कण्डेयने कहा,—फिर पुत्रके साथ युद्ध करना राजाने बन्द कर दिया और उस वैश्यकन्याके साथ विवाह कर नाभाग भी वैश्यत्वको प्राप्त हुआ। अनन्तर पुत्रने पिताके पास आकर पूछा,—हे भूपाल! अब मेरा कर्तव्य क्या है, वह कहिये। राजाने उत्तर दिया,—ये आभ्रव्यादि सब तपस्वी धर्माधिकरणमें नियुक्त हैं; येही धर्मके अनुकूल जिस प्रकारका कर्म करनेको कहें, वही करो। मार्कण्डेयने कहा,—तब सब सभासद मुनिगण बोले,—पशुपालन, कृषि और वाणिज्य करना ही इनके लिये उत्कृष्ट धर्म है। राजपुत्र भी स्वधर्मच्युत हो, राजाज्ञाके अनुसार उन धर्मवादियोंके बताये हुए धर्मका आचरण करने लगा॥ १-५॥ समय पाकर उस युग्मको एक पुत्र हुआ, जिसका नाम भनन्दन रक्खा गया। उसके अवस्था सम्हालनेपर माताने उससे कहा,—हे वत्स! तुम गोपाल बनो। माताकी आज्ञा पाकर और माताको प्रणाम कर वह हिमालय-पर्वतपर नीप नामक राजर्षिके पास पहुँचा और उनकी चरणवन्दना करके बोला,—हे भगवन्! माताने मुझे गोपालन करनेकी आज्ञा दी है; अतः पृथ्वीपालन करना मेरा कर्तव्य हो गया है। परन्तु इस आज्ञाका स्वीकार मैं कैसे करूँ? क्योंकि इस समय समस्त पृथ्वी मेरे बलवान् सम्बन्धियों (दायादों) ने आक्रान्त कर ली है। अतः हे विभो! आपके अनुग्रहसे जिस तरह पृथ्वी पा जाऊँ, मुझ प्रणतको वह उपाय बताइये। वही उपाय मैं करूँगा॥ ६-११॥ मार्कण्डेयने कहा,—हे ब्रह्मन्! तब राजर्षि नीपने महात्मा भनन्दन-को समस्त अस्त्र-विद्या प्रदान की। हे द्विज! भनन्दन अस्त्रविद्याको प्राप्त कर और राजर्षिकी आज्ञा लेकर अपने चचेरे भाई वसुरात आदिके पास चला गया और अपने पितृ-पितामहादिके राज्यका आधा भाग मांगने लगा। उन्होंने उत्तर दिया,—तुम वैश्य-पुत्र हो, पृथ्वीपालन करना तुम्हारा कर्तव्य नहीं है। इसपर भनन्दनको बड़ा क्रोध हुआ और वह वसुरात आदिके साथ युद्ध करने लगा। उसे अस्त्रविद्या भलीभाँति अवगत थी, इस कारण उसने युद्ध करते हुए विपक्षियोंकी सेनाको क्षत-विक्षत कर दिया और सबको हराकर पृथ्वीपर अधिकार कर लिया॥ १२-१६॥ भनन्दनने विजितशत्रु होकर प्राप्त किया हुआ सब पृथ्वीका राज्य पितृचरणोंमें अर्पण कर दिया। परन्तु पिताने उसको स्वीकार नहीं किया और पत्नीके सामने ही पुत्रसे कहा,—वत्स भनन्दन! पूर्वपुरुषों द्वारा शासित इस राज्यका तुम ही उपभोग करो। यह बात नहीं है कि, मैं राज्यपालनमें असमर्थ हूं; किन्तु पहिले पिताकी आज्ञाके अनुवर्ती होकर भी मैंने

उनकी आज्ञाको न मानकर वैश्यकन्यासे विवाह कर वैश्यत्वको प्राप्त किया है। इस कारण मैं राज्यका उपभोग करनेका अधिकारी नहीं रह गया हूं। यदि मैं फिर पिताकी आज्ञाका उल्लंघन कर पृथ्वीपालन करने लगूँ, तो राजाकी आज्ञा मिथ्या होगी और वे प्रलयकाल पर्यन्त पुण्यलोकके भागी नहीं बनेंगे तथा सौ कल्पमें भी मेरी मुक्तिकी सम्भावना नहीं रहेगी। इसके अतिरिक्त मेरे जैसे निराकाङ्क्ष मानी पुरुषोंके लिये, जिस प्रकार असमर्थ मनुष्य विषयभोगको त्याग देता है, उस प्रकार तुम्हारे बाहुबलसे उपार्जित राज्यका उपभोग करना भी उचित नहीं है। तुम स्वयं राज्यपालन करो अथवा अपने बान्धवोंको पुनः लौटा दो। मेरे लिये पिताकी आज्ञा पालन करना ही प्रशस्त है। क्षितिपालन करना मेरा काम नहीं है॥ १७-२३॥ मार्कण्डेयने कहा,—नाभागकी बात सुनकर उसकी पत्नी सुप्रभा हँसती हुई बोली,—हे भूप! इस समृद्धिशाली राज्यको आप ग्रहण कीजिये। वास्तवमें न आप वैश्य हैं और न मैंने ही वैश्यकुलमें जन्म ग्रहण किया है। आप क्षत्रिय हैं और मैं भी क्षत्रियकुलमें जन्मी हूं। पहिले सुदेव नामक एक राजा हुआ। राजा धूम्राश्वका पुत्र नल उसका सखा था। हे पार्थिव! एक बार वैशाख मासमें सुदेव अपने सखा नल और पत्नियों सहित आम्रवनमें वनविहारके लिये गया था। वहाँ सबने नाना प्रकारके खाद्य-पेय पदार्थोंका उपभोग किया। फिर सब निकटकी पुष्करिणीकी शोभा देखते हुए इधर-उधर टहलने लगे। निकट ही च्यवनके पुत्र महर्षि प्रमतिका आश्रम था। प्रमतिकी पत्नी किसी राजाकी कन्या थी और बड़ी ही सुन्दरी थी। कार्यवश वह पुष्करिणीके तटपर उपस्थित हुई थी। उसे देखते ही सुदेवका सखा नल बुरी बुद्धिसे उन्मत्त होगया। वह अपने आपको सम्हाल न सका और उसने उस ऋषिपत्नीको पकड़ लिया। ऋषिपत्नी बेबस होकर रोने-चिल्लाने लगी और निकट खड़े हुए सुदेवसे चिरौरी करने लगी कि, महाराज! मेरी रक्षा कीजिये॥ २५-३०॥ पत्नीके रोनेका शब्द आश्रममें प्रमति ऋषिको सुनायी पड़ा और वे "यह क्या है! क्या है?" कहते हुए त्वरासे वहाँ उपस्थित हुए। राजा सुदेव बैठा तमाशा देख रहा है और दुरात्मा नल ऋषिपत्नीको सता रहा है, यह देखकर प्रमतिने राजासे कहा कि, राजन्! इस पतिव्रताको इस दुष्टसे छुड़ाइये। आप राजा हैं, शासन करना आपका काम है, अतः इस दुष्ट नलको दण्ड देना आपको उचित है। मार्कण्डेयने कहा,—प्रमतिकी यह व्यथित होकर कही हुई बात सुनकर राजा सुदेवने अपने सखा नलके गौरवकी रक्षा करने, उसके प्राण बचानेके लिये, झूठ ही कह दिया कि, हे विप्र! मैं वैश्य हूं, अपनी पत्नीकी रक्षाके निमित्त किसी क्षत्रियके पास जाइये। सुदेवकी बात सुनकर प्रमति ऐसे क्रुद्ध होकर, मानों अपने तेजसे राजाको दग्ध कर रहे

हाँ, बाले,—ठीक है। राजा! तू अपनेको वैश्य कहता है, तो सचमुच अब तुझे वैश्यत्व प्राप्त होगा। क्योंकि आर्त व्यक्तियोंकी रक्षा करनेसे ही क्षत्रिय संज्ञाकी उत्पत्ति हुई है। आर्त शब्द भी सुनायी न दे, इसी अभिप्रायसे क्षत्रियगण शस्त्र धारण करते हैं। इस विचारसे तू कदापि क्षत्रिय नहीं हो सकता। तू कुलाधम बनियाँ ही हो जायगा॥ ३१–३६॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका नाभागचरित सम्बन्धी
एक सौ चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

टीकाः—सनातनधर्मकी उदारता और सर्वव्यापकता, वर्णाश्रमश्रृंखलाकी दूरदर्शिता और शक्तिमत्ता, इस गाथासे सिद्ध होती है। दूसरी ओर राजधर्म और प्रजाधर्मकी मौलिकता और परस्परकी घनिष्ठता सिद्ध होती है। केवल जातिमर्यादा और जातिगौरव न रखनेसे ही और वर्णाश्रम-श्रृंखलाके सिद्धान्तकी उपेक्षा करनेसे ही क्षत्रिय होनेपर भी महाराजकुमार नाभाग वैश्यत्वको प्राप्त हुआ था। पिताके परलोकगामी होनेपर भी वर्णाश्रमधर्मी पुत्रको परलोकगामी पिताकी पारलौकिक उन्नतिका कैसा विचार रखना चाहिये, यह वर्णाश्रमधर्मका सिद्धान्त इस गाथासे उज्ज्वल हो रहा है। दूसरी ओर स्वभावसे ही राजभक्त वर्णाश्रमधर्मी प्रजा अपने राजाका परलोकगमन हो जानेपर भी कैसा व्यवहार रखते हैं और राजाज्ञाका मूल्य सनातनधर्मावलम्बियोंके निकट कैसा है, वह इस गाथासे प्रकट होता है। अब शंका यह हो सकती है कि, क्षत्रिय जातिके रजोवीर्यसे उत्पन्न व्यक्ति वैश्य कैसे हो सकता है? इस श्रेणीकी शंकाका समाधान यह है कि, प्रथम तो त्रिविधशुद्धिके अनुसार जन्मद्वारा अधिभूतशुद्धि, कर्मद्वारा अधिदैवशुद्धि और ज्ञानद्वारा अध्यात्मशुद्धि जातिकी हुआ करती है। इसका उदाहरण यह है कि, ब्रह्मचिन्तन, ब्रह्मधारणा, ब्रह्मोपासना और स्वस्वरूपोपलब्धिके द्वारा ब्राह्मण अपना अध्यात्म-शुद्धिलाभ करता है। अर्थात् वह आध्यात्मिकरूपसे ब्राह्मण होता है। इसीप्रकार यजन-याजन आदि षट्कर्म, वेदपाठ, गायत्री आदिकी सेवासे ब्राह्मणवीर्यसे उत्पन्न व्यक्ति अधिदैवरूपसे ब्राह्मण बनता है और धर्मविवाहसे युक्त ब्राह्मणी माताके रज और ब्राह्मण पिताके वीर्यसे उत्पन्न व्यक्ति आधिभौतिकशुद्धियुक्त ब्राह्मण कहाता है। आधिभौतिकशुद्धि अपरिवर्तनीय है। इस कारण जाति-निर्णयमें इसकी प्रधानता मानी गयी है। परन्तु यह निश्चित है कि, तीनों प्रकारकी जब शुद्धि होती है, तभी जातिकी पूर्णता मानी जाती है। यही वर्णधर्मका मौलिक तथा दार्शनिक रहस्य है। इसी सिद्धान्तको अवलम्बन करके वर्णाश्रमधर्मी आर्यजाति इस नाशमान् संसारमें चिरजीवी बनी हुई है। इस रहस्यको प्राचीन इतिहासवाले और नवीन इतिहासवाले दोनोंको ही स्वीकार करना होगा। राजपुत्र नाभाग शापग्रस्त होनेसे उसकी अध्यात्मशुद्धि और अधिदैवशुद्धि तुरन्त ही नष्ट हो गई थी और पातित्य-हेतु उसकी अधिभूतशुद्धि भी मलिन हो गयी थी। जैसे,—ब्राह्मण यदि अधिभूतशुद्धिसे उत्पन्न भी हुआ हो, तो भी चाण्डालादिके अन्नग्रहण और नीचसंसर्ग और नीचचिन्ता आदिसे जैसा पतित होकर नीचताको प्राप्त करता है और वह ब्राह्मण नहीं कहाता है, उसी प्रकार शापग्रस्त होकर राजकुमार भी वैश्यत्वको प्राप्त हुआ था। इससे यह भी समझना चाहिये कि, इस विज्ञानके अनुसार उच्च जातिका व्यक्ति नीच जातिका बन सकता है, परन्तु नीच जातिका व्यक्ति उच्च जातिका नहीं बन सकता। क्योंकि अधिभूतशुद्धिका होना अपने हाथ नहीं है॥ १७–३६॥

एक सौ पन्द्रहवां अध्याय।

—०:*:०—

मार्कण्डेय बोले,—हे द्विज! भृगुवंशमें उत्पन्न हुए प्रमति इस प्रकार सुदेवको शाप देकर, क्रोधसे मानों त्रैलोक्यको भस्म करनेको उद्यत हो गये हों, नलसे बोले,—जब कि, तूने मदोन्मत्त होकर मेरे आश्रममें आकर मेरी पत्नीपर बलात्कार किया है, तब तू इसी समय भस्म हो जायगा। ऋषिका वाक्य समाप्त भी नहीं हो पाया था कि, नलके देहसे अग्नि प्रकट होकर उससे वह उसी क्षण भस्म हो गया। सुदेवने जब प्रमतिका यह प्रभाव देखा, तब उन्मत्तता छोड़कर प्रणाम करके विनीत भावसे वह प्रमतिसे बोला,—भगवन्! क्षमा करें, क्षमा करें। सुरापान करनेसे मैं उन्मत्त हो गया था। उस अवस्थामें मैंने जो कुछ कहा, आप प्रसन्न होकर उसे क्षमा करें और अपने दिये शापको लौटा लें॥ १-५॥ राजाके इस प्रकार प्रसादित करने और नलको दग्ध कर देनेसे भार्गव प्रमतिका क्रोध शान्त हुआ। फिर वे अनासक्त चित्तसे बोले,—यद्यपि मेरा वचन अन्यथा नहीं हो सकता, तथापि प्रसन्नचित्तसे मैं तुमपर अनुग्रह करता हूं। कुछ दिन तो तुम्हें अवश्य ही वैश्य जातीय होना होगा, किन्तु इसी जन्ममें फिर तुम क्षत्रिय हो जाओगे। जब कोई क्षत्रियकुमार बलपूर्वक तुम्हारी कन्यासे विवाह करेगा, तब हे वैश्य! तुम आपही क्षत्रिय हो जाओगे। हे भूपाल! इसी तरह मेरे पिता सुदेव वैश्य हुए थे। हे महाभाग! अब मैं भी अपना सब परिचय देती हूँ, श्रवण करिये॥ ६-१०॥ पुराकालमें सुरथ नामक राजर्षि गन्धमादन पर्वतके आरण्यमें नियताहार और त्यक्तसङ्ग होकर तपस्या करता था। एकबार एक बाजके मुखसे आकाशसे गिरी हुई मैनाको देखकर दयाके कारण उसे मूर्छा आगयी। हे प्रभो! उसकी मूर्छा जब जाती रही, तब उसके शरीरसे मैं उत्पन्न हो गयी। उसने भी स्नेहार्द्र चित्तसे मुझे उठा लिया और कहा;—जब कि, मेरे कृपाभिभूत होनेसे इस कन्याने जन्म ग्रहण किया है, तब मैं इसका नाम कृपावती रखता हूं। फिर मैं उसीके आश्रममें रहकर धीरे धीरे बढ़ने लगी और समवयस्का सखियोंके साथ वन-वन विचरने लगी॥ ११-१५॥ एकदा अगस्तिके समान ही प्रभावशाली अगस्ति मुनिके भाई वनमें पुष्पादिको चुन रहे थे; इसी अवसरमें मेरी सखियोंने बात बातमें उन्हें बनियां कहकर चिढ़ा दिया। इससे उन्होंने क्रोधके वशीभूत होकर मुझे शाप दिया कि, जब कि, तूने मुझे बनियां कहा है, तब तू वैश्य-कन्या हो जायगी। उनका वह दारुण शाप सुनकर मैंने उनसे कहा,—हे द्विजसत्तम! मैंने तो आपका कोई अपराध नहीं किया है; दूसरोंके अपराधसे आप मुझे क्यों शाप दे रहे हैं? ऋषि बोले,—

मद्यकी एक बूँद गिरनेसे ही जिस प्रकार पञ्चगव्यसे भरा हुआ घड़ा दूषित हो जाता है, उसी प्रकार निर्दोष व्यक्ति भी दुष्टोंके संसर्गसे दुष्ट हो जाता है। हे बालिके! तूने बड़े विनयसे अपनेको निर्दोष बताकर मुझे प्रसन्न किया है, इस कारण मैं तुझपर जो अनुग्रह करता हूं, उसे सुन ॥१६–२०॥ तू वैश्ययोनिमें जाकर जब अपने पुत्रको राज्यलाभके लिये नियुक्त करेगी, तभी तुझे अपनी वास्तविक जातिका स्मरण हो जायगा और पतिके सहित तू पुनः क्षत्रियत्वको पाकर दिव्य भोगोंकी अधिकारिणी बनेगी। अतः इस समय तू आश्रममें जा और भय छोड़ दे। हे राजेन्द्र! इस प्रकार मैं उस महर्षिके द्वारा अभिशप्त हुई थी और प्रमतिने पहिले मेरे पिताको भी इसी तरहका शाप दिया था। अतः हे राजन्! आप या मेरे पिता इनमेंसे कोई वैश्य नहीं है। मैं इस तरह निर्दोष हूं। मेरे संसर्गसे आप क्योंकर दूषित हो सकते हैं? यह कभी हो नहीं सकता। आप सर्वदा निर्दोष हैं ॥ २१–२४ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका एक सौ पन्द्रहवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ सोलहवां अध्याय।

—०:꠶:०—

मार्कण्डेयने कहा,—धर्मज्ञ राजाने पत्नी और पुत्रकी सब बातें सुनकर उनको पृथक् पृथक् उत्तर दिया। पत्नीसे कहा,—मैंने पिताकी आज्ञासे एकवार राज्यका त्याग कर दिया है, उसे अब फिर नहीं ग्रहण करूंगा। तुम अपने मुंहकी भाफ गंवाकर क्यों वृथा कष्ट पा रही हो? पुत्रसे कहा,—मैं वैश्यवृत्तिमें ही रहकर तुम्हें कर दिया करूंगा। तुम इस समस्त राज्यका उपभोग करो और यदि राज्य करनेकी तुम्हारी इच्छा न हो, तो इसका त्याग कर दो। राजपुत्र भनन्दन इस प्रकार पिताकी आज्ञा पाकर धर्मानुसार राज्यकार्य करने लगा। यथासमय उसने विवाह भी किया। हे द्विज! पृथ्वीके सब स्थानोंमें उसका रथचक्र घूमा करता था। अधर्मकी ओर उसका मन कभी अग्रसर नहीं होता था। इस कारण सभी भूपाल उसके वशीभूत हो गये थे। वह यथाविधि यज्ञानुष्ठान और वसुन्धराका यथोचित रीतिसे प्रतिपालन किया करता था। धीरे धीरे समग्र पृथ्वीमें उसका शासन फैल जानेसे वह पृथ्वीका अद्वितीय अधीश्वर बन गया। फिर उसे वत्सप्री नामक एक पुत्र हुआ। उस महात्माने अपने गुणोंसे पिताके नामको और भी बढ़ाया। उसे विदूरथ राजाने अपनी सौनन्दा नामकी कन्या व्याह दी थी। उसने इन्द्रशत्रु कुजृम्भ नामक दैत्येश्वरका विनाश करनेके कारण इस कन्याको प्राप्त किया

था ॥ १-८ ॥ कौष्टुकिने कहा,—हे भगवन्! वत्सप्रीने किस प्रकार कुजृम्भको मारकर सौनन्दाको प्राप्त किया था, वह आख्यान आप प्रसन्नचित्तसे कहिये। मार्कण्डेयने कहा,—भूमण्डलमें विदूरथ नामक विख्यातकीर्ति एक राजा हुआ। उसे सुनीति और सुमति नामक दो पुत्र हुए। एक समय विदूरथ मृगयाके लिये वनमें गया था। वहाँ उसे एक ऐसा बड़ा भारी गड़हा दिखायी दिया, मानों वह पृथ्वीका मुँह हो। उसे देखकर वह सोचने लगा कि, यह भीषण गुहा कैसी? उसने फिर सोचा, यह चिरन्तन भूमिविवर हो नहीं सकता। मैं समझता हूं, यह पातालका विवर है। वह इस प्रकार सोच रहा था कि, इतनेमें उस निर्जन अरण्यमें उसे सुव्रत नामक एक तपस्वी ब्राह्मण आता हुआ देख पड़ा। राजाने आश्चर्यसे उसे वह भूमिका गभीर गह्वर दिखाकर पूछा कि, यह क्या है? ॥ ९-१५ ॥ ऋषिने कहा,—हे महिपाल! क्या इसे आप नहीं जानते? जब कि, पृथ्वीका समस्त वृत्तान्त राजाको ज्ञात रहना आवश्यक है, तब मेरी समझमें इस विवरके वृत्तान्तको जाननेके आप योग्य पात्र हैं। महावीर्यशाली उग्र नामक एक दानव रसातलमें वास किया करता है। हे नराधिप! इस भूमण्डल तथा स्वर्गराज्यमें प्रत्येक प्राणी जँभाई लेने लगता है, यह उसीका कार्य है। समस्त पृथ्वीमें लोगोंको जँभाई लेनेके लिये वह प्रवृत्त करता है, इस कारण उसका नाम कुजृम्भ पड़ गया है; क्या इस बातको आप नहीं जानते? बहुत पहिले विश्वकर्माने सुनन्द नामक जो मूशल बनाया था, वह दुरात्मा उसे हरण कर लाया और उसीका युद्धके समयमें उपयोग कर शत्रुओंका पराजय करता और उसीसे रसातलसे पृथ्वीको फोड़कर अन्यान्य असुरोंको पृथ्वीमें आनेके लिये द्वार बना देता है। उसी सुनन्द नामक मूशलके आघातसे यहाँकी भूमि भेदी जानेके कारण यह गह्वर बन गया है। आप उसको विना पराजित किये कैसे पृथ्वीका उपभोग कर सकेंगे? उग्रकर्मा वह दैत्य मूशलायुधके पा जानेसे बड़ा बलशाली होकर यज्ञकर्मोंका विनाश तथा देवताओंको व्यथित करता और दैत्योंको परितृप्त करता रहता है। यदि आप उस पातालमें स्थित शत्रुको पराजित कर दें, तो समग्र पृथ्वीके अधीश्वर और

टीका:—वैदिक विज्ञानके अनुसार प्रत्येक पदार्थके तीन तीन स्वरूप होते हैं और यह भी वैदिक दर्शनका सिद्धान्त है कि, कोई जड़ क्रिया बिना चेतनकी सहायताके नियोजित नहीं हो सकती। जँभाई रूपी जड़ क्रिया जो वायुका असत् तथा तमोमय परिणाम है और वह क्रिया चतुर्विध भूतसंघसे लेकर मनुष्य पर्यन्त दिखायी पड़ती है, ऐसी सर्वव्यापक बलशाली क्रियाका अधिदैव अवश्य है। क्योंकि यह निश्चित है कि; प्रत्येक पदार्थके अधिदैव, अधिभूत और अध्यात्म रूप अवश्य होते हैं। अतः जँभाई रूपी व्यापक प्रकृतिकी क्रियाका अधिदैव यह असुर है। सनातनधर्मके अनुयायी जो तैंतीस कोटि देवताओंका होना मानते हैं, उसका मौलिक रहस्य यही है कि, जितनी क्रियाएँ और जितने

परमेश्वर (सम्राट्) बन जायंगे ॥ १६-२२ ॥ उस मूशलको लोग सौनन्द कहते हैं । विचक्षण लोग उसके बलाबलके सम्बन्धमें कहा करते हैं कि, जिस दिन उसको कोई स्त्री छू लेती है, उस दिन वह निर्वीर्य हो जाता और फिर दूसरे ही दिन पहिलेकी तरह बलशाली हो जाता है। किन्तु वह दुराचारी दैत्य मूशलका यह प्रभाव और स्त्रियोंके हस्तस्पर्शसे होती हुई उसकी बलहानिकी दोषपूर्ण बात नहीं जानता। हे राजन्! दुरात्मा दानवकी और मूशलके बलकी कथा मैंने आपसे कही है। अब जो उचित समझिये, वह कार्य आप कीजिये। हे महीपते! आपके नगरके निकट ही जब कि, यह खोह बनायी गयी है, तब आप इससे निश्चिन्त क्यों हो रहे हैं? इतना कहकर ऋषि चल दिये। फिर राजा अपने नगरमें लौट आया और मन्त्रज्ञ मन्त्रियोंसे परामर्श करने लगा। मूशलके प्रभाव और उसकी बलहानिकी जो बातें राजाने सुनी थीं, वे सब उसने मन्त्रियोंसे कह सुनायीं। जब राजा मन्त्रियोंको सब वृत्तान्त सुना रहा था, तब उसकी कन्या मुदावती पासमें बैठी-बैठी सुन रही थी। इस घटनाके कुछ दिन पश्चात् मुदावती अपनी सखियोंके साथ एक दिन उपवनमें टहल रही थी, इतनेमें वह कुजृम्भ दैत्य वहाँ आ धमका और युवती मुदावतीको उठाकर ले भागा ॥ २३-३१ ॥ राजाको इस समाचारका पता लगते ही क्रोधसे उसकी आँखें लाल हो गयीं। उसने वनप्रान्तके जाननेवाले अपने दोनों कुमारोंको बुलाकर आज्ञा दी कि, तुम वनोंकी सब बातें जानते हो, इसलिये शीघ्र जाओ और निर्विन्ध्या नदीके तटपर जो गह्वर है, उसके द्वारा रसातलमें पहुंचकर मुदावतीके अपहर्ता उस दुर्मतिका विनाश करो। मार्कण्डेयने कहा,—तदनन्तर दोनों राजकुमार उस गर्तके पास गये और दैत्यके पैरके चिह्नोंका अनुसरण करते हुए सेनासहित गर्तके भीतर जाकर क्रोधावेशके साथ कुजृम्भपर टूट पड़े। दोनों दलोंमें परिघ, निस्त्रिंश, शक्ति, शूल, परश्वध, बाण आदि शस्त्रोंके द्वारा घमासान युद्ध होने लगा। किन्तु मायाजालसे बलशाली दैत्योंके आगे दोनों राजकुमार ठहर नहीं सके। दैत्योंने कुमारके सैनिकोंको पछाड़ मारा और दोनों कुमारोंको बद्ध कर लिया। हे मुनिसत्तम! यह समाचार जब राजाने सुना, तब हृदयमें अत्यन्त व्यथित होकर सैनिकोंको बुलाकर कहा,—तुममेंसे जो कोई उस दैत्यको मारकर दोनों कुमारों और मुदावतीको छुड़ा लावेगा, उसे मैं विशाल नेत्रोंवाली अपनी कन्या प्रदान करूँगा। हे मुने! राजाने पुत्रों और कन्याके बन्धमुक्त होनेके सम्बन्धमें निराश होकर ही यह घोषणा की थी। बलवान्, शौर्यशाली और अस्त्र-शस्त्रोंको जाननेवाले भनन्दनके पुत्र वत्सप्रीने जब यह घोषणा सुनी, तब वह वहाँ आकर

विभाग प्रकृतिराज्यके हैं, उनका चेतन चालक या तो कोई असुर होगा, या देवता। यही देवलोक और असुरलोकके वासियोंके अस्तित्वका अनुभव करनेका एक प्रधान निशान है ॥ १६-२२ ॥

विनयावनत होकर बोला,—महाराज! मुझे आज्ञा दीजिये। मैं बिना विलम्बके आपके ही तेजोबलसे उस दैत्यका विनाश कर आपकी कन्या और कुमारोंको छुड़ा ला सकूंगा ॥ ३२-४२ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—राजाने अपने मित्रके पुत्र वत्सप्रीको सहर्ष आलिङ्गन करके कहा,—वत्स! कार्यसिद्धिके लिये तुम प्रस्थान करो। यदि यह कार्य तुम कर सको, तो यथार्थ ही तुम्हारे द्वारा मित्रपुत्रके योग्य कार्य हो जायगा। हे वत्स! इस कार्यके करनेमें तुम्हारा मन यदि नितान्त उत्साहित हुआ हो, तो यह कार्य तुम शीघ्रतासे करो। मार्कण्डेयने कहा,—तदुपरान्त वत्सप्री खड्ग, धनु, गोधा, अङ्गुलित्र आदिसे सज्ज हो, उस गर्तके द्वारा पैर बढ़ाता हुआ पातालमें चला गया। राजपुत्रकी प्रत्यञ्चाके घोर टणत्कारके शब्दसे समस्त पाताल गूँज उठा। दानवपति कुजृम्भ उस ज्या-शब्दको सुनते ही अत्यन्त क्रुद्ध हो, सेनाको साथ लेकर वहाँ आ पहुंचा, जहां राजकुमार था। तब बलशाली सेनासे घिरे हुए राजपुत्रके साथ विपुल बली दैत्य-सैन्यसे घिरे हुए विजृम्भका युद्ध होने लगा। दानवोंने राजपुत्रके साथ लगातार तीन दिनोंतक संग्राम किया, किन्तु जब उससे पार न पाया, तब वे क्षुब्धचित्तसे मूशल लानेके लिये दौड़ पड़े। हे महाभाग! प्रजापतिका निर्माण किया हुआ वह मूशल गन्ध, माल्य, धूप आदिसे पूजित होकर अन्तःपुरमें धरा रहता था। मुदावती मूशलका प्रभाव जानती थी। उसने नतमस्तक होकर उसे स्पर्श किया और पूजाके बहाने वह उसे तबतक बराबर छूती रही, जबतक दानव उसे उठा नहीं ले गये थे ॥ ४३-५२ ॥ उसे लेकर दानव रणाङ्गणमें उतर आये और उसी मूशलसे युद्ध करने लगे। किन्तु जब शत्रुओंपर उसका आघात किया किया जाता, तब वह व्यर्थ हो जाता था। हे मुने! परम अस्त्र सौनन्दके निर्वीर्य हो जानेपर दैत्यगण अन्य शस्त्रास्त्रोंसे युद्ध करने लगे, परन्तु राजपुत्रकी तरह वे शस्त्रास्त्र-सञ्चालनमें कुशल नहीं थे। उनका जो मूशलबल था, वह भी बुद्धिबलके सामने फीका पड़ गया। अन्ततः राजपुत्रने घड़ीभरमें दैत्योंके शस्त्रास्त्र व्यर्थ कर दिये और सबको रथविहीन कर डाला। दैत्य फिर खड्ग और चर्म लेकर दौड़ आये। जब वह इन्द्र-शत्रु कुजृम्भ स्वयं क्रुद्ध हो, वेगसे राजपुत्रपर झपटा, तब कालाग्निके तुल्य अग्न्यस्त्रके द्वारा राजपुत्रने उसका वध कर डाला। देवशत्रु कुजृम्भके उस अग्न्यस्त्रके द्वारा क्षत-हृदय होकर प्राणविसर्जन करते ही पातालके उरगोंने बड़ा उत्सव मनाया। राजपुत्रपर पुष्पवृष्टि हुई, गन्धर्वोंने सङ्गीत आरम्भ किया और देववाद्य बजने लगे। राजपुत्र वत्सप्रीने उस दैत्यका नाश कर सुनीति और सुमति नामक दोनों राजकुमारों और क्षीणाङ्गी राजकन्या मुदावतीको बन्धमुक्त कर दिया। कुजृम्भके मारे जानेपर शेष नामक नागराज अनन्तने वह मूशल ले लिया। हे द्विज! तपोधन नागराज राजकन्या मुदावतीके अभि

प्रायको समझकर उससे बड़ा सन्तुष्ट हुवा ॥ ५३-६२ ॥ स्त्रियोंके स्पर्शसे मूशल हतवीर्य हो जाता है, यह बात मुदावती जानती थी और इसीसे उस दिन उसने उसे वारंवार छुआ था। इस कारण बड़े आनन्दसे नागराजने मुदावतीका नाम,—सौनन्द मूशलका गुण जानती थी इसलिये,—सुनन्दा रक्खा। राजपुत्र दोनों राजकुमारों और उस राजकन्याको तुरन्त राजाके पास ले आया और प्रणाम करके बोला,—हे तात! आपकी आज्ञाके अनुसार आपके दोनों कुमारों और मुदावतीको मैं छुड़ा लाया हूं, अब मुझे और क्या करना चाहिये, आज्ञा प्रदान कीजिये। मार्कण्डेयने कहा,—तब महीपतिने प्रेमपूर्वक हृदयसे उच्चस्वरसे मधुर वचन कहा,—साधु, वत्स! साधु, आज मैं तीन कारणोंसे देवताओंके द्वारा प्रशंसित हो रहा हूं। प्रथम तो तुम मेरे जामाता हो रहे हो, द्वितीयतः शत्रु विनष्ट हो गया और तृतीयतः विना आहत हुए मेरे दोनों पुत्र तथा कन्या लौटकर आगयी है। अतः हे राजपुत्र! आजके शुभ दिनमें मेरी आज्ञाके अनुसार कन्यालक्षणोंसे युक्त और सुन्दर अङ्गोंवाली इस मेरी दुहिता मुदावतीका हर्षपूर्वक पाणिग्रहण करो। इससे तुम मुझे सत्यवादी बनाओगे ॥ ६३-७० ॥ राजपुत्रने कहा,—हे तात! आपकी आज्ञा अवश्य ही पालनीय होनेसे जो आप आदेश करेंगे, वही मैं करूंगा। हे तात! आप जानते ही हैं कि, पूज्य पुरुषोंकी आज्ञाके पालन करनेमें मैं कभी पराङ्मुख नहीं हुआ हूं। मार्कण्डेय बोले,—इसके अनन्तर राजेन्द्र विदूरथने कन्या मुदावती और भनन्दनपुत्र वत्सप्रीका विवाह बड़ी धूमधामसे कर दिया। विवाह हो जानेपर नवयुवक वत्सप्री और नवयुवती मुदावती रमणीय देशोंके प्रासादोंमें विहार करने लगे। कालक्रमसे वत्सप्री राजा होकर अनेक यज्ञानुष्ठान करता हुआ धर्मानुसार प्रजाका पालन करने लगा। प्रजा भी उस महात्माके द्वारा पुत्रके समान प्रतिपालित होकर उत्तरोत्तर समृद्धिशाली होने लगी। उसके राज्यमें कभी वर्णसंकरोंकी उत्पत्ति नहीं होती और चोर, हिंस्र पशु, दुर्वृत्त तथा अन्यान्य किसी उपसर्गका किसीको भय नहीं रहा ॥ ७१-७६ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका भनन्दन-वत्सप्री-चरित नामक एक सौ सोलहवां अध्याय समाप्त हुआ।

टीकाः—वर्णाश्रमश्रृंखला जबतक ठीक ठीक रहती है, तबतक आध्यात्मिक उन्नतिशील मनुष्य-जातिकी पवित्रता बनी रहती है। इस वर्णाश्रमश्रृंखलाके अभावसे और उसे माननेवाली आर्यजातिके आचरणके प्रभावसे जैसा देवलोकका अभ्युदय बना रहता है, वैसा इस मृत्युलोककी मनुष्यजातिका धन-बल, बाहुबल, बुद्धिबल, और विद्याबल पूर्ण रहता है। इस कारण वर्णाश्रमश्रृंखला माननेवाली और उस-

एक सौ सत्रहवां अध्याय।

मार्कण्डेय बोले,—उसी सुनन्दाके गर्भसे वत्सप्रीको बारह पुत्र उत्पन्न हुए। उनके नाम इस प्रकार हैं,—प्रांशु, प्रवीर, शूर, सुचक्र, विक्रम, क्रम, बल, बलाक, चण्ड, प्रचण्ड, सुविक्रम और स्वरूप। वे सभी महाभाग और संग्रामविजेता थे। उनमेंसे बड़ा भाई महावीर प्रांशु नरपति हुआ और शेष ग्यारह भ्राता भृत्यकी तरह उसके वशवर्ती हो रहे। उसके यज्ञकालमें ब्राह्मणों और अन्य जातिके लोगोंको विपुल अर्थ प्राप्त होनेसे पृथ्वीने 'वसुन्धरा' यह अन्वर्थ ही नाम धारण किया था। औरस पुत्रकी तरह प्रजापालन करनेसे उसके राजकोषमें जो धनसञ्चय होता था और जिस धनसे अनन्त यज्ञकार्य सम्पन्न होते थे, उस धनकी अयुत, कोटि, पद्म आदि संख्याओंसे गणना नहीं की जा सकती थी। प्रांशुके प्रजापति नामक एक पुत्र हुआ। उसके यज्ञमें बलिश्रेष्ठ, शतक्रतु इन्द्रने देवगणसहित यज्ञभागके द्वारा अतुलतृप्ति प्राप्त कर महावीर्यशाली निन्यानवे दानवों, बल और जम्भ नामक असुरराजों तथा अन्यान्य महाबली देवशत्रुओंको मारडाला था ॥ १-६ ॥ प्रजापतिके खनित्र आदि पांच पुत्र हुए थे। उनमें खनित्र ही अपने पराक्रमसे विख्यात राजा हुआ था। वह शान्त, सत्यवादी, शूर, सब प्राणियोंका हितैषी, स्वधर्म-परायण, सर्वदा वृद्धसेवी, बहुशास्त्रदर्शी, वाग्मी, विनयी, निरहङ्कार, अस्त्रज्ञ और सर्व-लोकप्रिय था। वह सदा यही कहा करता कि, सब प्राणी आनन्दका उपभोग करें, निर्जन स्थानमें भी प्रसन्न रहें, सब जीवोंका मङ्गल हो और सभी नीरोगताका अनुभव करें। प्राणियोंकी व्याधियां मिट जांय, किसीको मनोव्यथा न हो और सब लोग एक दूसरेके प्रतिमित्र भावको प्रकट करते रहें। द्विजातियोंमें परस्पर प्रेम बढ़े और उनका मङ्गल हो, सर्ववर्णोंकी समृद्धि हो और सब कर्मोंकी सिद्धि हो ॥ ७-१४ ॥ हे लोगों! तुम सब प्राणियोंमें सर्वदा मङ्गलमयी बुद्धि प्रवर्त्तित होती रहे। तुम जिस प्रकार अपनी और अपने पुत्रोंकी हितकामना किया करते हो, वैसेही सब जीवोंके हितकारी बनो। यही तुम्हारे

पर ठीक ठीक चलनेवाली आर्यजाति त्रिलोकका मङ्गल करती रहती है। यही वैदिक दर्शनका निश्चित सिद्धान्त है। प्रजाके वर्णसंकर हो जानेसे यह पवित्र शृंखला नष्ट हो जाती है। इसी कारण आ नारियोंमें सती-धर्मका सर्वोपरि आदर रक्खा गया है। इसी कारण एकपतिव्रतरूपी तपस्याको ही वर्णाश्रमधर्मका मूल माना गया है। राजाही अपनी प्रजाको धर्मपर चलानेके लिये जिम्मेवार है। यही कारण है कि, राजा कालका कारण होता है। जो राजा वर्णाश्रमशृंखलाको ठीक ठीक चलावे और बिगड़ने न देवे, वही राजा त्रिलोकपूजित होता है ॥ ७१-७६ ॥

लिये अत्यन्त हितकर है। क्यों किसीके निकट कोई अपराधी बने? यदि कोई मन्द-बुद्धि किसीका अहित करे, तो स्वयं उसका अहित हो जायगा। क्योंकि कर्मफलोंका उसके कर्ताका ही उपभोग करना पड़ता है। हे मानवगण! इन बातोंकी विवेचना कर तुम दृढ़-निश्चय कर लो। हे बुधगण! तुम लौकिक पापोंमें प्रवृत्त मत हो। ऐसा करनेसे ही तुम पुण्यलोकोंको प्राप्त कर सकोगे। जो इस समय मुझसे स्नेह करते हैं, पृथ्वीमें उनका सदा मङ्गल हो और जो द्वेष करते हैं, वे भी सदा मङ्गलका उपभोग करें॥ १५—१९॥ समस्त गुणसम्पन्न, पद्मपत्रके समान नेत्रोंवाला, भूपतिपुत्र वह श्रीमान् खनित्र इस प्रकारका था। उसने प्रेमपूर्वक अपने भाइयोंको पृथक् पृथक् राज्योंमें नियुक्त कर दिया था और वह स्वयं सागररूपी साड़ी पहिनी हुई इस पृथ्वीका पालन करने लगा। उसने शौरीको पूर्वदेशोंके, उदावसुको दक्षिणदेशोंके, सुनयको पश्चिमीयदेशोंके और महारथको उत्तरीयदेशोंके राजपदोंपर अधिष्ठित किया था। खनित्र और उसके भाइयोंके वे ही विभिन्नगोत्री मुनिगण पुरोहित नियुक्त हुए, जो वंशानुक्रमसे इस राजकुलको अच्छी मन्त्रणा दिया करते थे। तदनुसार अत्रिकुलोद्भव सुहोत्र शौरीका, गौतमवंशज कुशावर्त्त उदावसुका, काश्यपगोत्रज प्रमति सुनयका और वशिष्ठकुलोत्पन्न ब्राह्मण महारथका पुरोहित हुआ। उक्त चारों भ्राता राजा होकर अपने अपने राज्यका उपभोग करते और समस्त वसुधाधीश खनित्र उनका अधीश्वर था। महाराजा खनित्र उन भाइयों और प्रजाके प्रति वैसा ही हितकर व्यवहार करता था, जैसा पिता पुत्रके प्रति किया करता है॥ २०—२६॥ एकबार शौरीके मन्त्री विश्ववेदीने उससे कहा,—हे महीपाल! इस समय एकान्त है, इसलिये मैं कुछ कहना चाहता हूं। यह समस्त पृथ्वी और भूपालवृन्द जिसके वशीभूत हैं, वह और उसके पुत्र-पौत्रादि वंशधर ही सदा महाराजा होंगे। उसके अन्य भ्राताओंके अधिकारमें छोटे छोटे राज्य हैं। अब उनके पुत्रोंमें बंटकर वे बहुत छोटे हो जायंगे और उनके भी पुत्र-पौत्रोंमें बंट जानेसे अत्यल्प टुकड़े होंगे तथा इसी क्रमसे

टीका:—राजकुलके लिये पुरोहितकुलकी बड़ी आवश्यकता है। राजकुलकी पवित्रता और राजकुलके व्यक्तियोंकी सत्‌शिक्षा और सदाचारकी जैसी आवश्यकता है, उसके साथ ही साथ उस राजकुलके ब्राह्मण पुरोहितकुलकी पवित्रता, सत्‌शिक्षा, सदाचार, अभिज्ञता और तपस्याके बढ़ानेकी भी उतनी ही आवश्यकता है। शुद्ध राजकुलोंमें पुरोहितकुलोंकी सुरक्षा न होनेसे ही राजवंश नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं। यही क्षत्रिय और ब्राह्मणकी क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्तिकी सहयोगिता है। क्षत्रियोंको उदार, दानशील, लोभरहित, निर्भय और स्वधर्म-परायण होना उचित है। उसी प्रकार पुरोहितकुलके लोगोंको धनत्यागी, तपस्वी, विद्यासेवी, दूरदर्शी और धर्मोपदेश देनेमें निर्भीक होना उचित है। तभी क्षत्रिय और ब्राह्मणकी सहयोगिता संभव होती है॥ २०—२६॥

अन्तमें उनके वंशधरोंको कृषिसे जीविका निर्वाह करनी होगी। हे पृथिवीपाल! भ्रातृ-स्नेहमें आवद्ध होकर भाई कदापि भाईका उद्धार नहीं करता। उन भाइयोंके पुत्र तो एक दूसरेको पराया समझने लगते हैं। हे पार्थिव! और उनको भी जो पुत्र-पौत्र होते हैं, वे अपने ही पुत्रोंकी हितकामना करते हैं। केवल सन्तोष कर लेना ही यदि राजाका कर्तव्य हो, तो वे मन्त्रियोंको क्यों नियुक्त करते हैं? मैं जब कि, मन्त्रीके पदपर नियुक्त हूं, तब यही चाहूंगा कि, समग्र राज्य ही आपका उपभोग्य हो! इसी तरहका मैं उद्योग भी करता रहता हूं। तब आप वृथा सन्तोष किये क्यों बैठे हुए हैं? राज्यकर्ताके कार्यका सम्पादन करनेके लिये करणकी आवश्यकता होती है। राज्यलाभ करना कार्य है, आप कर्ता हैं और मैं करण हूं। अतः करणके द्वारा आप पितृ-पितामहादिके राज्यका शासन कीजिये। इहलोकमें ही आपके लिये मैं फलप्रद हो सकता हूं, परलोकमें नहीं॥ २७-३७॥ राजाने कहा,—वर्तमान महीपाल हमारे जेठे भाई हैं और हम उनके अनुज हैं। इसीसे वे समस्त पृथ्वीका शासन करते हैं और हम छोटी छोटी भूमियोंका उपभोग करते हैं। हे महामते! हम पांच भाई हैं और पृथिवी तो एकही है। फिर समग्र पृथिवीके ऐश्वर्यका स्वतन्त्ररूपसे उपभोग करनेमें हम सभी कैसे समर्थ हो सकेंगे? विश्ववेदीने कहा,—हे नृप! आप जो कहते हैं, वह यथार्थ है। पृथिवी एकही है, यह मैं मानता हूं; किन्तु मेरा अभिप्राय यह है कि, उस पृथ्वीका स्वीकार आपही करें और सबके प्रधान बनकर उसका शासन करें। सर्वाधिकारको प्राप्त कर सब भाइयोंमें आपही अखिलेश्वर हों। उनके नियुक्त किये हुए मेरे जैसे मन्त्री भी ऐसी ही चेष्टा करते रहते हैं। राजाने कहा,—मेरे ज्येष्ठ भ्राता महाराजा हैं और वे हम लागोंका पुत्रोंके समान स्नेहपूर्वक प्रतिपालन किया करते हैं। फिर मैं क्योंकर उनके राज्यका लोभ करूँ? विश्ववेदी बोला,—वे ज्येष्ठ हैं, तो क्या चिन्ता है? आप जब सब राज्यके पूर्ण अधिकारी हो जायंगे, तब राजाके योग्य उपहारोंसे उनका सम्मान करें। जो राज्यका अभिलाष करते हैं, उन्हें ज्येष्ठ-कनिष्ठका विचार करना ही व्यर्थ है॥ ३८-४३॥ मार्कण्डेयने कहा,—हे सत्तम! इसी तरह राजा और मन्त्रीमें बातचीत होते होते अन्तमें मन्त्रीकी बात राजाने मान ली। फिर मन्त्री विश्ववेदीने उसके अन्यान्य भाइयोंको वशीभूत कर लिया और उसके पुरोहितोंको अपने यहांके शान्तिकर्ममें नियुक्त कर खनित्रके अनिष्टके लिये अत्यन्त उग्र आभिचारिक (मन्त्र-तन्त्रादि) कर्मोंके अनुष्ठान बैठा दिये। खनित्रके अन्तरङ्ग विश्वासपात्र सेवकोंको अपनी ओर मिला लिया और ऐसी चालें चलीं, जिनसे शौरीका राजदण्ड अबाधित हो जाय। परन्तु चारों पुरोहितोंके आभिचारिक प्रयोगसे बड़ी भयानक चार कृत्याएँ उत्पन्न हुईं। उन सबके देह अतिविशाल, विकराल और मुंह विकट थे; जिनको देखकर ही छाती दहल

जाती थी। वे चारों दारुण कृत्याएं हाथमें बड़े बड़े शूल ताने हुई थीं। दौड़ी हुई वे पार्थिव खनित्रके पास गयीं सही, किन्तु निष्पाप राजाके पुण्यबलसे तुरन्त ही हतप्रभ हो गयीं। तब वे चारों उन चारों राजपुरोहितों और विश्ववेदीके निकट आ धमकीं।

टीकाः—मीमांसादर्शनका सिद्धान्त यह है कि, जब कोई क्रिया होती है, तो उसकी प्रतिक्रिया होना अवश्यम्भावी है। क्रियाके भी पुनः तीन भेद त्रिभावात्मक अधिकारसे माने गये हैं। यथा,—शारीरिक क्रिया, मानसिक क्रिया और बौद्धिक क्रिया। इन तीनोंमेंसे मानसिक क्रियाका बल सर्वप्रधान है। क्योंकि संकल्पशक्तिका केन्द्र मन ही है। और वह शक्ति बाधारहित होनेपर सर्वव्यापक अधिकार-को प्राप्त करती है। दूसरी ओर तप, मन्त्र आदिके द्वारा बल-संचय करनेपर वह शक्ति असम्भवको भी सम्भव कर डालती है। जिस साधकका मनोबल जितना अधिक हो, वह उतना ही अपनी संकल्पशक्तिसे बड़ेसे बड़ा कार्य कर सकता है। इस मनोबलकी वृद्धिके लिये और उसको उपयोगी बनानेके लिये द्रव्य-शक्ति, क्रियाशक्ति और मन्त्रशक्तिकी आवश्यकता होती है। द्रव्यगुण और क्रियाकी योग्यताका अधिकसे अधिक होना सम्भव ही है। यह प्रत्यक्ष देखनेमें आता है कि, द्रव्यविशेषसे और क्रियाविशेषसे जैसा कुछ फल उत्पन्न होता है। उसको समझानेकी आवश्यकता नहीं है। दैवीजगत्‌से सम्बन्धयुक्त शब्दको मन्त्र कहते हैं। जिस मन्त्र-विशेषका दैवीराज्यसे जितना अधिक सम्बन्ध हो, अधिक उपयुक्त कालसे सम्बन्ध हो और अधिक सिद्धक्रियासे सम्बन्ध हो, वह मन्त्र उतना ही बलशाली समझा जाता है। यही कारण है कि, सप्तशती आदि स्मार्तमन्त्र और गायत्री आदि वैदिकमन्त्रकी इतनी अलौकिक महिमा पायी जाती है। इसी मन्त्रशक्तिके बलसे ही प्रायश्चित्त, अनुष्ठान आदि द्वारा पूर्व-अर्जित कर्मवेग जैसे कि, एक मत्त हाथी अन्य साधारण हाथीको भगा देता है, उसी प्रकार कर्मके प्रबल धक्के हट जाया करते हैं। अवश्य ही योग्य अनुष्ठानकर्ता, योग्य मन्त्रादि और सुश्रृङ्खलायुक्त क्रिया, इन तीनोंका एकाधारमें समावेश होना ऐसे कर्मोंमें सफलताका कारण हुआ करता है। ये सब कार्य मन्त्र और क्रियाकी सहायतासे दैवी-जगत्‌की यथायोग्य दैवीशक्तियोंके द्वारा ही सम्पादित हुआ करते हैं। मन्त्र और यथायोग्य क्रिया सङ्कल्प-शक्तिसे नियोजित होकर प्राणकी सहायतासे दैवीजगत्‌में पहुंचती है। और उससे दैवीजगत्‌में प्रभाव उत्पन्न करके नूतन दैवी प्रतिक्रिया प्रकट कराती है। इस दैवीक्रियाके भी तीन भेद हैं। यदि प्रारब्ध अनुकूल हो, तो मृत्युलोकमें बहुत सुगमतासे उसकी प्रतिक्रिया उत्पन्न हो जाती है। यदि प्रारब्ध समान बलशाली हो, तो दैवीजगत्‌की प्रेरणा मनुष्यपिण्डमें उत्पन्न होकर फल उत्पन्न करती है। और यदि अनुष्ठानादि क्रिया प्रारब्धके प्रतिकूल हो, और साथही साथ वह क्रिया किसी अति बलवान् कार्यके लिये नियोजित हो, तो ऐसी दशामें दैवीशक्तियोंको यथायोग्य कार्यके निमित्त कार्यक्षेत्रमें उपस्थित होकर कार्य करना पड़ता है। यदि वह कार्य सत् हो, तो भयकी सम्भावना नहीं है और यदि वह कार्य असत् हो, तो ऐसी दशामें उससे हानिकी भी सम्भावना होती है। जैसा कि, विश्ववेदीके उदाहरणमें पाया जाता है। इस प्रकारके अनुष्ठानोंको कई श्रेणीमें विभक्त कर सकते हैं। यथा—रोग, विपत्ति आदिके दूर करनेके लिये अनुष्ठान, पापके दूर करनेके लिये प्रायश्चित्त आदि, इष्ट, ऐश्वर्य आदि प्राप्तिके निमित्त तपस्या आदि और परपीडाजनित स्वार्थसिद्धिके लिये अभिचारादि। इनमेंसे चौथे अभिचारादिका पूर्वोक्त उदाहरण है, जो सिद्धकर्ता, सिद्धमन्त्र और सिद्धक्रियाके एकाधारमें समावेश होनेसे सिद्ध होना सम्भव है। दैवीजगत् और मन्त्रादिपर विश्वास रखनेवाले आस्तिकजन इसको मानते और योगिगण इसका अनुभव करते हैं।

उन्होंने पहिले तो शौरीको दुष्ट परामर्श देनेवाले विश्ववेदीको और फिर चारों पुरोहितों-को मार गिराया और सबको जलाकर भस्म कर डाला ॥ ४४—५१ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका खनित्र-चरित्र सम्बन्धी एक सौ सत्रहवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ अठारहवां अध्याय ।

—०:*:०—

मार्कण्डेयने कहा,—उस समय सबको इस बातका बड़ा ही विस्मय हुआ कि, पृथक् पृथक् नगरोंके अधिवासी होते हुए सबके सब एक साथ कैसे नष्ट हो गये! हे मुनिसत्तम! महाराज खनित्रने अपने भाइयोंके पुरोहितों और एक भाईके मन्त्री विश्ववेदीके एकाएक भस्म हो जानेका जब समाचार सुना, तब उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसे इसका कारण ज्ञात नहीं था, इसलिये वह चिन्तामें पड़ गया कि, यह कैसे और क्यों हुआ? इतनेमें वहां महामुनि वशिष्ठ पधारे। उनके पधारनेपर महाराज खनित्रने इस घटनाका उनसे कारण पूछा। तब वशिष्ठने अन्तर्दृष्टिसे ज्ञात कर शौरी और उसके मन्त्रीमें जो बातचीत हुई थी, उस दुष्ट मन्त्रीके द्वारा भाई-भाइयोंमें वैमनस्य होनेके लिये जो जो कार्य किये गये थे, पुरोहितोंने जो कुछ किया था और शत्रुके प्रति भी दया करनेवाले वे पुरोहित जिस कारणसे निरपराधीका अपकार करनेके लिये उद्यत होकर विनष्ट हो गये थे, वह सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ १—७ ॥ हे द्विज! राजाने वह सुनकर कहा,—"हा! हतोऽस्मि"। फिर वशिष्ठके सम्मुख वह अपनी ही निन्दा करने लगा। राजा बोला,—मुने! मेरे पास पुण्यका सञ्चय नहीं है। मैं हतभागी और बड़ा ही अयोग्य हूं। दैव मेरे प्रतिकूल है और मैं सब लोकोंमें निन्दित और पापी हूं। मुझे धिःकार है। क्योंकि मेरे कारण ही चार ब्राह्मणोंका विनाश हुआ। अतः

अब शङ्का-समाधानके लिये कहा जाता है कि, ऐसी क्रियाओंमें जो विफलता देखी जाती है, उसके अनेक कारण हैं। यथा,—कालशुद्धि न होना, अनुष्ठानकर्ता योग्य न होना, अनुष्ठानका ज्ञाता होनेपर भी ब्रह्मचर्य और सत्य आदिके अभावसे कर्त्ताका मनोबल नष्ट हो जाना, मन्त्रशुद्धि न होना, यदि सिद्ध मन्त्र भी हो, तो उस मन्त्रकी सिद्धि प्राप्त न करना, अनुष्ठानमें द्रव्यशुद्धि न होना, उसमें क्रियाभंग हो जाना, जिसके लिये अनुष्ठान हो रहा है, उसका प्रारब्ध अतिबलवान् होना, दैवीकृपा और गुरुकृपा प्राप्त करनेसे विरुद्ध क्रियाका अवरोध होना इत्यादि। इन सब मौलिक रहस्योंको सामने रखकर ही ऐसे साधन होने चाहिये ॥ ४४—५१ ॥

मुझसे बढ़कर भूमण्डलमें दूसरा पापी कौन हो सकता है? यदि मैं पृथिवीमें पुरुष होकर जन्म ग्रहण न करता, तो मेरे भाइयोंके पुरोहितोंका नाश क्यों होता? मैं ही उन ब्राह्मणोंके विनाशका कारण हुआ हूँ; अतः मेरे इस राज्यको तथा महत् राजकुलमें हुए मेरे जन्मको धिःकार है। मेरे भ्राताओंके याजक अपने प्रभुका कार्य-साधन करते हुए विनष्ट हुए हैं, अतः वे दोषी हो नहीं सकते। उनके विनाशका कारण मैं हुआ हूं, अतः मैं ही दोषी हूं। इस समय मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? ब्राह्मण-हत्याका कारण बना हुआ मुझ जैसा पापकारी पृथ्वीमें दूसरा नहीं है॥ ८—१४॥ इस प्रकार महिपाल खनित्रने उद्विग्न होकर वनमें चले जानेकी इच्छासे अपने क्षुप नामक पुत्रको राज्याभिषेक कर दिया और तीनों पत्नियोंको साथमें लेकर तपस्याके लिये वनमें गमन किया। उस नृपश्रेष्ठने वनमें जाकर वानप्रस्थ विधानके अनुसार साढ़ेतीन सौ वर्षोंतक उत्तम तपस्या की। फिर हे द्विजोत्तम! राजकुलतिलक उस वनवासी राजाने तपस्याद्वारा अपने शरीरको क्षीण कर, सब इन्द्रियोंका निरोध करते हुए प्राणोंका विसर्जन कर दिया। अन्यान्य नृपति सैकड़ों अश्वमेध करके भी जिस लोकको प्राप्त नहीं कर सकते, खनित्रने मृत्युके पश्चात् उस सर्वाभीष्टप्रद अक्षय्य पुण्यलोकको प्राप्त किया। उसकी तीनों पत्नि-योंने भी स्वामीके साथ प्राणोंका परित्याग कर उसी लोकमें गमन किया, जिस लोककी प्राप्ति उस महात्माको हुई थी। हे महाभाग! मैंने यह खनित्रका चरित कह सुनाया है। इसका श्रवण या पाठ करनेसे सब पापसमूह नष्ट हो जाते हैं। अब मैं क्षुपका चरित कहता हूं, वह सुनो॥ १५—२१॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका खनित्र-चरित नामक एक सौ अठारहवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ उन्नीसवां अध्याय।

—०:*:०—

मार्कण्डेयने कहा,—खनित्र-पुत्र क्षुपके राज्य प्राप्त करनेपर वह भी पिताकी तरह प्रजाका मनोरञ्जन करता हुआ धर्मानुसार पालन करने लगा। राजा क्षुप भी अनेक यज्ञोंका कर्ता, दाता और व्यवहारादि मार्गसे शत्रु-मित्रको समान समझनेवाला था। हे मुने! एक दिन राजा सिंहासनपर विराजमान था। उससे सूतों (स्तुति-पाठकों) ने कहा,—महाराज! आप पूर्ववर्ती क्षुपकी तरह शोभा पा रहे हैं। ब्रह्माके पुत्र क्षुप जिस प्रकारके पृथिवीपति थे, उनका जैसा चरित्र और जैसी चेष्टा थी, ठीक उसी प्रकार-

की आपकी भी है। राजा बोला,—महात्मा चूपका चरित्र मैं सुनाना चाहता हूँ। मैं ऐसी चेष्टा करूँगा, जिससे उनके जैसा आचरण करनेमें समर्थ हो सकूँ॥ १—५॥ सूतोंने कहा,—हे राजन्! वह चूप राजा गौ-ब्राह्मणोंके सम्बन्धमें कर नहीं लेता था और जो प्रजासे षष्ठांश भूमि-कर मिलता था; उसीसे यज्ञादि कार्य सम्पन्न करता था। राजाने कहा,—मेरे जैसे व्यक्ति भला उन जैसे महात्माओंके कार्योंका कैसे अनुकरण कर सकते हैं? यह तो सम्भव नहीं प्रतीत होता। तथापि उन महापुरुषोंका आचरण जैसा उत्कृष्ट था, उसका अनुकरण करनेकी चेष्टा करना उचित है। अतः अब मैं जो प्रतिज्ञा करता हूं, उसे सुनो। आजसे मैं महाराज चूपके कार्योंका अनुकरण करूँगा और भूत, वर्तमान तथा भविष्यकालमें कृषिसे जो कर मैंने लिया है, लेता हूं और लूँगा, उससे तीन तीन यज्ञ करूंगा। चार समुद्रोंसे घिरी हुई पृथ्वीमें मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि, इससे पहिले मैंने जो गो-ब्राह्मणोंके सम्बन्धमें राज-कर ग्रहण किया है, वह सब गो-ब्राह्मणोंके ही काममें लगा दूंगा॥ ६–१०॥ मार्कण्डेयने कहा,—याज्ञिक-श्रेष्ठ चूपने जैसी यह प्रतिज्ञा की, वैसी वह निबाही भी। यज्ञ करनेमें प्रवीण उस राजाने प्रत्येक कृषिके समयमें तीन तीन यज्ञ किये और गो-ब्राह्मणोंसे पहिले जो राज-कर ग्रहण किया था, वह गो-ब्राह्मणोंके ही काममें लगा दिया। चूपकी प्रमथा नामकी पटरानीके गर्भसे एक सुन्दर और महा-वीर पुत्र उत्पन्न हुआ। उस पुत्रने शूरता, वीरता और बल आदि गुणोंसे अनेक मही-पालोंको वशीभूत कर लिया। विदर्भराजकी नन्दिनी नामक कुमारीसे उसका विवाह हुआ था। उस प्रधान पत्नीसे उसे विविंश नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ॥ ११—१४॥ महावीर विविंशके शासनकालमें पृथ्वी प्रजावृन्दके द्वारा ऐसी व्याप्त हो गयी थी कि, कहीं किसीको रहनेके लिये कोई स्थान नहीं बच रहा था। तब मेघ यथासमय वर्षा करते और वसुन्धरा भी उसी तरह शस्य-सम्पन्ना हुआ करती थी। सभी शस्य फल-शाली होते, सब फल रसीले होते, सब रस पुष्टिकारी होते और और सब पुष्टि उन्मादको न बढ़ानेवाली हुआ करती थी। सब मनुष्य विपुल-सम्पत्तिशाली होते हुए भी उन्मत्त नहीं थे। हे महामुने! शत्रुगण उसके प्रतापसे डरा करते कभी निश्चिन्त नहीं होते थे। उसके सुहृद्वर्ग सन्तुष्ट-चित्तसे कालयापन करते थे। इस प्रकार विविंश राजाने अनेक यज्ञानुष्ठान कर और उत्तम प्रकारसे राज्यशासन कर संग्राममें मारे जाकर इन्द्रलोकको प्राप्त किया॥ १५—२५॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका विविंशचरित नामक एक सौ उन्नीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ बीसवां अध्याय।

—०:*:०—

मार्कण्डेयने कहा,—महाबली विक्रमशाली खनीनेत्र विविंशका पुत्र था। उसके यज्ञानुष्ठानोंको देखकर गन्धर्वोंने विस्मित होकर यह गान गाया था,—खनीनेत्रके समान यज्ञ करनेवाला इस भूमण्डलमें कोई न होगा। क्योंकि इसने अयुत (दश सहस्र) यज्ञ किये हैं और ससागरा पृथ्वी तक दान कर दी है। महाराज खनीनेत्रने महात्मा ब्राह्मणोंको समस्त पृथ्वी दान देकर तपस्याके द्वारा नाना द्रव्योंको प्राप्त कर उनकी सहायतासे फिरसे छुड़ा ली थी। हे विप्र! दाताओंमें श्रेष्ठ उस राजासे दानमें विपुल वित्त प्राप्त कर ब्राह्मणोंका अन्यत्र प्रतिग्रह करना नहीं पड़ता था। उसने तिहत्तर हजार सात सौ सड़सठ यज्ञ किये थे और प्रत्येक यज्ञमें प्रभूत दक्षिणा प्रदानकी थी ॥ १-५ ॥ हे महामुने! एकदा महीपाल खनीनेत्र अपुत्र होनेके कारण पुत्रकी कामनासे पितृयज्ञ करनेकी इच्छासे मांसका अभिलाषी हुआ और उसी समय शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित होकर सैनिकोंको साथमें न लेकर अकेला ही घोड़पर सवार हो, वनमें मृगयाके लिये चल पड़ा। एक वनसे जब वह दूसरे वनमें दौड़कर प्रवेश कर रहा था, इतनेमें एक मृग बाहर निकल आकर बोला,—हे महाराज! आप मेरा वध कर अपना काम बना लीजिये। राजाने उत्तर दिया,—अन्यान्य मृग मुझे देखते ही महाभीत होकर भाग निकलते हैं, फिर तुम ही क्योंकर मृत्युके लिये आत्मप्रदान करनेकी इच्छा कर रहे हो? मृगने कहा,—महाराज! मैं सन्तानहीन हूं, इस कारण सोचता हूं कि, मेरा जीना वृथा है ॥ ६-१० ॥ मार्कण्डेय बोले,—यह बातचीत हो ही रही थी कि, इतनेमें वहीं एक दूसरा मृग निकल आकर बोला,—हे पार्थिव! इस मृगको लेकर आप क्या करेंगे? मुझे मारकर मेरे मांसके द्वारा आप अपना कार्य सम्पादन कीजिये। ऐसा करनेसे आपका काम बन जायगा और मुझपर भी बड़ा उपकार होगा। महाराज! आप पुत्रकी कामनासे पितरोंके

टीका:—पशुओंमें; मनुष्योंकी तरह वाक्शक्ति, बुद्धितत्त्वका विकाश और वैराग्यादि उच्च वृत्तियां कैसे रहती हैं, इन शङ्काओंका समाधान यद्यपि पहिले कुछ किया गया है, तथापि यहां पुनः कहा जाता है कि, आरूढ़पतित जीव जो पशुयोनिमें आते हैं, अर्थात् मानवपिण्ड और दैवपिण्डके जीव जो पापभोगके निमित्त थोड़े समयके लिये आरूढ़पतित होकर सहजपिण्डरूपी पशुयोनिमें आजाते हैं, उनमें इन सब बातोंका या इनमेंसे कुछ बातोंका होना सम्भव होता है। दूसरा वैज्ञानिक कारण यह है कि, एक कल्प जो लाखों वर्षोंका होता है, इस कारण कल्पान्तरकी सृष्टिके जीवोंकी शक्तिमें भी न्यूनाधिक होना स्वतःसिद्ध है ॥ ६-१० ॥

उद्देश्यसे यज्ञ करने जा रहे हैं, फिर इस सन्तानहीनके मांससे आपका उद्देश्य कैसे सिद्ध होगा? क्योंकि जो कर्म जिस प्रकारका हो, उसके लिये उसी प्रकारके द्रव्यका जुटाना भी आवश्यक होता है। देखिये, दुर्गन्धके द्वारा सुगन्धित वस्तुओंके गन्ध-ज्ञानका निर्णय हो नहीं सकता। राजाने कहा,—पहिले मृगके वैराग्यका कारण उसने अपुत्रता बताया है, किन्तु तुम्हारे प्राणत्याग-विषयक वैराग्यका क्या कारण है? यह कहो ॥ ११—१५ ॥ मृगने कहा,—हे राजन्! मेरे पुत्र-कन्याएं बहुत हैं। उनकी चिन्तासे ही मुझे दुःख-दावानलमें जलना पड़ता है। हे नरेन्द्र! मृगजाति स्वाभाविकरूपसे ही कातर होती है। सभी हिंस्र पशु हमारे भक्षक हैं और अपनी सन्तानके प्रति हमारी अपार ममता होती है। इसीसे हमें सदा दुःख भोग करना पड़ता है। मनुष्य, सिंह, व्याघ्र, भेड़िया, अधिक तो क्या, सब प्राणियोंमें अत्यन्त निकृष्ट सियार-कुत्तोंसे भी हमें भय करना पड़ता है। इस कारण हम सदा यही इच्छा किया करते हैं कि, यह पृथिवी मनुष्य, सिंह आदिके भयसे शून्य हो जाय; जिससे यहां हम निर्विघ्न होकर रह सकें। गो, मेष, छाग, अश्व प्रभृति पशु घास खाते हैं। वे जीवित रहकर यदि पृथ्वीका सब तृण खा जायंगे, तो मेरी पुत्र-कन्याओंको खानेके लिये क्या बच रहेगा? इसीसे उनके

टीकाः—राजा और पशु दोनोंके निःसन्तान होनेका जो दुःख और सन्तानरहित व्यक्तिको नरकका भय होना पाया जाता है, इस श्रेणीकी शंकाका समाधान यह है कि, सन्तति ही प्रजातन्तुकी रक्षा करती है। पुत्र पिताका प्रतिकृति होकर जन्मता है और धार्मिक-पुत्र पिताके सब धर्म और कर्तव्यानुष्ठानोंको सम्हाल लेता है। मृत्युलोक अन्य सब लोकोंका केन्द्र है। अन्य सब लोकोंमें आवागमनचक्र द्वारा घूमकर जीव बार बार इस मृत्युलोकमें आया करता है। यह मृत्युलोक कर्मभूमि होनेके कारण यहां पुनः अच्छे कर्म करके जीवको आध्यात्मिक उन्नति करनेका अवसर मिलता है। स्थूलदेहको बनाने और उसको ठीक रखनेका काम अर्यमा आदि नित्य-पितृगण करते हैं। उनको नियमित तृप्त करना तभी संभव है, जब प्रजातन्तुकी रक्षा हो और संततिकी धारा चलती रहे। दूसरी ओर परलोकगामी आत्माको उसके पुत्रपौत्रादिगण श्राद्ध-तर्पणादि कर्म द्वारा परलोकमें सहायता पहुंचा सकते हैं। तीसरी ओर आध्यात्मिक उन्नतिशील वंशपरम्पराकी सृष्टि ऋषि, देवता, पितृ तीनोंके ही संवर्धनका कारण बनती है, जिससे समग्र दैवलोक संवर्द्धित होता रहता है। यही कारण है कि, प्रवृत्तिमार्गके व्यक्तियोंके लिये सन्तानका होना सबसे परम आवश्यकीय माना गया है। चौथी ओर ऋषि, देवता और विशेषतः पितृगणके सम्वर्द्धित करनेकी जो श्रृंखला है, उस श्रृंखलाके छिन्न होनेसे ऐसे पुत्रहीन व्यक्तिको प्रत्यवायी होना पड़ता है। इस प्रत्यवायसे उसको नरक-यन्त्रणा भोगना भी सम्भव है। क्योंकि जो मनुष्य अपना कर्तव्य पालन नहीं करता वह अवश्य नरकगामी होता है। जैसे कि, नित्यकर्मके न करनेसे मनुष्यको नरकभोग करना पड़ता है। ये ही चारों बातें अपुत्रकके नरक होनेकी कारण हैं। यद्यपि यह नियम पशुके लिये लागू नहीं होता, तथापि आरूढ़पतित होनेसे वह नियम पशुके लिये भी लागू है ॥ ११—१५ ॥

पोषणके निमित्त हम घास खानेवाले पशुओंके निधनकी इच्छा करते हैं ॥१६—२० ॥ हमारी पुत्र-कन्याएं यदि कभी बिछुड़ जाती हैं, तो स्नेहके कारण हमें बड़ी चिन्ता हो जाती है। हम सोचने लगते हैं कि, कोई बच्चा कहीं कूटपाशमें फंसकर या वज्र अथवा अन्य आयुधसे मारा तो नहीं गयाहै, या सिंहादिके द्वारा भक्षित तो नहीं हुआ है? इसी समय जो बच्चे महारण्यमें चरने गये हैं, कहा नहीं जा सकता कि, उनकी क्या अवस्था होगी। हे नृप! पुत्रगण जब पास रहते हैं, तब उन्हें देखकर कुछ भरोसा हो जाता है। किन्तु सारी रात उनके मङ्गलके लिये चिन्ता करनी पड़ती है। सबेरा हो जाता है, तो सारा दिन और सूर्यास्त हो जानेपर सारी रात हमें चितामें ही बितानी पड़ती है। अन्ततः सब समय हम निरापद रहें, ऐसे विचारमें ही प्रतिक्षण पड़े रहते हैं। हे भूप! यही हमारे उद्वेगका कारण है। अब आप कृपाकर मुझपर बाण चलाइये ॥ २१—२५ ॥ हे पार्थिव! किस कारणसे मैं सैकड़ों दुःखोंसे पछाड़ा जाकर प्राणत्यागकी इच्छा करता हूँ, यह आप समझ लीजिये। जो आत्महत्या करते हैं, वे असूर्य नामक नरकमें जा गिरते हैं और जो पशु यज्ञके काममें आते हैं, उन्हें सद्गति प्राप्त होती है। पूर्व्वकालमें अग्नि, वरुण और सूर्य पशुत्वको प्राप्त कर यज्ञकार्यमें नियुक्त हुए थे और उन्हें सद्गति प्राप्त हुई थी। अतः हे नृप! मेरे प्रति अनुग्रह कर मुझे सद्गति प्रदान करें। इससे आपको पुत्र लाभ होकर आपका अभीष्ट सिद्ध हो जायगा ॥ २६—३० ॥ पहिले मृगने कहा,—हे राजेन्द्र! यह मृग हत्याके योग्य नहीं है, क्योंकि जिसे बहुत सन्तति होती है, वह सुकृति और धन्य है। मैं पुत्रहीन हूं, अतः मेरा वध करना उचित है। दूसरे मृगने कहा,—अकेले देहके लिये ही जिसे कष्ट सहना पड़ता है, ऐसे तुम जैसे जीव धन्य हैं। जिनके अनेक देह हैं, उनके कष्ट भी नानाविध हुआ करते हैं। पहले मैं अकेला था, तब मेरा दुःख भी एक देहजन्य था, किन्तु जब मेरी पत्नी आयी, तो स्नेहके कारण वह दुःख भी दो भागोंमें विभक्त हो गया। अब तो जितनी सन्तति उत्पन्न हुई है, देह भी उतने ही भागोंमें विभक्त हो गया है और उतने देहोंका दुःख सहना पड़ता है। जब कि, तुम्हें अधिक दुःख भोगना नहीं पड़ता, तब तुम कृतार्थ क्यों कर नहीं हो? मेरी सन्तति इस लोकमें दुःखकी कारण है और परलोक सम्बन्धमें भी विरोधी है। देखो, मैं अपत्यके रक्षण और पोषणके लिये जो कुछ करता हूं और विचार करता हूं, वह निःसन्देह नरक-गमनका कारण है ॥ ३१-३६ ॥ राजाने कहा,—हे मृग! सपुत्रक और अपुत्रकमें कौन

टीकाः—द्वितीय मृगकी चिन्ता एक ओर मृगसन्तति नष्ट होनेकी और दूसरी ओर व्याघ्रादि हिंस्र तथा अन्य शाकाहारी प्राणियोंके नाशकी केवल भयमूलक है। परन्तु उसकी जो कथा वरुण, सूर्य और अग्निके विषयमें है, वह अध्यात्मभावमूलक है। वह आधिभौतिक वर्णन नहीं है ॥२६-३० ॥

धन्य है, इसका निश्चय मैं नहीं कर सकता। मेरा जो कुछ उद्योग है, वह पुत्रके ही लिये है। अतः मेरा मन बड़ा डांवाडोल हो रहा है। यह बात सही है कि, सन्ततिके कारण इहलोक और परलोकमें दुःख भोगना पड़ता है, किन्तु यह भी सुनता हूं कि, अपुत्रक व्यक्ति निरन्तर ऋणी रहता है। अतः, हे मृग! मैं प्राणिवध न कर पहिलेके महीपतियोंकी तरह प्रचण्ड तपस्याकें द्वारा पुत्रप्राप्तिकी चेष्टा करूंगा ॥ ३७-३६ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका खनीनेत्र चरित नामक
एक सौ बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयने कहा,—अनन्तर खनीनेत्र नृपति पापनाशिनी गोमतीके तटपर जाकर संयतेन्द्रिय होकर देव-पुरन्दरका स्तवन करने लगा। हे महामुने! राजाने काया, वाणी और मनको संयत कर पुत्रकी इच्छासे जब इन्द्रका स्तवन किया, तब उसके स्तवनसे सन्तुष्ट होकर सुरेश्वरने कहा,—हे भूप! तुम्हारी भक्ति और स्तुतिवाक्योंसे मैं परितुष्ट हुआ हूं; इस कारण जो मांगना हो, वह वर मांगलो। राजा बोला,—मैं पुत्रहीन हूं; अतः यह वर दीजिये कि, मुझे सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ, सर्वदा अव्याहत ऐश्वर्यसम्पन्न, धर्मज्ञ, धर्माचरणपरायण और कृती पुत्र हो ॥ १-५ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—राजाकी प्रार्थना सुनकर इन्द्रके 'तथास्तु' कहने पर राजा प्रजापालनके हेतु अपने नगरमें लौट आया। उसे फिर यज्ञानुष्ठान और प्रजापालन करते हुए इन्द्रकी कृपासे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। भूपतिने उसका नाम बलाश्व रक्खा और उसे समस्त अस्त्रविद्या सिखायी। हे विप्र! पिताकी मृत्युके पश्चात् बलाश्व साम्राज्येश्वर राजा हुआ और उसने पृथ्वीके समस्त राजमण्डलको वशीभूत कर लिया। फिर उसने विवाह किया

टीका:—राजाका पहिले प्रवृत्तिधर्मके अनुसार अभ्युदयमूलक विचार था। इस कारण पितृयज्ञ, श्राद्धादिके करने और मांसादि संग्रह करनेकी उसमें रुचि थी। जो गृहस्थके लिये स्वाभाविक धर्म है। परन्तु अन्तमें दोनों आरूढपतित मृगोंके कथोपकथनसे विषय-वैराग्यकी वृद्धि होनेपर उसे निवृत्तिधर्मका अधिकार प्राप्त हुआ। तब वह नृपवर दृष्ट और आनुश्रविक विषयोंकी इच्छासे रहित होनेसे उसको निवृत्तिधर्मका अधिकार प्राप्त हुआ और तब वह अभ्युदयमार्गको छोड़कर निःश्रेयस मार्गका पथिक बन गया और उसने तपस्या आदि जो की, वह निःश्रेयसके लिये ही की थी। अतः इस गाथासे श्राद्ध आदिकी निन्दा नहीं है। बल्कि निवृत्तिधर्मकी श्रेष्ठता पायी जाती है ॥३०-३५॥

और प्रजाओंसे कर लेकर उनका वह उत्तम रीतिसे प्रतिपालन करने लगा ॥ ६–१० ॥ अनन्तर वे सब नरपति, जो बलाश्वके अधीन थे, उन्मत्त होकर बिगड़ खड़े हुए और उनका साथ बलाश्वके बन्धु-बान्धवोंने दिया। उन सबने कर देना बन्द कर दिया और स्वाधीनभावसे अपने अपने राज्योंका शासन वे करने लगे। इतनेसे ही सन्तुष्ट न होकर उन्होंने नरेन्द्र बलाश्वकी अधिकृत भूमिपर भी अधिकार कर लिया। हे मुने! पृथ्वीश्वर बलाश्वने उन विरोधी राजाओंसे युद्ध किया, परन्तु पर्याप्त बल न होनेसे वह हार गया और अपने ही छोटेसे राज्यका अधिकारी बनकर अपनी राजधानीमें रहने लगा। युद्धके सब साधनों और धनबलसे सम्पन्न उन राजाओंने फिर उसकी राजधानीको ही घेर लिया। इससे महीपति बहुत क्रुद्ध हुआ, परन्तु बलशाली होते हुए भी उसका कोष क्षीण हो जाने और दण्डाधिकारके शिथिल होनेसे आत्मरक्षाका उसे कोई उपाय नहीं सूझ पड़ा। अन्तमें कातर और व्यथित-हृदय होकर उसने अपने दोनों हाथ मुंहके सामने कर, दीर्घ निःश्वास परित्याग किया। उसके हाथोंमें मुंहकी हवा लगनेसे अंगुलियोंके बीचके छिद्रोंमेंसे सैकड़ों योधा, हाथी, रथ, घोड़े आदि निकल पड़े ॥ ११—१७ ॥ हे मुने! थोड़ेही समयमें बलशाली उस सर्वोत्कृष्ट सैन्यसमूहने समस्त नगरको व्याप्त कर डाला। उस महासेनाको साथ लेकर बलाश्व राजधानीके बाहर निकल आया और उसी सेनाकी सहायतासे उसने समस्त शत्रुदलको छार-खार कर दिया। हे महाभाग! इस प्रकार बलाश्वने सबको हराकर पहिलेकी तरह उन्हें कर देनेके लिये विवश किया और वह सब लोगोंमें सौभाग्यशाली माना जाने लगा। बलाश्वके 'धूत' अर्थात् कम्पित करोंमेंसे अरिनिशूदन सेना उत्पन्न हुई थी, इस कारण वह 'करन्धम' नामसे विख्यात हुआ। करन्धम त्रिलोकमें विख्यात, धर्मात्मा, महात्मा और सब प्राणियोंके साथ मित्रभावापन्न था। उस राजाने धर्मके दिये हुए बलको प्राप्त कर परम दुःखित प्रजावृन्दके शत्रुओंका विनाश किया था ॥ १८—२३ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका करन्धम-चरित नामक एक सौ इक्कीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ बाईसवां अध्याय।

—०:॥:०—

मार्कण्डेयने कहा,—वीर्यचन्द्र राजाकी सुन्दर भौंहोंवाली और शुभ व्रतोंका आचरण करनेवाली वीरा नामकी कन्याने महाराज करन्धमको स्वयंवरमें पति रूपसे

वरण किया था। उसीके गर्भसे उस राजेन्द्रने अवीक्षित नामक जगद्विख्यात वीर्यवान् पुत्र उत्पन्न किया था। पुत्रके उत्पन्न होनेपर राजाने दैवज्ञोंको बुलाकर पूछा कि, इस कुमार-का जन्म शुभलग्न और शुभनक्षत्रमें तो हुआ है? इसके जन्मलग्नपर सब शुभ ग्रहोंकी शुभ दृष्टि तो है? बुरे ग्रहोंकी तो उसपर दृष्टि नहीं पड़ी है? राजाके इस प्रकार पूछने पर दैवज्ञोंने उत्तर दिया कि, हे महाराज! आपका यह कुमार प्रशस्त मुहूर्त, प्रशस्त नक्षत्र और प्रशस्त लग्नमें उत्पन्न हुआ है। इससे यह महाभाग्यवान्, महावीर्यवान् और महाबलशाली महाराजा होगा॥ १—६॥ यह देखिये, आपके इस पुत्रको सप्तमस्थ बृह-स्पति और शुक्र, चतुर्थस्थ चन्द्रमा तथा एकादशस्थ बुध देख रहा है। इस पुत्रके प्रति रवि, मङ्गल और शनिकी दृष्टि नहीं है। अतः हे महाराज! आपका पुत्र धन्य और सब कल्याणकारी सम्पदाओंसे युक्त होगा। मार्कण्डेयने कहा,—दैवज्ञोंके उक्त वाक्य श्रवण कर वसुधेश्वर प्रीतिपूर्ण अन्तःकरणसे अपने सिंहासनपर बैठे बैठे कहने लगा, इस पुत्रको बृहस्पति और बुध तो देख रहे हैं, किन्तु रवि, शनि और मङ्गल नहीं देखते। आप लोगोंने बार बार 'अवेक्षत' (देखिये) शब्दका उपयोग किया है, इस कारण यह पुत्र 'अवीक्षित' नामसे विख्यात होगा॥ ७-१२॥ मार्कण्डेयने कहा,—वेद-वेदाङ्गपारग उस राजपुत्र अवीक्षितने महर्षि कण्वके पुत्रसे निखिल अस्त्रविद्याकी शिक्षा प्राप्तकी थी। वह रूपमें देववैद्य अश्विनीकुमारोंसे, बुद्धिमें वाचस्पतिसे, कान्तिमें चन्द्रमासे, तेजमें सूर्यसे, धैर्यमें समुद्रसे और सहिष्णुतामें पृथिवीसे भी बढ़कर था और कोई भी व्यक्ति उस महात्माके समान शौर्यशाली नहीं था। स्वयंवरमें उसे हेमधर्मकी कन्या वरा, सुदेवकी कन्या गौरी, बलिकी पुत्री सुभद्रा, वीरभद्रकी कन्या लिभा, वीरकी कन्या लीला-वती, भीमकी पुत्री मान्यवती और दम्भकन्या कुमुद्वतीने वरण किया था। अन्य जिन राजकन्याओंने उसे स्वयंवरमें सम्मानित नहीं किया, बलवान् बलोन्मत्त वह राजपुत्र अपने पराक्रमसे उनके पितृकुलके राजवृन्दको पराजित कर उन्हें बलप्रयोगके द्वारा हरण कर लाया॥ १३-१६॥ हे विप्रर्षे! एक बार विदिशाधिपति विशालराजकी कन्या सुदती वैशालिनीने स्वयंवरमें उसे नहीं वरा, इससे असन्तुष्ट होकर बलके गर्वमें भरकर अन्यान्य राजकन्याओंको जिस प्रकार वह हरण कर लाया था, उसी प्रकार समस्त भूपालोंको हराकर उसको भी हर लाया। इस कारण समस्त राजवृन्द मानो अवीक्षितके द्वारा बारंबार पराजित होनेके कारण दुःखित चित्तसे व्याकुल होकर आपसमें कहने लगे,—एकजातीय बलशाली संघटित राजाओंके रहते हुए अकेला वीर इस ललनाको उठाकर लेजाय और हम उसे देखते हुए सहते जांय, यह हमारे लिये बड़ी ही धिःकारकी बात है। दुष्टोंके द्वारा मारे जाते हुए व्यक्तिको जो बचाता है, उसीका नाम सच्चा

क्षत्रिय है; अन्य लोगोंने तो क्षत्रिय नाम वृथा ही धारणकर रक्खा है। औरोंकी तो बात ही क्या है, हम लोग स्वयं इस दुष्टसे अपनी ही रक्षा करनेका उद्योग नहीं करते, इस प्रकार हमारा क्षत्रिय कुलमें जन्मग्रहण करना कहांतक ठीक है? हे वीरवृन्द! सूत, मागध और वन्दिजन अपनी जो स्तुति करते हैं, वह वृथा न हो और शत्रुका विनाश कर उसे इस सत्यके रूपमें परिणत करें ॥ २०-२५ ॥ अपने नामके साथ जोड़ा जानेवाला 'भूप' शब्द दिग्दिगन्तमें वृथा प्रचारित न होने पावे। हम सभी विशिष्ट कुलोंमें उत्पन्न हुए हैं, इस कारण सभी पौरुषशाली हैं। कौन व्यक्ति मृत्युका भय नहीं करता और युद्धपरित्याग करके भी कौन अमर हुआ है? यह सब विवेचना कर, शस्त्रधारीमात्रको पौरुषका त्याग करना उचित नहीं है। परस्परकी इन बातोंसे सब भूपाल बहुत क्रुद्ध होकर सभी आपसमें उत्साहपूर्ण बातचीत करने लगे और शस्त्र तानकर उठ खड़े हुए। कोई रथपर, कोई हाथीपर और कोई घोड़ेपर आरूढ़ हुए तथा कोई क्रुद्धचित्तसे पैदल सवार बनकर अवीक्षितसे सामना करनेके लिये चल पड़े ॥ २६-३० ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका अवीक्षितचरित सम्बन्धी एक सौ बाईसवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ तेईसवाँ अध्याय।

—:०*०:—

मार्कण्डेयने कहा,—इस प्रकार अवीक्षितके द्वारा अनेक बार पराजित हुए वे राजपुत्र और राजन्यगण सुसज्जित होकर संग्राममें उतर आये। हे मुने! तब बहुसंख्यक भूपालों और राजपुत्रोंके साथ अकेले अवीक्षितका घनघोर संग्राम प्रारम्भ हुआ। वे सब रणमदमें भरे हुए राजन्यगण तलवार, शक्ति, गदा, बाण आदि आयुधोंके द्वारा अवीक्षित पर आघात करने लगे और वह भी अकेला उन सबसे सामना करता जाता था। अस्त्रज्ञ बलवान् राजपुत्र अवीक्षितने उनपर सैकड़ों तीक्ष्ण बाण छोड़े और वे भी सब उन बाणोंसे विद्ध हो गये। राजपुत्र अवीक्षितने किसीके हाथ तो किसीके सिर काट डाले, किसीका हृदय छेद डाला और किसीकी छातीपर आघात किया। उसने किसीकी हाथीकी शुण्डा और किसीके घोड़ेका सिर काट डाला तथा किसीके रथके घोड़ों और किसीके सारथीको ही मार डाला ॥ १-६ ॥ वह शत्रुओंके बाणोंको सामने आते देखकर अपने बाणोंसे आधे रास्तेमें ही काट डालता और अपूर्व हस्तकौशलसे किसीके खड्ग और किसीके धनुष्यको ही तोड़ डालता था। जब अवीक्षित किसी

राजपुत्रके वर्म (ज़िरह-बख़्तर) को काट डालता, तो उस राजपुत्रका प्राणान्त हो जाता और किसी पदातिको आहत करता, तो वह रणसे भाग निकलता था। इस प्रकार समस्त राजमण्डलको आकुलित कर देने और हारे हुए सैनिकोंके भाग निकलनेके उपरान्त केवल सात सौ वीर अपने कौलीन्य, वयस और शूरताका विचार करने तथा लज्जाके कारण मृत्युकी उपेक्षा कर रणक्षेत्रमें डँटे रहे। राजपुत्र अतिकुपित हो गया था। वह प्रत्येक राजा और राजपुत्रके सम्मुख उपस्थित होकर यथाविधि धर्मयुद्ध करने लगा। हे महामुने! महाबली अवीक्षितने जब उन लोगोंके अस्त्र-कवचादि छिन्न-भिन्न कर देनेका सङ्कल्प कर लिया, तो, पसीनेसे तराबोर हुए वे नरेन्द्रपुत्रगण धर्म-विचारको छोड़कर उस धर्मयोद्धाके साथ युद्ध करने लगे। किसीने अवीक्षितको बाणोंसे विद्ध किया और किसीने उसके धनुषको ही तोड़ डाला। किसीने तो उसकी ध्वजा ही तोड़कर पृथ्वी पर गिरा दी ॥ ७-१४ ॥ कोई उसके घोड़ोंको काटता, कोई गदासे रथको चकनाचूर करनेकी चेष्टा करता और कोई पीछेसे ही बाणोंकी वर्षा करता था। उसके धनुषके टूट जानेपर उसने असिचर्म ग्रहण किया, किन्तु वह भी किसी वीरने तोड़ डाला। फिर गदायुद्ध करनेवालोंमें श्रेष्ठ अवीक्षितने युद्धके लिये गदा तान ली। उसे भी किसी वीरने क्षुरप्र नामक आयुधसे छिन्न कर दिया। अनन्तर धर्मयुद्धपराङ्मुख नरपतियोंने उसे चारों ओरसे घेर लिया और कोई सहस्र तथा कोई शत बाणोंसे विद्ध करने लगे। अकेले राजकुमारपर इस प्रकार चारों ओरसे अनेक वीरों द्वारा घोर आक्रमण होनेके कारण वह विह्वल होकर भूमिपर गिर पड़ा। तब अनेक महाभाग राजकुमारोंने उसे बाँध लिया और अधर्मयुद्धमें बाँधकर लाये हुए उस राजपुत्रको साथमें लेकर विशालराज-सहित वैदिशपुरमें प्रवेश किया ॥ १५-२० ॥ राज-पुत्र अवीक्षितको बाँध लानेपर सब राजा और राजकुमार हृष्ट और आह्लादित हुए। तदनन्तर उन्होंने उस कन्याको, जिसने स्वयंवर रचा था और उन सब राजकुमारोंको, जिन्होंने अवीक्षितको बाँधा था, विशाल-नरपतिके सम्मुख लाकर खड़ा किया। हे महामुने! फिर कन्याके पिता और पुरोहितने कन्यासे बार-बार कहा कि, इन राजाओं-मेंसे जिसे तुम चाहो, उसे वरण करलो। परन्तु कन्याने किसीको वरण नहीं किया। तब राजाने दैवज्ञोंको बुलाकर विवाह-सम्बन्धमें आज्ञा दी कि, आज तो विवाहमें विघ्नो-त्पादक इस प्रकारका युद्ध छिड़ गया, इसलिये इसके विवाहके लिये कोई दूसरा अच्छा दिन ढूंढ़ निकालो। मार्कण्डेयने कहा,—नरेन्द्रके द्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर दैवज्ञोंने विचार किया और सब भावी ज्ञात कर दुःखित चित्तसे महीपालसे कहा,—हे पृथ्वीनाथ! इस विवाहके लिये प्रशस्त लग्नयुक्त दूसरा कोई अच्छा दिन हम शीघ्र ही

चुन देंगे। वह दिन जब उपस्थित होगा, तभी आप विवाहकार्य करें, अन्यथा विवाह करना उचित नहीं है। क्योंकि आज इस प्रकारका महाविघ्न उपस्थित हुआ है ॥ २१–२७ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका अवीक्षित-चरितसम्बन्धी
एक सौ तेईसवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ चौबीसवां अध्याय।

—०:※:०—

मार्कण्डेयने कहा,—महाराज करन्धम, महारानी वीरा और अन्यान्य राजाओंने जब राजपुत्र अवीक्षितको शत्रुओंने अधर्म-युद्धमें बद्ध कर लिया है यह समाचार सुना, तब हे महामुने! समस्त सामन्तोंको बुलाकर राजा उनके साथ बहुत देरतक विचार करता रहा। किसीने कहा,—जिन बहुतसे राजाओंने एकसाथ मिलकर अकेले राज-पुत्रके साथ अधर्मयुद्ध किया और उसे बाँध डाला, वे सभी वध्य हैं। किसीने कहा,—अब निश्चिन्त होकर क्यों बैठे हैं? शीघ्र ही सेनाको सुसज्जित कर विशालराज तथा वहाँ आये हुए अन्यान्य राजाओंको बांध लाना चाहिये। किसीने कहा,—पहिले ही अपने राजपुत्रने उन्हें न चाहनेवाली कन्याको अन्याय तथा बलपूर्वक हरण कर अधर्म किया है और इसी तरह सभी स्वयंवरोंमें अनेक राजपूतोंको उन्होंने शत्रु बना लिया है, इसीसे अब उन शत्रुओंने उन्हें बद्ध किया है ॥ १–६ ॥ वीर-कन्या, वीर-पत्नी और वीर-माता वीरा उन लोगोंकी बातें सुनकर प्रसन्न चित्तसे पति और उपस्थित राजाओंके सम्मुख कहने कहने लगी,—हे पार्थिवगण! सब राजाओंको हराकर मेरे कल्याणास्पद पुत्रने बलपूर्वक कन्याको हरण किया, यह उत्तम ही हुआ। इस कारण अकेले मेरे पुत्रके साथ अनेक राजाओंने अधर्मयुद्ध किया,—मेरी समझमें मेरे पुत्रके लिये यह भी हानिकारक नहीं हुआ है। मनुष्योंकी अधर्ममूलक इस प्रकारकी नीतिको, हत्यारेको वीरकेसरीकी तरह महत्व देना ही पुरुषका पुरुषार्थ है! अनेक माननीय राजाओंके देखते हुए बल-प्रयोगके द्वारा मेरा पुत्र स्वयंवरमें अनेक कन्याओंको हर लाया है। कहां तो क्षत्रिय कुलमें जन्म और कहां हीन जनोचित-भीरुता! दोनोंमें बड़ा ही अन्तर है। बलवान् क्षत्रियोंके सामने बल प्रकाश करके ही शूर लोग कन्याहरण किया करते हैं। धार्मिक राजन्यगण लोहश्रृङ्खलामें आबद्ध होनेपर भी कातरभावसे किसीकी अधीनता स्वीकार नहीं करते। पहिले वे वीरता दिखानेसे मुंह नहीं मोड़ते और संयोगवश बन्धनमें पड़

जायं, तो बुरा भी नहीं मानते। फिर हमें भी इस विषयमें बुरा नहीं मानना चाहिये। मेरी समझमें तो मेरे पुत्रका यह बन्धन प्रतिष्ठाका विषय है। इससे यदि आप लोगोंके सिरपर वज्र घहराया हो, तो वह भी श्लाघाका विषय है ॥ ८-१४ ॥ राजन्यगण पृथिवी, पुत्र, धन, भार्या आदि सज्जनोंसे ही प्राप्त कर अपना गौरव बढ़ाया करते हैं। अब आप लोग युद्धके लिये शीघ्रता कीजिये। अपने रथ, हाथी, घोड़े आदि सारथियोंके सहित सजा लीजिये। बहुतसे महीपालोंके साथ अकेले युद्ध करना आप कैसा समझते हैं? शूर लोग थोड़ा ही युद्ध कर बहुतसा काम बना लेते और सन्तुष्ट हो जाते हैं। थोड़ेसे शत्रु-राजाओं और ऐसे कातर शत्रुओं, जिनसे भयकी सम्भावना नहीं है, उनके सम्मुख अपने बलका प्रदर्शन कौन नहीं करता? सूर्य जिस प्रकार दिगन्तमें परिव्याप्त तमोराशिका नाश करता है, उसी प्रकार शूर लोग बल-वीर्य आदिके द्वारा समस्त भुवनोंमें व्याप्त शत्रुओंको पराभूत करके शोभा पाते हैं और ऐसे ही लोग सच्चे शूर कहाते हैं ॥ १५-१९ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—हे मुने! इस प्रकार पत्नीके द्वारा उत्तेजित किया जानेपर राजा करन्धम पुत्रके शत्रुओंके विनाशके अभिप्रायसे सेना सजाने लगा। उधर राजकुमार बन्धनमें ही पड़ा था और इधर करन्धमका विशालराज तथा अन्यान्य राजवृन्दसे घनघोर युद्ध छिड़ गया। विशालराजके सहकारियोंके साथ करन्धमका लगातार तीन दिनतक युद्ध होता रहा। जब देखा गया कि, विशालराजकी ओरके सब राजा बराबर हारते जाते हैं और करन्धमसे पार नहीं पा सकते, तब स्वयं विशालराज करन्धम राजाको प्रसन्न करनेके लिये हाथमें अर्घ लेकर उसके सम्मुख उपस्थित हुआ। करन्धम विशालराजके द्वारा पूजित होकर और पुत्रको बन्धनमुक्त कर प्रसन्न हुआ और उसने वह रात वहीं सुखपूर्वक बितायी ॥ २०-२४ ॥ हे विप्रर्षे! फिर विशालराज अवीक्षितको दान करनेके लिये अपनी कन्याको वहां ले आया; परन्तु अवीक्षितने उसका स्वीकार न कर पिताके सम्मुख ही कहा कि, हे नृप! जिस कन्याके समक्ष मैं शत्रुओंके द्वारा पराजित हुआ, उसको कदापि ग्रहण नहीं कर सकता और ऐसे अवसरपर अन्य किसी कामिनीका भी स्वीकार नहीं करूँगा। अतः जो शत्रुओंसे कभी पराजित न हुआ हो और अखण्डित यशोवीर्यशाली हो, ऐसे किसी व्यक्तिको आप कन्यादान करिये। और यह कन्या भी ऐसे ही किसी व्यक्तिको पतिरूपसे वरण करे। मैं कातरा अबलाकी तरह शत्रुओंसे हराया गया हूं, तब मेरा मनुष्यत्व ही कहां रहा? इस कन्यामें और मुझमें भेद ही क्या है? पुरुष चिरकालसे स्वतन्त्र रहते आये हैं और ललनाएँ सदा पराधीन हुआ करती हैं। पुरुष होकर जो पराधीन होते हैं, उनकी मनुष्यता कहां रह जाती है? जिनके सामने राजाओंके द्वारा मैं हारा, उनको अब मैं यह मुख कैसे दिखाऊँ?

॥ २५-३० ॥ राजपुत्रकी ये बातें सुनकर पृथ्वीपति विशालराजने कन्यासे कहा,—वत्से ! इस महात्माने जो कुछ कहा, वह तूने सुन ही लिया है। अतः हे कल्याणि ! यदि तेरी इच्छा हो, तो स्वयं अन्य किसीको पतिरूपसे वरण करले, अथवा तुझपर मेरा असीम प्रेम होनेसे मैं जिसे मनोनीत करूँ, उसीको दान कर दूं। हे रुचिरानने ! दोनोंमेंसे जो पसन्द हो, वही कर। कन्याने कहा,—हे पार्थिव ! ये राजकुमार युद्धमें धर्मविमुख नहीं हुए और बहुसंख्यकोंके साथ संग्राम करते हुए भलीभांति पराजित भी नहीं हुए, जिससे कि, इनके यशोवीर्यकी हानि हुई हो। युद्धार्थ आये हुए अनेक राजाओंके साथ सिंहकी तरह इन्होंने अकेले युद्ध किया और विशेष शौर्य प्रकट किया था। ये केवल युद्धमें डँटे ही नहीं रहे, किन्तु इन्होंने निखिल नृपतिमण्डलको पराजित कर अपूर्व विक्रम दिखाया था। शौर्यविक्रमशाली, धर्मयुद्धपरायण इन अकेले राजकुमारको बहुसंख्यक नृपतियोंने मिलकर अधर्माचरणके द्वारा पराजित किया, इससे बढ़कर लज्जाकी बात क्या हो सकती है ? ॥ ३१-३६ ॥ हे पिताजी ! मैं केवल इनका रूप देखकर ही मोहित नहीं हुई हूं, किन्तु इनके शौर्य, विक्रम और धैर्यने भी मेरे मनपर अधिकार कर लिया है। मैं अधिक क्या कहूं ? हे नृप ! आप मेरे लिये इन्हीं महानुभावसे अनुरोध करिये। इनके सिवा मेरा कोई अन्य पति हो नहीं सकता। विशालराजने कहा,—हे राजपुत्र ! मेरी कन्या जो कुछ कहती है, वह युक्तियुक्त जान पड़ता है। तुम जैसा और कोई राजकुमार पृथ्वीमें देख नहीं पड़ता। तुम्हारा शौर्य अप्रतिहत है और पराक्रम भरपूर है; अतः तुम ही इस कन्याका परिग्रह कर मेरे कुलको पवित्र करो ॥ ३७-४० ॥ राजपुत्र बोला,—हे नृप ! मैं इसको या दूसरी किसी कामिनीको ग्रहण नहीं करूँगा। हे मनुजेश्वर ! मैं तो अपने आपको ही अबला समझ रहा हूं। मार्कण्डेयने कहा,—तब करन्धम राजपुत्रको समझाने लगा कि, हे राजपुत्र ! तुम इस राजकन्याको ग्रहण कर लो; क्योंकि यह सुन्दर भौंहों और विशाल नेत्रोंवाली कन्या तुम्हारे प्रति प्रगाढ़ अनुरागिणी हो रही है। राजपुत्रने कहा,—हे प्रभो ! मैंने आजतक कभी आपकी आज्ञाका भङ्ग नहीं किया है। इस समय भी आप मुझे ऐसी आज्ञा दें, जिसका प्रतिपालन करनेमें मैं समर्थ हो सकूँ। मार्कण्डेयने कहा,—जब विशालराजने देखा कि, राजपुत्रका निश्चय दृढ़ है, तब व्याकुल-चित्तसे कन्यासे कहा,—पुत्रि ! अब तू इस राजकुमारसे अपने चित्तको हटा ले। अनेक राजपुत्र विद्यमान हैं, उनमेंसे किसीको वरण कर ले ॥ ४१-४५ ॥ कन्या बोली,—हे तात ! यदि ये राजकुमार मुझसे विवाह नहीं करना चाहते, तो मैं यही वर चाहती हूं कि, तपके सिवा इस जन्ममें मेरा कोई दूसरा पति न हो। मार्कण्डेयने कहा,—फिर करन्धम तीन दिनतक विशालराजके यहां प्रसन्न चित्तसे रहकर अपनी नगरीमें लौट आया। पिता तथा अन्यान्य नरेशोंके अनेक प्राचीन दृष्टान्तोंके द्वारा

सान्त्वना करनेपर अवीक्षित भी राजधानीमें चला आया। विशालराजकी कन्या भी आत्मीयोंसे विदा होकर वनमें चली गयी और परम वैराग्यके साथ निराहार रहकर तपस्या करने लगी। तीन मासतक इस प्रकार निराहार रहनेके कारण वह सूखकर काँटा हो गयी। अति मुमूर्षु अवस्थाको प्राप्त हुई वह कृशाङ्गी राजबालिका अन्तमें व्यथित और हतोत्साह होकर प्राणविसर्जन करनेका दृढ़ निश्चय करने लगी। इधर उसे प्राणत्यागके लिये सचेष्ट देखकर सब देवता एकत्र हुए और उन्होंने अपने एक दूतको उसके पास भेजा ॥ ४६-५२ ॥ वहां दूतने उपस्थित होकर उससे कहा,—हे नृपात्मजे! मैं देवताओंका भेजा हुआ उनका दूत हूं। जिस कामके लिये देवताओंने मुझे तुम्हारे पास भेजा है, वह सुनो। इस दुर्लभ शरीरका तुम त्याग न करो; क्योंकि हे कल्याणि! तुम चक्रवर्ती राजाकी जननी होनेवाली हो। हे महाभागे! तुम्हारा पुत्र समस्त शत्रुओंका विनाश कर अपने अप्रतिहत प्रभावसे दीर्घकालतक इस सप्त-द्वीपा वसुन्धराका उपभोग करेगा। देवशत्रु तरुजित और क्रूर अयःशंकु देवताओंके सामने ही उसके द्वारा मारे जायंगे। वह प्रजाओंको धर्माचरणमें प्रवृत्त करेगा और स्वयं वर्णाश्रमधर्मका उत्तम रीतिसे प्रतिपालन करेगा। म्लेच्छ, दस्यु आदि दुराचारी उसके द्वारा विनाशित होंगे और हे भद्रे! वह विपुल दक्षिणाओंके साथ अश्वमेधादि अनेक प्रकारके छः सहस्र यज्ञ करेगा। मार्कण्डेयने कहा,—दिव्य माल्य और अनुलेपन धारण किये हुए अन्तरीक्षस्थ उस देवदूतको देखकर राजकन्याने मृदु स्वरसे कहा,—आप अवश्य ही देवदूत हैं और स्वर्गसे पधारे हैं, इसमें सन्देह नहीं; किन्तु विना पतिके मुझे पुत्र कैसे उत्पन्न होगा? अवीक्षितके अतिरिक्त इस जन्ममें मेरा कोई दूसरा पति हो नहीं सकता। मैंने पिताके सामने यह प्रतिज्ञा की है। परन्तु अवीक्षित मेरे, मेरे पिताके और उनके पिताके अनुरोधसे भी मेरा स्वीकार करनेके लिये प्रस्तुत नहीं हो रहे हैं। देवदूत बोला,—हे महाभागे! अधिक कुछ कहनेका प्रयोजन नहीं है। तुम्हें अवश्य ही पुत्र उत्पन्न होगा; अतः आत्महत्यारूपी अधर्माचरण मत करो। इसी वनमें रहकर इस क्षीण शरीरको पुष्ट करो। तपस्याके प्रभावसे तुम्हारा सब प्रकार मङ्गल होगा। मार्कण्डेयने कहा,—इस प्रकार आश्वासन देकर देवदूत यथास्थान चला गया और सुभ्रू राजकन्या प्रतिदिन शरीरका पोषण करने लगी ॥ ५३-६५ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका अवीक्षितचरितसम्बन्धी
एक सौ चौबीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ पचीसवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयने कहा,—एक वार किसी पुण्य दिनके उपस्थित होनेपर अवीक्षितकी वीरप्रसू माता वीराने उसे बुलाकर कहा,—मैं 'किमिच्छक' नामक उपवासयुक्त एक दुष्कर व्रत करना चाहती हूं। तुम्हारे महात्मा पिताने इसके लिये मुझे अनुज्ञा देदी है। परन्तु हे पुत्र! यह व्रत तुम, तुम्हारे पिता और मेरे मिलकर करनेसे ही सम्पन्न हो सकता है। अतः यदि तुम इसमें योगदान करनेको प्रस्तुत हो जाओ, तो मैं व्रताचरणका प्रयत्न करूं। तुम्हारे पिताके राजकोषसे लगभग आधा धन इस व्रतमें व्यय हो जायगा। यह बात उनके हाथकी है; इसलिये उनकी मैंने अनुज्ञा लेली है। कष्टसाध्य जो इस व्रतकी बातें हैं, मेरे द्वारा वे उत्तम रीतिसे सम्पन्न हो जायंगी। रहीं वल और पराक्रमसे साध्य होनेवाली वातें; जो तुम्हारे हाथ हैं। वे सुसाध्य, दुःसाध्य और असाध्य भी हो सकती हैं। हे पुत्र! ऐसी बातोंमेंसे जो तुम्हारे लिये साध्य प्रतीत हों, उनको करना तुम अङ्गीकार करो, तो मैं इस व्रतको करनेका उद्योग करूँ। इस विषयमें तुम्हारा क्या अभिप्राय है, वह प्रकट करो॥ १-६॥ अवीक्षितने कहा,—धन तो पिताके अधिकारमें है, उसपर मेरा कोई अधिकार नहीं है। मेरे शरीरसे जो सम्पन्न होना सम्भव हो, आपकी आज्ञाके अनुसार उसका सम्पादन करनेको मैं प्रस्तुत हूं। यदि धनपति पिताजीने अनुज्ञा देदी है, तो हे मातः! आप निश्चिन्त होकर प्रसन्न चित्तसे इस किमिच्छक व्रतका अवलम्बन कीजिये। मार्कण्डेयने कहा,—फिर संयमपरायणा राजेन्द्रमहिषीने उपोषित रहकर और काया, वाणी तथा मनको संयत कर, भक्तिपूर्वक यथोक्त विधानके अनुसार निधिसमूह, निधिपालगण और लक्ष्मीदेवीकी पूजा की। इधर राजा करन्धम नीतिशास्त्रविशारद सचिवोंके साथ मन्त्रणागृहमें बैठकर विचार कर रहा था। राजासे सचिवोंने कहा,—राजन्! पृथ्वीपालन करते हुए आजतक आपका वंश अविच्छिन्न रहा है। आपके एक ही कुमार अवीक्षित हैं, जिन्होंने विवाह न करनेका निश्चय कर लिया है। हे भूप! यदि उनका अपुत्रक रहनेका यही निश्चय दृढ़ बना रहा, तो निःसन्देह यह पृथ्वी आपके शत्रुओंके अधिकारमें चली जायगी। आपका भी वंशक्षय होकर पितरोंके श्राद्ध-

---

टीकाः—इस व्रतमें जो याचक जो कुछ माँगे, वह उसे देकर संतुष्ट करना पड़ता है; तभी यह व्रत सफल होता है। इसी प्रकारके वैदिक यज्ञोंमें दान-सम्बन्धी विश्वजित आदि अनेक यज्ञ हैं। परन्तु यह व्रत और ऐसे यज्ञ राजाओंके करने योग्य हैं, साधारण मनुष्योंके करने योग्य नहीं हैं। यज्ञ पुरुषके लिये और व्रत स्त्रियोंके लिये विहित हैं॥ १-६॥

तर्पणादिका कार्य विनष्ट हो जायगा। क्रियाहानिके कारण बड़ा ही शत्रुभय उपस्थित होगा। अतः हे भूपाल! आपके कुमार फिर जिससे सदा पितरोंका उपकार साधन करनेवाली बुद्धिका अवलम्बन करें, ऐसा उपाय कीजिये ॥ ७-१५ ॥ मार्कण्डेयने कहा,— इसी समय राजमहिषी वीराकी ओरसे अर्थियों (याचकों) के प्रति पुरोहितने जो घोषणा की, उसके शब्द राजाने सुन लिये। पुरोहितकी घोषणा इस प्रकार थी,— "महाराज करन्धमकी महिषीने किमिच्छकव्रत प्रारम्भ किया है। अतः हे लोगों! किसकी क्या इच्छा है और किसका कौनसा दुःसाध्य कार्य साधना है, वह प्रकट करो।" पुरोहितकी घोषणा सुनकर राजपुत्र अवीक्षित भी राजद्वारमें चला आया और याचकोंसे बोला,— "हे याचकों! मेरी प्रतिज्ञा तुम लोग सुन लो। मेरी भाग्यवती माताने किमिच्छक नामक व्रतसम्बन्धी उपोषण करना आरम्भ किया है। इस अवसरपर मेरे शरीरके द्वारा जिसे जो कुछ साध लेना हो, वह कहो। इस किमिच्छक व्रतकी कालमर्यादाके अन्दर जो कोई जो कुछ मुझे करनेको कहे, उसे करनेके लिये मैं प्रस्तुत हूं" ॥ १६-२० ॥ मार्कण्डेयने कहा,—राजा करन्धम पुत्रके मुखसे निकले हुए इस वाक्यको सुनते ही उसके समीप उपस्थित होकर कहने लगा,—हे तात! तुम्हारा पहिला याचक तो मैं ही हूं। मुझे मेरा अभीष्ट प्रदान करो। अवीक्षित बोला,—हे पिताजी! मैं आपको क्या

टीका:—पुराणोंमें चतुर्विध सृष्टिप्रकरण, खण्डसृष्टिप्रकरण,—जिसमें दैवीसृष्टि आदिका वर्णन हो,—वंशवर्णन,—जिसमें मृत्युलोकके ऋषिवंश और राजवंश, अर्थात् पुण्यशाली ब्राह्मण और क्षत्रिय वंशोंका वर्णन हो,—कालवर्णन अर्थात् मन्वन्तरवर्णन हो,—जिससे सृष्टिशृंखला और सभ्यताके विभागोंका हाल पाया जाय,—और ऋषि और राजाओंके वंशोंकी सन्तति अर्थात् प्रजातन्तुका वर्णन हो, ये ही पांचों, पुराणोंके लक्षण पाये जाते हैं। प्रत्येक पुराण, महापुराण, उपपुराण और औपपुराणमें इन पांचोंका थोड़ा बहुत समावेश होना अवश्यसम्भावी है। भेद इतना ही है कि, किसी पुराणमें इन पांचोंमेंसे किसीका वर्णन अधिक आता है और किसीका कम आता है। दूसरा भेद यह है कि, किसी किसी पुराणमें इन पांचोंमेंसे किसी विषयका वर्णन बहुत अधिक आता है और उसीकी उसमें प्रधानता रहती है; जैसी कि, इस पुराणमें मन्वन्तरोंके वर्णनकी प्रधानता है। तीसरा भेद पुराण और इतिहासका यह है कि, जिसमें मृत्युलोकका लौकिक इतिहास अधिक हो, उसको इतिहास कहते हैं और जिसमें दोनों सम-समान हों, उसे पुराण कहते हैं। उदाहरण रूपसे समझ सकते हैं कि, महाभारतमें कौरव-पाण्डवादिका लौकिक इतिहास अधिक होनेसे और रामायणमें श्रीरामचरितका इतिहास अधिक होनेसे दोनों ही इतिहास कहाये हैं। दूसरी ओर श्रीदेवीभागवत, श्रीविष्णुभागवत और श्रीमार्कण्डेयपुराण आदिमें सबकी समानता रहनेसे अथवा इनमें लौकिक इतिहासोंका आधिक्य न होनेसे ये सब पुराण कहाये हैं। चतुर्विध सृष्टिप्रकरण, जिसका वर्णन पहिले कई बार आ चुका है, यथाः—प्राकृत सृष्टि, ब्राह्मी सृष्टि, मानस सृष्टि और बैजी सृष्टि, इनका भी वर्णन मिलाजुला पुराणोंमें आता है। परन्तु किसी किसी पुराणमें इन चारोंमेंसे किसी किसीको विशेषता दी गयी है। दूसरी ओर सृष्टिप्रकरणके विषयमें किसी पुराणमें मन्वन्तर

प्रदान करूं ? आप आदेश कीजिये। आपका आदिष्ट कार्य चाहे साध्य हो, दुःसाध्य हो अथवा असाध्य हो, वह सम्पन्न करनेसे मैं मुंह नहीं मोड़ूंगा। राजाने कहा,—यदि तुम किमिच्छक देनेमें सत्यप्रतिज्ञ हुए हो, तो मेरी गोदमें खेलनेवाला मुझे पौत्र प्रदान करो। अवीक्षितने उत्तर दिया,—हे नरनाथ! मैं आपका अकेला पुत्र हूं; मुझे पुत्र नहीं है और मैंने ब्रह्मचर्यव्रतका अवलम्बन किया है। तब मैं किस प्रकार आपको पौत्रमुख दिखानेमें समर्थ हो सकूंगा? राजा बोला,—तुमने जो यह ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण किया है, यही तुम्हारे पापका कारण है। अतः इसे त्यागकर तुम अपने आपको मुक्त कर लो और मुझे भी पौत्रमुख दिखानेमें समर्थ हो जाओ। अवीक्षितने कहा,—यह काम तो बड़ा कठिन है। महाराज! मैंने वैराग्यके कारण ही स्त्री-सम्भोगका त्याग किया है। वह मेरा वैराग्य जिससे अक्षुण्ण बना रहे, ऐसे किसी दूसरे कार्यके करनेका मुझे आदेश दीजिये॥२१-२६॥ राजाने कहा,—अनेक सैनिकोंसे घिरे हुए वैरियोंको युद्धमें तुमने हराया है, यह मैंने स्वयं देखा है। फिर भी तुम वैराग्यका अवलम्बन करनेका निश्चय कर रहे हो,

---

आदिके विचारसे सृष्टिलीलाका विस्तृत वर्णन अधिक किया गया है। किसीमें दैवी सृष्टि अथवा मानुषी सृष्टिका विस्तार अधिक किया गया है। इसी प्रकार सर्ग और प्रतिसर्गके वर्णनमें पुराणोंमें कहीं कहीं मतभेदसा प्रतीत होता है और किसी किसीमें एक विषयका आधिक्य और अन्य विषयोंका स्वल्पत्व पाया जाता है। यही कारण है कि, सब पुराणोंका अध्ययन किये विना अथवा अधिक संख्यक पुराणोंका अध्ययन किये विना न पुराणोंका आध्यात्मिक रहस्य समझमें आता है और न उसके समझनेकी श्रृंखला ही ठीक ठीक बैठती है। वंशवर्णन और वंशानुचरितवर्णनके विषयमें भी बहुत कुछ समझने योग्य है। प्रायः इतिहासोंमें लौकिक वंशका वर्णन अधिक आता है और अन्य पुराणोंमें दैवीवंशका वर्णन अधिक आता है। दूसरी ओर त्रिकालदर्शी पूज्यपाद महर्षियोंकी योगदृष्टिके सम्मुख मठाकाश और महाकाशके समान स्थूल मृत्युलोक और सूक्ष्म दैवीलोक समान दृष्टिसे ही देखे जाते हैं। इन दोनोंके देखनेमें कोई बाधा नहीं होती। इस कारण वंशवर्णनमें दैवीसृष्टि और लौकिकसृष्टि, दैवीवंश और लौकिकवंश, दोनोंका मिला जुला वर्णन आता है। उदाहरणरूपसे समझ सकते हैं कि, सूर्यवंशमें सू आदिसे जो उत्पत्ति मानी गयी है, वह दैवीवर्णन और जो दशरथ आदिसे मानी गयी है, वह लौकिक वर्णन समझना उचित है। इस प्रकारसे दैवी और मानुषी वंशपरम्पराकी श्रृंखला मिला लेनेसे और मिलाकर समझनेसे पुराणपाठकोंको भ्रममें नहीं पड़ना पड़ेगा और इस रहस्यको अच्छी तरह समझनेसे ही इस मृत्युलोकके लौकिक ऐतिहासिक लोग विपथगामी नहीं हो सकेंगे। वंशवर्णन और वंशानुचरित-वर्णन, दोनों वर्णनोंके समझनेमें पुराणपाठकोंको यह स्थिररूपसे ध्यानमें रखने योग्य है कि, पुराण लिखते समय पूज्यपाद त्रिकालदर्शी महर्षियोंने अपनी योगयुक्त समाधिदृष्टिद्वारा अनेक मन्वन्तर अथवा अनेक कल्पोंके पूर्वकी गाथाएं प्राप्त की हैं। पुराण लिखते समय पुराण लिखनेकी अवस्थामें वे जब अपनी स्वरूप अवस्थासे व्युत्थान अवस्थाको प्राप्त होते थे, तो उस सविकल्प समाधिकी विचारानुगत अवस्थामें कल्पकल्पान्तरके उपयोगी वंशानुचरित गाथारूपसे उनके अन्तःकरण-पटलमें उपस्थित हुआ करते थे। अतः ये सब गाथाएं न कल्पना-प्रसूत हैं और न लौकिक रीतिसे प्राप्त की गयी हैं। मन्वन्तर और कल्प

यह बुद्धिमानी नहीं है। मेरे अधिक कहनेका प्रयोजन ही क्या है ? तुम अपनी माताके इच्छानुसार ब्रह्मचर्यका त्याग करो और हमें पौत्रमुख दिखाओ। मार्कण्डेय बोले,—राजपुत्रके वारम्वार अनुरोध करनेपर भी जब राजाने और कुछ नहीं चाहा, तब राजपुत्र बोला,—पितृदेव ! आपको किमिच्छक प्रदान करना स्वीकार कर मैं बड़े सङ्कटमें पड़ गया हूं। अब मुझे निर्लज्ज होकर फिरसे दारपरिग्रह करना होगा। स्त्रीके सामने पराजित होकर मेरी पीठ भूमिमें लग गयी थी; अतः अब स्त्री मेरे लिये पतिके समान हो रहेगी। हे पितः ! यह बड़ा ही दुष्कर कार्य है। परन्तु क्या किया जाय ? जब कि, मैं सत्यके पाशमें आवद्ध हो गया हूं, तब जो कुछ आप आज्ञा कर रहे हैं, उसीका पालन करूंगा। आप निश्चिन्त होकर राज्यशासन कीजिये ॥ २७-३० ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका अवीक्षितचरित सम्बन्धी
एक सौ पचीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय ।

—०:*:०—

मार्कण्डेय बोले,—एक बार राजपुत्र वनमें मृगया कर रहा था। उसने बहुतसे मृगों, सूअरों, शेरों आदि हिंस्र जीवोंको मार गिराया। इतनेमें किसी भयभीत कामिनीका अत्युच्च रोदन-स्वर उसे सुनाई दिया। स्त्रीका 'त्राहि त्राहि' शब्द सुनते ही जिस

आदिकी वर्ष संख्या कई बार कही गई है। वर्तमान वंशानुचरित अति दुर्ज्ञेय, धर्मसिद्धान्त और मधुर वर्णाश्रमशृङ्खलाके रहस्योंसे पूर्ण है। ऋषियोंकी दैवीशक्ति, क्षत्रिय राजाका क्षात्रपन, पिता और माताका स्नेहसुलभ वर्ताव, पुत्र राजकुमारकी क्षत्रियोचित वीरता आदि गुणावलीके साथही साथ इन्द्रियसंयम और ब्रह्मचर्य्यकी अलौकिकता, स्त्रीके सतीत्वधर्म और विशेषतः क्षत्रिय स्त्रीकी सतीत्व-मर्यादाका उज्वल दृष्टान्त, वर्णाश्रम मर्यादाका पालन, मातृ पितृ भक्ति, दैवी-जगत्पर अटल विश्वास आदि इस गाथामें प्रकट हुआ है। राजकुमारका अलौकिक ब्रह्मचर्य्य भी इस गाथाका महत्वप्रतिपादक है। पितामह भीष्म आदिका ब्रह्मचर्य्य सकारण था, परन्तु राजकुमारका ब्रह्मचर्य्य व्रतमूलक था। इस कारण इसमें विशेष स्वारस्य है। इस गाथामें प्राचीन राजकुलोंका, राजा-रानियोंका और राजकुमारोंके परस्पर मर्यादायुक्त सम्बन्धका भी अच्छा दिग्दर्शन है। राजपुरोहितोंका धर्मसम्बन्ध और व्रतसम्बन्धमें कैसा अधिकार होता था, इसका भी दिग्दर्शन है। दूसरी ओर गृहस्थ अपुत्र होनेपर गृहस्थाश्रममें रहते हुए ब्रह्मचर्य सदाचार नहीं है, वह एक प्रकारका पाप है। क्योंकि गृहस्थके लिये वर्णाश्रमशृंखला रखना और पितरोंके संवर्द्धनका कार्यक्षेत्र बना रखना ही पुण्यकार्य है। इसका यहां दिग्दर्शन है। ब्रह्मचर्यव्रत सबसे प्रधान विषय होनेपर भी लेखका विषय नहीं है। इसका दिग्दर्शन भी इस गाथामें है ॥ १-३० ॥

ओरसे शब्द आ रहा था, उसी ओर 'डरो मत, डरो मत' कहते हुए राजपुत्रने अपना घोड़ा दौड़ाया। वहां उसने क्या देखा कि, दनुके पुत्र दृढ़केशने निर्जन वनमें विशालराजकी उसी मानिनी नामक कन्याको पकड़ लिया है और वह यह कहकर विलाप कर रही है कि, मैं महाराज करन्धमके पुत्र धीमान् पृथ्वीश्वर अवीक्षितकी भार्या हूँ, और इस वनमें यह दुराचारी दानव मेरा हरण कर रहा है। जिनके सामने समस्त महीपाल और गुह्यक, गन्धर्व आदि भी नहीं ठहर सकते, उनकी भार्या होती हुई मैं हरी जा रही हूँ। जिनका क्रोध मृत्युकी तरह और पराक्रम इन्द्रके समान है, मैं उन्हीं करन्धमकुमारकी पत्नी हूं और हरी जा रही हूँ ॥ १-७ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—धनुर्धर राजकुमारने ये वचन सुने, तब वह विचार करने लगा कि, इस अरण्यमें यह मेरी भार्या कैसी? मैं समझता हूं कि, यह सब वनमें सञ्चार करनेवाले राक्षसोंकी माया है। जो हो, पासमें जानेसे ही सब वृत्तान्त विदित होगा। मार्कण्डेय कहने लगे,—तब राजपुत्रने तुरन्त हीं आगे बढ़कर क्या देखा कि, घोर अरण्यमें सब अलङ्कारोंसे सजी हुई और अत्यन्त सुन्दरी एक कन्याको हाथमें लट्ठ लिया हुआ दानव दृढ़केश पकड़कर खींच रहा है तथा वह 'त्राहि त्राहि' पुकारती हुई रोदन कर रही है। उस कन्यासे राजपुत्रने कहा,—भय न करो। फिर दानवसे कहा,—अरे, तेरा काल तेरे सिरपर नाच रहा है। देख, जिन महाराज करन्धमके प्रतापसे पृथ्वीके समस्त महीपाल अवनत हो रहे हैं, उनके शासनकालमें कौन दुष्ट व्यक्ति जीवित रह सकता है? प्रचण्ड धनुर्धारी राजपुत्रको आते देख, वह कृशाङ्गी राजकन्या उससे बारम्बार कहने लगी कि, मेरी रक्षा कीजिये। देखिये, यह मुझे हरण कर रहा है। मैं महाराज करन्धमकी पुत्र-बधू और राजकुमार अवीक्षितकी भार्या हूं। फिर भी सनाथा होती हुई अनाथिनीकी तरह इस वनमें इस दुष्टके द्वारा हरी जा रही हूं ॥ ८-१४ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—उसके वचन सुनकर राजपुत्र सोचने लगा कि, यह कन्या मेरी भार्या और मेरे पिताकी पुत्रवधू कैसी हुई? जो हो, पहिले इस कन्याको इस दुष्टसे छुड़ा लेना चाहिये; फिर सभी बातें खुल जायंगी। पीड़ित लोगोंकी रक्षा करनेके लिये ही क्षत्रियगण शस्त्र धारण करते हैं। अनन्तर महावीर राजकुमारने क्रुद्ध होकर उस दुर्दान्त दानवसे कहा,—यदि तुझे जीवनकी आकांक्षा हो, तो इसे तुरन्त छोड़कर यहांसे भाग जा; नहीं, तेरी मृत्यु अवश्य हो जायगी। राजपुत्रका बचन सुनकर दानवने कन्याको तो छोड़ दिया, किन्तु वह डण्डा लेकर राजपुत्रपर झपटा। राजपुत्रने भी उसे बाणोंसे घेर दिया। राजपुत्रके बाणोंको बचाकर दानवने बड़े अहङ्कारके साथ उसपर सैकड़ों कीलोंसे जड़े हुए डण्डे बरसाना आरम्भ किया। राजपुत्रने उन डण्डोंको बीचमें ही बाणोंसे काट डाला। फिर

दानवने पासका ही एक पेड़ उखाड़ लिया और वह बाणोंकी वर्षा करनेवाले राजपुत्रकी ओर फेंका। राजपुत्रने उसे भी अपने धनुषसे भाले फेंककर तिल-तिलके बराबर टुकड़े टुकड़े कर डाला ॥ १५-२० ॥ तब दानव राजपुत्र पर बड़ी बड़ी शिलाएँ बरसाने लगा। राजपुत्रने उन्हें भी शरकौशलसे खण्ड-विखण्ड कर दिया। इस प्रकार दानवने जिन जिन आयुधोंका प्रहार करना चाहा, राजपुत्रने उन सबको अपने बाणोंसे व्यर्थ कर दिया। दानवके दण्ड और सब अस्त्र-शस्त्र विफल हो जानेपर वह अतिक्रुद्ध होकर घूंसा जमानेके लिये राजपुत्रकी ओर दौड़ा। वह पासमें पहुँचने भी नहीं पाया था कि, करन्धम-कुमारने वेतसपत्र बाणके द्वारा उसका सिर काटकर भूमि पर गिरा दिया। दुराचारी दानवका इस प्रकार अन्त हुआ देखकर देवगण राजपुत्रको साधुवाद सुनाने लगे और बोले कि, वर मांगो। देवताओंके इस प्रकार आदेश करने पर राजकुमारने पिताका प्रिय-साधनके उद्देश्यसे महावीर पुत्र मांग लिया। देवताओंने कहा,—हे निष्पाप! तुमने जिसका स्वीकार नहीं किया, उसी कन्याके गर्भसे तुम्हें महावली चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न होगा ॥ २१-२८ ॥ राजपुत्रने कहा,—मैं पिताके निकट सत्यके पाशमें आवद्ध होनेके कारण ही पुत्रकी इच्छा करता हूं। नहीं, मैंने तो युद्धस्थलमें राजाओंके द्वारा पराजित होकर दारपरिग्रहकी इच्छा ही त्याग दी थी। मैंने जब विशालराजकी कन्याका परित्याग किया, तब उसने भी मेरे अतिरिक्त अन्य किसी पुरुषसे शरीरसम्बन्ध न करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया है। अब मैं विशालराजकी उस कन्याको छोड़कर कैसे नृशंसकी तरह किसी अन्य स्त्रीका पाणिग्रहण करूँ? देवगण बोले,—तुम सर्वदा जिसकी प्रशंसा किया करते हो, वही यह विशालराज-तनया तुम्हारी भार्या है। यह तुम्हारे लिये ही तपस्या कर रही है। इसीके गर्भसे तुम्हें सप्तद्वीपोंका शासन करनेवाला, सहस्रों यज्ञोंका करनेवाला, चक्रवर्ती वीर पुत्र उत्पन्न होगा। मार्कण्डेयने कहा,—हे द्विज! करन्धम-पुत्रको इस प्रकार आश्वासन देकर देवगण अन्तर्हित हो गये। फिर राजपुत्रने अपनी भावी पत्नीसे पूछा कि, हे भीरु! यह सब घटना कैसे हुई? कहो ॥ २९-३४ ॥ कन्याने यों घटनावाली सुनाना आरम्भ किया,—जब आप मेरा अस्वीकार कर चले गये, तब मैं अत्यन्त दुःखित होकर कुटुम्बियोंको छोड़कर इस वनमें चली आयी। यहां आकर तपस्या करनेपर कुछ दिनोंमें मैं बहुत क्षीण हो गयी और एक दिन प्राण त्याग करनेको उद्यत हुई। उसी समय यहां एक देवदूत आ गया और उसने मुझे प्राणत्याग करनेसे रोका। उसने कहा,—तुम्हें एक महाबलवान् चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न होगा। वह पुत्र असुरोंका विनाश और देवताओंका प्रेम सम्पादन करेगा। अतः देवोंकी आज्ञा है कि, तुम प्राणत्याग न करो। इस प्रकार रोकी जानेपर आपके मिलनकी अभिलाषासे देह

त्याग न कर सकी। परसोंकी बात है। मैं श्रीगङ्गाजीकी दहमें स्नान करनेके लिये उतरी थी। उस समय कोई वृद्ध नाग मुझे खींचकर पातालमें ले गया ॥ ३५-३६ ॥ वहाँ सहस्रों नाग, नागपत्नियां और नागकुमार मेरे आगे खड़े होकर कोई तो मेरी स्तुति और कोई पूजा करने लगे। फिर नागों और नागपत्नियोंने मुझसे सविनय प्रार्थना की,—आप हम सब पर अनुग्रह करें और यह अभिवचन दें कि, यदि हम लोग आपके पुत्रका कुछ अपराध करें और वह हमें विनष्ट करनेका उद्योग करे, तो उस समय आप उसे उस उद्योगसे रोक दें। मेरे 'यही होगा' कहने पर उन वायुभक्षक नागोंने पातालके दिव्य आभूषणों और मनोरम गन्ध, पुष्प, वस्त्र आदिसे मेरा सत्कार कर मुझे फिर पृथ्वी-पर पहुंचा दिया। यहाँ आकर मैंने क्या देखा कि, मैं फिर पहिलेकी तरह कान्तिमती और रूपवती हो गयी हूं। इस प्रकार सब अलङ्कारोंसे भूषित और रूपसे सम्पन्न देख-कर दुर्मति दृढ़केशने हरणकी इच्छासे मुझे पकड़ लिया। हे राजपुत्र! मैंने आपके ही बाहुबलसे इस समय छुटकारा पाया है, अतः हे महाबाहो! अनुग्रह करके मेरा स्वीकार कीजिये। मैं सचमुच कहती हूं कि, समस्त भूमण्डलमें आप जैसा गुणशाली दूसरा कोई राजपुत्र नहीं है ॥ ४०-४७ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका अवीक्षितचरित सम्बन्धी
एक सौ छब्बीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ सत्ताईसवां अध्याय।

मार्कण्डेयने कहा,—राजकुमारीकी ये सब बातें सुनकर राजपुत्रको अपनी उस प्रतिज्ञाका स्मरण हो आया, जो माताके किमिच्छक व्रत ग्रहण करनेके अवसरपर महा-राज करन्धमके सामने उसने की थी। उसपर राजाने जो उत्तर दिया था, उसका भी उसे स्मरण हुआ। इसीसे भोगकी अनिच्छा दिखाते हुए उसने नृपतिनन्दिनीसे प्रेम-

---

टीकाः—यह वंशानुक्रमवर्णनकी गाथा मृत्युलोकके किसी कल्पकल्पान्तरकी है। इसमें जो देवताओंका प्रकट होना, दैवी सहायता पहुंचाना, अन्यलोकसे मनुष्यलोकका सम्बन्ध होना आदि वर्त्तमान समयके अनुसार अलौकिक और असम्भव बात प्रतीत होती है। ऐसी शङ्काओंका समाधान यह है कि, प्रथम तो एक युगसे दूसरे युगकी शक्तिमें बड़ा अन्तर हो जाता है और फिर एक मन्वन्तरसे दूसरे मन्वन्तरमें तो जीवोंकी शक्ति और अधिकारमें बड़ा अन्तर होना सम्भव है। कल्पकल्पान्तरकी तो बात ही क्या है। इस कारण इस मधुर गाथाकी अलौकिकतापर सन्देह करना उचित नहीं है ॥ ४०-४७ ॥

पूर्वक कहा,—हे कृशाङ्गि! मैंने शत्रुओंसे पराजित होनेके कारण तुम्हारा परित्याग किया था और शत्रुका नाश करके ही तुम्हारे सम्मुख उपस्थित हो रहा हूं। अब तुम ही कहो कि, इस समय मेरा कर्त्तव्य क्या है? कन्याने उत्तर दिया,—इस रमणीय काननमें आप मेरा पाणिग्रहण करें। ऐसा होनेसे सकाम कामिनीका सकाम पुरुषके साथ सङ्गम गुण-पूर्ण अर्थात् सुख-शान्तिकारक ही होगा। राजपुत्र बोला,—ठीक है, ऐसा ही हो। तुम्हारा भगवान् मङ्गल करें। दैव ही इस घटनाका कारण है। नहीं तो भिन्न-भिन्न स्थानोंसे आकर हम आज यहाँ कैसे एकत्रित होते? मार्कण्डेयने कहा,—हे महामुने! इसी समय तुनय नामक गन्धर्व बहुतसे गन्धर्वों और अप्सराओंको साथमें लेकर वहाँ उपस्थित हो गया॥ १-६॥ गन्धर्वने कहा,—हे राजकुमार! यह मानिनी मेरी ही कन्या है। इसका नाम है, भामिनी। अगस्ति मुनिके शापसे यह विशालराजकी कन्या हुई थी। एकवार बाल्यावस्थामें इसने खेलते हुए महर्षि अगस्तिको क्रुद्ध कर दिया था। तब ऋषिने इसे अभिशाप दिया था कि, तू मानुषी होगी। फिर हम लोगोंने मुनिसे यह प्रार्थना की कि, हे विप्रर्षे! यह बालिका है। इसने बालचापल्यके कारण ही आपका अपराध किया है। अतः इसके अपराधकी उपेक्षा कर आप इसपर प्रसन्न हों। अगस्त्य हमारी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर बोले,—इसे बालिका जानकर ही मैंने सामान्य अभिशाप दिया है, वह अन्यथा हो नहीं सकता। मेरी इस सुन्दर भौंहोंवाली कल्याणी कन्याने इस प्रकार अगस्त्यके अभिशापसे विशालराजके घर जन्म ग्रहण किया है। इसी कारण हम यहाँ आये हैं। वास्तवमें यह मेरी और इस समय विशालराजकी कन्या है। इसका आप पाणिग्रहण करें। इसीके गर्भसे आपको चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न होगा॥ ७-१२॥ मार्कण्डेयने कहा,—गन्धर्वकी बातें सुनकर राजपुत्रने "ठीक है" कहकर स्वीकार कर लिया और प्रसन्नतासे उस राजपुत्रीका पाणिग्रहण किया। उस समय गन्धर्वोंके पुरोहित तुम्बरुने यथाविधि होमकार्य सम्पन्न किया। देव-गन्धर्वगण गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। मेघोंने पुष्पवृष्टि की और देवदुन्दुभि बजने लगी। हे मुने! फिर समग्र पृथ्वीमण्डलके पालनकर्त्ताकी जनयित्री उस कुमारीके साथ राजपुत्रका विवाह हो जानेपर उस शुभ अवसर पर आये हुए समस्त गन्धर्व और उक्त वर-वधू महात्मा तुनयके साथ गन्धर्वलोकमें चले गये। तब नृपतनय अवीक्षित भामिनीको पाकर जिस प्रकार आनन्दित हुआ, उसी प्रकार भोगसम्पत्शालिनी भामिनी भी अवीक्षितको पाकर परितुष्ट हुई। तन्वी भामिनी और महानुभाव अवीक्षित दोनों दिन रात कभी नगरके उपवनमें, कभी पर्वतोंके शिखरपोंर, कभी हंस-सारस-शोभित नदियोंके पुलिनोंमें, कभी भवनोंमें, कभी मनोरम प्रासादोंमें और कभी विभिन्न विहार-प्रदेशोंमें रमण और क्रीड़ा करने

लगे ॥ १३-२० ॥ उन्हें मुनियों, गन्धर्वों और किन्नरोंने उत्तम उत्तम खाद्य, पेय, वस्त्र, माल्य, अपटन आदि उपहार प्रदान किये । इस प्रकार उस दुर्लभ गन्धर्वलोकमें भामिनी-के साथ राजकुमारके हास-परिहास, विहार आदि करते हुए समय पाकर कल्याणी भामिनीके एक पुत्र उत्पन्न हुआ । हे मानवश्रेष्ठ ! महावीर्यशाली उस पुत्रके जन्मग्रहण करनेपर उसके द्वारा भावी प्रयोजनकी सिद्धि होगी, इस आशासे गन्धर्वोंने महोत्सव मनाया । उनमेंसे कोई गाने लगे और कोई मृदङ्ग पटह (चौघड़ा), सहनाई, बाँसरी, बीन आदि बाजे बजाने लगे । अप्सराएँ नाचने लगीं और समस्त मेघ फूल बरसाते हुए मृदु-मन्द शब्दोंसे गर्जना करने लगे । हे मुने ! इधर यह आनन्दमङ्गल हो रहा था कि, महात्मा तुनयके स्मरण करते ही तुम्बरु वहाँ उपस्थित हुए और उन्होंने बालकका जातकर्म संस्कार उत्तम रीतिसे सम्पन्न किया है । हे द्विजोत्तम ! क्रमशः समग्र देवगण, निष्पाप देवर्षिगण, पातालसे शेष, वासुकी, तक्षक प्रभृति पन्नगराजगण, समस्त वायु दल तथा देवों, दानवों, यक्षों और गुह्यकोंमेंसे प्रधान प्रधान व्यक्ति वहाँ आकर उत्सवमें सम्मिलित हो गये ॥ २१-२८ ॥ उस प्रसङ्गमें उपस्थित सब ऋषियों, देवों, दानवों, पन्नगों, मुनियोंसे गन्धर्वोंका वह महानगर व्याप्त हो गया । जातकर्मादि कार्य समाप्त होनेपर तुम्बरुने स्तुतिपूर्वक बालकका इस प्रकार स्वस्तिवाचन (पुण्याहवाचन) करना प्रारम्भ किया,--हे वीर ! तुम महाबली, महावीर्यशाली, महाबाहु और सार्वभौम होकर दीर्घकाल तक समग्र पृथिवीका आधिपत्य करोगे । ये समस्त इन्द्रादि लोकपाल और ऋषिगण तुम्हारा मङ्गल करें और तुम्हें ऐसा वीर्य प्रदान करें, जिससे तुम शत्रुओंका विनाश कर सको । पूर्व दिशामें प्रवाहित होनेवाला धूलिरहित मरुत् (वायु) तुम्हारा मङ्गल करे । अक्षीण और विमल दक्षिण-मरुत् तुम्हारी विषमता (मनोमालिन्य) दूर करे । पश्चिम-मरुत् तुम्हें महावीर्य और उत्तर-मरुत् उत्कृष्ट बल प्रदान करे । इस प्रकार स्वस्त्ययन कार्यके समाप्त होनेपर आकाशवाणी हुई कि, गुरुजीने जब कि, बार-बार 'मरुत् मरुत्' शब्दका उच्चारण किया है, तब मरुत्त नामसे ही यह बालक भूमण्डलमें विख्यात् होगा। समस्त महीपाल इसके आज्ञाधीन रहेंगे, सब राजाओंका यह शिरोमणि होगा और महा-वीर्यशाली तथा चक्रवर्ती होकर अनेक भूपालोंको अधीन करता हुआ सप्तद्वीपवती इस पृथ्वीका उपभोग करेगा । यह बालक पृथ्वीश्वरों और बड़े बड़े यज्ञ करनेवालोंमें श्रेष्ठ होगा तथा सब राजाओंकी अपेक्षा शूरता-वीरतामें भी अलौकिक कीर्ति प्राप्त करेगा । मार्कण्डेय बोले,—उक्त देववाणी सुनकर वहाँ उपस्थित हुए सब विप्र, गन्धर्व और बालकके माता पिता बहुत ही प्रसन्न हुए ॥ २९-३९ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका मरुत्तजन्मकथन नामक
एक सौ सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

एक सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय।

—०:※:०—

मार्कण्डेयने कहा,—हे विप्र! तदुपरान्त राजपुत्र अपने नवजात प्रियतम पुत्र और पत्नीको साथ लेकर पिताकी राजधानीमें लौट आया। उसे विदा करते समय राजधानी तक गन्धर्वगण पैदल ही पहुंचाने आये थे। पिताके पास पहुंचकर राजपुत्रने उन्हें भक्तिपूर्वक प्रथम प्रणाम किया और फिर कृशाङ्गी राजकन्याने भी लज्जासे नीचा सिर कर प्रणाम किया। अनन्तर जब कि, महाराज करन्धम धर्मासनपर विराजमान हो रहे थे, सब सामन्त राजाओंके सामने राजपुत्र नवजात कुमारको उठा लाकर महाराजसे कहने लगा,—इससे पहिले मांके किमिच्छकव्रत ग्रहण करते समय आपके समीप मैंने जो प्रतिज्ञाकी थी, उसके अनुसार हे पिताजी! इस अपने पौत्रको गोदमें लेकर इसका मुख अवलोकन कीजिये। यह कहकर राजपुत्रने अपने कुमारको पिताकी गोदमें रख दिया और उनसे सारा वृत्तान्त विस्तृत रूपसे निवेदन किया॥ १–५॥ राजाकी आंखोंमें आनन्दाश्रु छलकने लगे। पौत्रको उसने छातीसे लगा लिया और "मैं सौभाग्यमान् हुआ हूँ" यह कहते हुए वह अपनी आप ही प्रशंसा करने लगा। फिर आनन्दोच्छ्वासके कारण अन्यान्य सब कार्योंको भुलाकर उसने आये हुए गन्धर्वोंको अर्घ आदिके द्वारा सम्मानित किया। हे महामुने! राजाको पौत्रका लाभ हुआ है, यह समाचार नगरमें फैलते ही जनताने यह कहते हुए कि, हमारी रक्षा करनेवाला पौत्र राजाको हुआ है, घर घर आनन्दोत्सव मनाया। उस आनन्दपूर्ण नगरके विशाल आंगनोंमें अनेक सुन्दरी विलासिनी स्त्रियां एकत्र होकर गाने, बजाने और नाचने लगीं॥ ६–६॥ राजाने प्रसन्न चित्तसे अनेक प्रमुख ब्राह्मणोंको बहुतसे रत्न, धन, वस्त्र, अलङ्कार और गायें दान कीं। क्रमशः वह बालक शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी तरह बढ़ता हुआ माता-पिताको आनन्दित करने लगा तथा जनसाधारणका प्यारा हो गया। हे मुने! उस बालकने यथासमय आचार्योंके पास जाकर प्रथम वेद, फिर सब शास्त्र और अनन्तर धनुर्वेदकी शिक्षा ग्रहण की। फिर वह वीर बालक कष्टसहिष्णु होकर खड्ग, धनु तथा अन्यान्य शस्त्रोंके प्रयोगोंकी शिक्षाके लिये उद्योगी हुआ। हे विप्र! वह बड़ा ही विनयशील और गुरुकी प्रीति सम्पादन करनेवाला था। उसने भृगुवंशीय भार्गवसे समस्त अस्त्र ग्रहण कर लिये थे। थोड़े ही दिनोंमें वह सकल अस्त्रोंमें कुशल, धनुर्विद्यापारग, वेदोक्त कर्म करनेवाला और सब विद्याओंका पारदर्शी हो गया। उस समय उसके समान इन सब गुणोंमें कोई भी श्रेष्ठ नहीं था।

अपनी कन्याकी सब बातें और नातीकी योग्यताको जानकर विशालराजका हृदय भी प्रसन्नतासे फूल उठा ॥ १०-१६ ॥ पौत्रका मुख अवलोकन करनेसे सफलमनोरथ होकर समरविजयी, बल और बुद्धिसम्पन्न राजा करन्धमने अनेक यज्ञ किये, याचकोंको विपुल दान दिया और बहुतसे सत्कर्मोंका साधन किया। फिर समाधान पूर्वक धर्मानुसार पृथ्वी-पालन करनेपर कुछ कालके उपरान्त वन जानेकी इच्छासे उसने अपने पुत्र अवीक्षितसे कहा,—हे पुत्र! मैं वृद्ध हो गया हूं और अब मैं वनमें जाना चाहता हूं, इस कारण तुम इस राज्यको सम्हाल लो। मैं सब विषयोंमें कृतार्थ हो गया हूं; अब तुम्हें अभिषेक करना ही शेष रह गया है। अतः मेरे दिये और अच्छी तरह निष्पन्न किये हुए इस राज्यके भारको तुम उठा लो। राजपुत्र अवीक्षितने पिताके वचनको सुनकर तपस्या तथा वनगमनकी इच्छासे विनयके साथ कहा,—हे पितृदेव! मैं राज्यशासन करना नहीं चाहता; क्योंकि मेरी वह लज्जा छूटी नहीं है। अतः आप अन्य किसीको पृथ्वीपालनके लिये नियुक्त कीजिये। मेरे बद्ध होनेपर पिताके द्वारा छुटकारा हुआ था, अपने पराक्रमसे मैं बन्धनमुक्त नहीं हो सका। ऐसी अवस्थामें मेरा पौरुष ही क्या रहा? पुरुष ही पृथ्वीपालन किया करते हैं। मैं अपनी ही रक्षा करनेमें जब असमर्थ हूं, तब समस्त भूमण्डलकी रक्षा कैसे कर सकूंगा? अतः किसी अन्यको ही आप राज्यका भार सौंपिये। अच्छा परामर्श देनेवाला और धर्मशील होनेके कारण जिसे मोहके वशीभूत नहीं होना चाहिये, वह आत्मा (मैं) जब शत्रुओंसे पराजित होता है और आपके द्वारा बन्धनमुक्त किया जाता है, तब वह स्त्री जातिका समानधर्मा होनेसे महीपति कैसे हो सकता है? ॥ १७-२५ ॥ पिताने कहा,—हे वीर! पिता पुत्रसे और पुत्र पितासे स्वतन्त्र नहीं होता। अतः मेरे द्वारा बन्धनमुक्त होनेसे ही यह नहीं कहा जा सकता कि, तुम किसी परायेके द्वारा बन्धनमुक्त किये गये हो। पुत्र बोला,—हे नरेश्वर! मैं अपने हृदयके आवेगको रोक नहीं सकता। आपके द्वारा बन्धनमुक्त होनेके कारण मेरे हृदयमें निरतिशय लज्जा जाग उठी है। जो व्यक्ति पिताकी कमायी हुई सम्पत्तिका उपभोग करता है, विपत्तिके समय पिताके द्वारा उद्धार पाता है और पिताके नामसे ही परिचित होता है, वंशमें उसके जैसा पुत्रका जन्मग्रहण न करना ही उत्तम है। जो स्वयं धन कमाता है, स्वयं प्रसिद्धि पाता है और स्वयं दुःखको पार कर जाता है, उसकी जो गति होती है, वही मुझे अभीष्ट है ॥ २६-२८ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—हे मुने! पिताके वारम्वार अनुरोध करनेपर भी जब राजपुत्रने यही उत्तर दिया, तब विवश होकर राजा करन्धमने अपने पौत्र मरुत्तको राज्यासनपर अधिष्ठित किया। मरुत्त पिताकी अनुमतिसे पितामहके द्वारा राज्य प्राप्त कर सुहृद्गणको प्रसन्न

रखता हुआ उत्तम रीतिसे शासन कार्य करने लगा। राजा करन्धम भी अपनी पत्नी वीराको साथ लेकर काया, मन और वाणीको संयत कर तपस्याके लिये वनमें चला गया। नृपति करन्धमने वहां सहस्र वर्षोंतक घोर तपस्या की और जब उसका देह छूट गया, तब उसे इन्द्रलोककी प्राप्ति हुई। उसके देहान्तके पश्चात् पत्नी वीराने महर्षि भार्गवके आश्रममें आश्रय पाया। वहीं वह मुनिपत्नियोंके साथ रहकर उनकी सेवा-शुश्रुषा करने लगी। फिर उसने स्वर्गगत अपने महात्मा पतिदेवकी समलोकताप्राप्तिके निमित्त केवल फल-मूलही खाना आरंभ किया। तपकी कठोरतासे उसके केशोंकी जटायें बंध गयी थीं और शरीर मलिन हो गया था। पतिके पश्चात् दिव्य सौ वर्षोंतक वह तपाचरणमें ही निमग्न रही ॥ ३०-३५ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका अवीक्षितचरित नामक
एकसौ अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ उनतीसवाँ अध्याय।

—०:※:०—

क्रौष्टुकिने कहा,—भगवन्! आपने करन्धम और अवीक्षितका समग्र चरित विस्तारपूर्वक कह सुनाया है। अब अवीक्षितपुत्र महात्मा मरुत्त नृपतिका चरित्र सुनना चाहता हूं। सुना है कि, वह राजा बड़ा ही उद्यमी, चक्रवर्ती, महाभाग, शूर, सुन्दर, परम बुद्धिमान्, धर्मज्ञ, धर्माचरणशील और अच्छा पृथ्वीपालक था। मार्कण्डेय बोले,—पितासे अनुमोदित और पितामहसे प्राप्त राज्यको पाकर मरुत्त जिस प्रकार पिता पुत्रका प्रतिपालन करता है, उसी प्रकार समस्त प्रजाका धर्मानुसार पालन करने लगा। याज्ञिकों और पुरोहितोंके आदेशसे प्रजापालनमें मनोयोग करते हुए उस राजाने अपर्याप्त दक्षिणासे युक्त अनेक यज्ञ यथाविधि किये थे। सातों द्वीपोंमें उसका रथ अप्रतिहत-गतिसे दौड़ा करता था और आकाश, पाताल तथा जलमें कहीं भी उसकी गतिमें बाधा नहीं होती थी ॥ १-६ ॥ हे विप्र! उस स्वधर्मपरायण मरुत्तने विपुल धन पाकर बड़े बड़े यज्ञोंके द्वारा इन्द्रादि देवोंकी पूजा की थी। अन्यान्य सब वर्णोंके लोग अपने अपने कर्मोंमें तत्पर रहकर राजासे प्राप्त धनके द्वारा इष्टापूर्तादि कर्म किया करते थे। हे द्विजश्रेष्ठ! महात्मा मरुत्त पृथिवीका पालन करता हुआ स्वर्गवासी देवताओंके साथ स्पर्द्धा करने लगा। वह केवल सब राजाओंका ही अधीश्वर नहीं हुआ, किन्तु सैंकड़ों यज्ञ करके देवराज-इन्द्रसे भी बढ़ गया था। हे विप्र! अङ्गिराके पुत्र और बृहस्पतिके भ्राता तपोनिधि महात्मा संवर्त उसके ऋत्विज

थे। हे द्विज ! सुरगणसे सेवित मुञ्जवान् नामक एक सुवर्णमय पर्वत है। संवर्तने तपोबलसे उसके एक शिखरको गिरा दिया और उसे उठाकर वे राजाके लिये ले आये। राजाकी समस्त यज्ञभूमि और सब प्रासाद उन्होंने उस शिखरके द्वारा तपोबलसे सुवर्णमय बना डाले ॥ ७-१३ ॥ ऋषियोंने जब यह मरुत्त-चरित देखा, तब वे उसका इस प्रकार गुणगान करने लगे,—जिसके यज्ञका समस्त मण्डप तथा प्रासाद काञ्चनमय बनाया गया, जिसके यज्ञमें सुरेन्द्र सोमपान कर और ब्राह्मण दक्षिणा लाभ कर आनन्दसे उछलने लगे और इन्द्रादि प्रधान प्रधान देवता ब्राह्मणोंके परोसनेवाले बने, उस मरुत्तके समान पृथ्वीमें कोई भी यजनशील राजा आजतक नहीं हुआ। महीपति मरुत्तके अतिरिक्त अन्य किस राजाके रत्नजटित यज्ञमण्डपसे सोनेके ढेर ब्राह्मणोंने ढोये हैं ? इसके यज्ञमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों वर्णोंने जैसी सुवर्णमय प्रासादादि अनेक वस्तुएँ प्राप्त कीं, वैसी अब तक किसने प्रदान की थीं ? इसीके यज्ञमें जो सकल शिष्ट व्यक्ति विपुल धन पाकर पूर्णमनोरथ हुए, उन्होंने उसी धनसे विभिन्न देशोंमें जाकर नाना प्रकारके यज्ञ किये ॥१४-१९॥ हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार उसके उत्तम राज्यशासन और प्रजापालन करते हुए, एकबार किसी तपस्वीने आकर उससे कहा,—हे नरेश्वर ! कुछ तपस्वियोंको मदोन्मत्त उरगों (सर्पों) के विषसे अभिभूत हुए देखकर आपकी दादीने आपको यह कहला भेजा है कि,—तुम्हारे पितामहने भलीभाँति पृथ्वीका पालन कर स्वर्गमें गमन किया है और मैं तपस्या करती हुई ऊरु ऋषिके आश्रममें निवास करती हूँ। हे नृप ! तुम्हारे पितामह और अन्यान्य पूर्वपुरुषोंके राज्यकालमें जो विकलता कभी नहीं देखी गयी थी, वह तुम्हारे शासनकालमें देख रही हूं। तुम निश्चित ही प्रमत्त अथवा अजितेन्द्रिय होकर भोगमें आसक्त हो रहे हो और तुम्हारी चारान्धता* भी देखी जाती है। इसीसे उन (चारों)के दुष्ट-अदुष्ट होनेकी पहिचान करनेमें तुम असमर्थ जान पड़ते हो। डसनेवाले भुजङ्गोंने पातालसे आकर सात मुनिकुमारोंको डस लिया है और अपने पसीने, मूत्र तथा पुरीषसे सब जलाशयों और हवनीय द्रव्योंको दूषित कर डाला है। इसीसे मुनिगण 'अपराध हुआ है' यह जानकर नागोंको बलिप्रदान कर रहे हैं ॥ २०-२६ ॥ यों वे मुनिगण भुजङ्गोंको भस्मीभूत करनेमें समर्थ हैं; किन्तु यह (शासन करना) उनका विषय न होनेसे तुम ही इस कार्यके अधिकारी हो। हे नृप ! राजपूत लोग तभीतक भोग-जनित सुखका लाभ कर सकते हैं, जबतक उनके ऊपर अभिषेकके जलका सिञ्चन न किया गया हो। कौन

* राजाको 'चारचक्षु' कहते हैं। अर्थात् वह चारों (जासूसों) द्वारा राज्यभरको देखा करता है। जासूस ही उसकी आंखें हैं। वे बिगड़ जानेपर राजा 'चारान्ध' होकर राज्यकी भलाई-बुराई देख नहीं सकता।

मित्र है, कौन शत्रु है, शत्रुके बलका परिमाण क्या है, मैं कौन हूं, मन्त्री कौन हैं, अपने पक्षमें कौन कौन राजा हैं, कौन अपनेसे विरक्त है, किस शत्रुने अपना भेद जान लिया है, शत्रुओंमें कौन कैसा है, अपने नगर अथवा राज्यमें कौन सब प्रकारसे धर्म-कर्ममें निरत है और कौन मूर्ख बस रहा है, दण्ड देनेयोग्य कौन है और कौन पालन करनेयोग्य है, सन्धि-विग्रहके भयसे देश-कालकी विवेचना कर किसके प्रति दृष्टि रखनी चाहिये ? इन सब बातोंको जाननेके लिये राजा अपने जासूसोंसे अपरिचित अन्य जासूसोंकी नियुक्ति करता है। राजा अपने सचिव आदिपर भी चरोंको नियुक्त करता है। ऐसे कामोंमें सदा ही दत्तचित्तसे राजाको दिन रात लगे रहना चाहिये। भोगपरायण होना कदापि उसका कर्तव्य नहीं ॥ २७–३४ ॥ हे महीपते ! राजाओंका शरीरधारण भोगके निमित्त नहीं होता। पृथिवी तथा स्वधर्मपरिपालनके लिये महान् क्लेश सहना ही उसका सुख-भोग है। स्वधर्म और पृथ्वीका पालन करते हुए इस जन्ममें निरतिशय क्लेश सहनेसे ही राजाको परलोकमें स्वर्ग आदिका अक्षय्य सुख प्राप्त होता है। हे नरेश्वर ! इन बातोंका विचार कर भोगका परित्याग करते हुए पृथ्वीपालनके लिये, कष्ट सहनेके लिये, प्रस्तुत हो जाना ही तुम्हें उचित है। हे भूप ! तुम्हारे शासनकालमें ऋषियोंको यह जो भुजङ्गोंका सङ्कट प्राप्त हुआ है, चारान्धताके कारण उसे तुम जान नहीं पाये। अधिक क्या कहूं ? राजन् ! तुम दुष्टोंको दण्ड दो और शिष्टोंका पालन करो। इसीसे तुम्हें धर्मफलका षष्ठ भाग प्राप्त होगा। दुष्टजन औद्धत्यके कारण जो कुछ करें, उनको यदि तुम दंड न दो, तो अवश्य ही पापभागी होगे। इस समय तुम जो अपना कर्तव्य ठीक समझो, वही करो। हे वसुधाधिपति ! मैं तुम्हारी पितामही हूं, इसीसे ये सब बातें कह रही हूं। अब जैसा आचरण करनेकी तुम्हारी अभिरुचि हो, वही करो ॥ ३५–४१ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका मरुत्त-चरित नामक
एक सौ उनतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

टीकाः—राजकुमार-अवस्थामें यौवनसुलभ चञ्चलता और भोगसंस्कार रहनेके कारण राजकुलोद्भव व्यक्ति भोगपरायण हो सकता है, परन्तु जब राजा राजसिंहासनपर बैठ जाता है और राज्याभिषेक-यज्ञके द्वारा उसके शरीरमें देवताओंके पीठ स्थापित हो जाते हैं, उस समय वह दैवीराज्यका साक्षात् प्रतिनिधि बन जाता है। तब उसके लिये भोगपरायण होना पाप है। भोगोंको रोककर धर्मस्थापन और पुत्रके समान प्रजापालन करना ही उसका एकमात्र जीवनलक्ष्य हो जाना उचित है। आर्य जातिके राजधर्मका यह बीजमन्त्र है। इसी कारण राजाके लिये इस स्थलपर भोगसे बचनेकी आज्ञा इस गाथामें आर्य राजमहिलासे दिलायी गयी है ॥ २७–३४ ॥

एक सौ तीसवाँ अध्याय।

—०:*:०—

मार्कण्डेयने कहा,—तापससे दासीका सन्देश सुनकर राजा बड़ा ही लज्जित हुआ और लम्बी साँस भरकर बोला,—मैं यदि चारान्ध हूं, तो मुझे धिःकार है। फ़िर अपना धनुष सजाकर उसी पैर वह ऊरु ऋषिके आश्रममें गया और वहाँ उसने सिर नवाकर पितामही वीरा तथा अन्य तपस्वियोंको यथाविधि प्रणाम किया। उन लोगोंके द्वारा आशीर्वचन प्राप्त होनेपर राजाने उन साँपके काटे हुए सात तपस्वियोंको, जिनका समाचार तापससे मिला था, भूमिपर पड़े हुए देखकर, मुनियोंके समक्ष ही अपनी वारम्वार निन्दा करते हुए रोषसे कहा,—जब कि, सभी साँप मेरे पराक्रमकी अवमानना करके ब्राह्मणोंका द्वेष कर रहे हैं, तब मैं आज उनकी क्या दशा करूँगा, उसे समस्त जगत्के देव, दैत्य और मनुष्य अवलोकन करें ॥ १-५ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—यह कहकर भूपतिने पाताल और भूतलके यावतीय नागकुलोंके विनाशके उद्देश्यसे क्रोधपूर्वक संवर्तक नामक अस्त्र चलाया। हे विप्र! तब उस अस्त्रके तेजसे सारा नागलोक सहसा जलने लगा और उस अग्निकाण्डसे दग्ध होनेवाले भयभीत नागगण 'हा मातः! हा तात! हा वत्स!' कहते हुए आर्तनाद करने लगे। किसीकी पोंछ और किसीकी फणा जल गयी। कोई कोई तो वस्त्र-आभरणादिको वहीं फेंककर स्त्री-पुत्रोंके साथ पाताल छोड़कर मरुत्तमाता भामिनीके पास भागे। क्योंकि उन्हें उसने पहिले अभय दान किया था। भयातुर सब उरग उसके पास जाकर और उसे प्रणाम कर गद्गद होकर बोले,—पहिले पातालमें प्रणाम और पूजा कर आपसे जो हमने प्रार्थना की थी, उसका स्मरण कीजिये। हे वीरप्रसू! वही समय अब उपस्थित हो गया है। इस समय आप हमारी रक्षा कीजिये। हे राज्ञि! आप अपने पुत्रको रोककर हमें प्राणदान करिये। समस्त नागलोक इस समय अस्त्रकी आगसे दग्ध हुआ जा रहा है। हे यशस्विनी! आपका पुत्र हमें ऐसा जला रहा है कि, आपके अतिरिक्त हमारी रक्षा करनेमें कोई समर्थ नहीं है। अतः आप ही हमपर कृपा कीजिये ॥ ६-१४ ॥ मार्कण्डेय बोले,—साध्वी भामिनीने नागोंके वचनोंको सुनकर और अपने पहिले दिये हुए अभय-वचनको स्मरण कर पतिसे आदरके साथ इस प्रकार कहा,—पातालमें नागोंने प्रार्थना-पूर्वक मेरे पुत्रके सम्बन्धमें मुझसे जो कुछ कहा था, वह मैं पहिले ही निवेदन कर चुकी हूं। वे ही नाग इस समय अपने पुत्रके तेजसे दग्ध हो रहे हैं। इसीसे वे डरकर मेरे शरणापन्न हुए हैं। मैंने पहिले उन्हें अभयदान किया है। देखिये, जो मेरे शरणागत हैं, वे आपके भी हैं। क्योंकि मैं पातिव्रत्य-पूर्वक आपकी

शरणमें रही आयी हूं। अतः पुत्र मरुत्तको रोकिये। वह आपके वचन और मेरे अनुरोधसे अवश्य ही मान जायगा। अवीक्षितने कहा,—इन नागोंके महान् अपराधोंके कारण ही मरुत्त क्रुद्ध हो गया है, यह निश्चित है। अतः तुम्हारे पुत्रका क्रोध सहज ही शान्त हो जायगा, ऐसा प्रतीत नहीं होता ॥ १५-२० ॥ नागोंने कहा,—हे नृप! हम आपके शरणागत हैं, हमपर आप अनुग्रह कीजिये। क्षत्रिय लोग आर्त व्यक्तियोंकी रक्षाके लिये ही अस्त्रधारण किया करते हैं। मार्कण्डेय बोले,—महायशा अवीक्षितने शरणेच्छु उन नागोंकी प्रार्थना और पत्नीके अनुरोधको सुनकर कहा,—हे भद्रे! मैं शीघ्र ही तुम्हारे पुत्रके पास जाकर नागोंकी रक्षाके लिये उससे कहता हूं। शरणागतकी उपेक्षा करना कदापि उचित नहीं है। यदि तुम्हारे पुत्र मरुत्त राजाने मेरे कहनेसे अपने अस्त्रोंको नहीं रोका, तो मैं अपने अस्त्रोंसे उसके अस्त्रोंका निवारण करूँगा। मार्कण्डेयने कहा,—अनन्तर क्षत्रिय-श्रेष्ठ अवीक्षितने अपने धनुषको सजाकर पत्नीके साथ शीघ्रताके साथ भार्गवाश्रमकी ओर प्रस्थान किया ॥ २१-२५ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका मरुत्त-चरित सम्बन्धी
एक सौ तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ इकतीसवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयने कहा,—अवीक्षितने वहां जाकर क्या देखा कि, भामिनीपुत्र मरुत्त प्रचण्ड धनुष धारण कर उससे अति भीषण, उग्र और अग्निमय बाण बरसा रहा है। उस महावह्निकी ज्वालाओंसे दिगन्तर व्याप्त हो गया है, पृथ्वी धधक रही है और उस अग्निके पातालमें प्रवेश करनेसे वह पातालवासियोंको भी असह्य हो उठा है। उदारचेता अवीक्षितने राजाकी भौंहें चढ़ी हुई देखकर हँसते हुए शीघ्रतासे आगे बढ़कर कहा,—हे मरुत्त! क्रोध न करो और अपने अस्त्रको रोक लो। मरुत्तने पिताकी वाणी सुनकर और उनकी ओर बारंबार देखकर, धनुष ताने हुए ही माता पिताको प्रणाम कर सम्मानके साथ कहा,—हे पिताजी! इन पन्नगोंने मेरा बड़ा अपराध किया है। मेरे शासनकालमें मेरे बलकी अवज्ञा कर इन्होंने इस आश्रममें आकर सात मुनिकुमारोंको डसा है। हे अवनीश्वर! मेरे शासनकालमें इन दुर्वृत्तोंने इस आश्रमके ऋषियोंके हवि तथा जलाशयोंको दूषित कर दिया है। अतः हे पितः! इस सम्बन्धमें कुछ न बोलें और इन ब्रह्मघाती पन्नगोंके विनाशकार्यमें बाधा न डालें। अवीक्षितने कहा,—यदि इन्होंने ब्रह्महत्या की है,

तो इन्हें मृत्युके पश्चात् नरक प्राप्त होगा। तुम अस्त्र-प्रयोगको रोककर मेरे वचनकी रक्षा करो। मरुत्त बोला,—यदि मैं इनको दण्ड देनेका प्रयत्न न करूँ, तो मुझे नरकमें जाना होगा। अतः हे पिताजी! मुझे न रोकिये। अवीक्षितने कहा,—ये सब नाग मेरे शरणागत हुए हैं। अतः हे नृप! मेरी गौरव-रक्षाके लिये तुम क्रोधको संवरण कर अस्त्रको रोक लो॥ १-९॥ मरुत्त बोला,—मैं इन अपराधियोंको क्षमा नहीं करूँगा। मैं अपने धर्मका उल्लंघन कर आपके वचनकी कैसे रक्षा करूँ? दण्ड देने योग्य व्यक्तियोंको दण्ड देकर और शिष्टोंका प्रतिपालन कर भूपति अनेक पुण्यलोकोंको प्राप्त करते हैं और इसकी उपेक्षा करनेसे उन्हें नरक भोगना पड़ता है। मार्कण्डेयने कहा,—पिताके बारबार समझाने पर भी जब पुत्र मरुत्तने नहीं माना, तब अवीक्षितने फिर उससे कहा,—ये पन्नगगण भयभीत होकर मेरे शरणापन्न हुए हैं। मेरे बारबार कहनेपर भी जब तुम इनका संहार कर रहे हो, तब इसका प्रतीकार मैं अवश्य करूँगा। भूमण्डलमें अकेले तुम ही अस्त्रवेत्ता नहीं हो, मैंने भी अस्त्रसमूहोंका लाभ किया है। हे दुर्वृत्त! मेरे सामने तेरा पुरुषार्थ ही क्या है? ॥ १०-१६॥ मार्कण्डेयने कहा,—हे मुनिपुङ्गव! यह कहकर अवीक्षितने क्रोधसे लाल लाल आँखें कर धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और कालास्त्र निकालकर उसपर योजित किया; जो ज्वालाओंसे व्याप्त महान् शक्तिशाली और शत्रुविनाशक था। हे विप्र! मरुत्तके संवर्तकास्त्रसे तपा हुआ गिरि-सागरोंसे युक्त सारा जगत् उस कालास्त्रके निकलते ही क्षुब्ध हो उठा। उस कालास्त्रको धनुषसे जोड़ा हुआ देखकर मरुत्तने उच्च स्वरसे कहा,—मेरा संवर्तकास्त्र दुष्टोंकी शान्तिके लिये समुद्यत हुआ है, आपके वधके लिये नहीं; फिर सत्पथावलम्बी और सर्वदा आपकी आज्ञाका पालन करनेवाले पुत्रपर आप कालास्त्र क्यों छोड़ रहे हैं? हे महाभाग! प्रजापालन करना ही मेरा कर्तव्य है। आप मेरे विनाशके लिये ऐसे कठोर अस्त्रका क्यों प्रयोग करते हैं? ॥ १७-२२॥ अवीक्षितने कहा,—मैंने शरणागतकी रक्षा करनेका सङ्कल्प कर लिया है। तुम उस कार्यमें बाधा डाल रहे हो। तुम्हारे जीवित रहते हुए मैं शरणागतोंकी रक्षा नहीं कर सकता, अतः या तो तुम अपने अस्त्रबलसे मेरा विनाश करके दुष्ट उरगकुलोंका वध करो, या मैं ही अपने अस्त्रकी सहायतासे तुम्हारा विनाश कर उरगोंकी रक्षा करूँगा। शत्रुपक्षीय व्यक्तिके भी विपन्न होकर शरणमें आ जानेपर जो उसकी रक्षा नहीं करता, उस पुरुषके जीवनको धिःकार है। मैं क्षत्रिय हूं। भीत होकर ये मेरी शरणमें आये हुए हैं और तुम इनके अपकर्ता हो रहे हो। फिर तुम कैसे अवध्य हो सकते हो? मरुत्तने कहा,—मित्र, बान्धव, पिता अथवा गुरु, जो कोई प्रजापालनमें बाधा देंगे, राजाके लिये वे अवश्य ही वध्य हैं। अतः हे पिताजी! मैं आपपर प्रहार करूँगा, परन्तु इससे आप

रुष्ट न हों। स्वधर्मपालन करना ही मेरा उद्देश्य है। आपपर मेरा किसी प्रकारका क्रोध नहीं है। मार्कण्डेयने कहा,—उन दोनोंको परस्परको मारडालनेके लिये तुले हुए देखकर भार्गवादि मुनिगण शीघ्रतासे वहाँ आकर उपस्थित हुए और दोनोंके बीचमें खड़े

टीकाः—इस गाथामें नागलोकके जीवोंकी जो अलौकिकता देखी जाती है, इससे सन्दिग्ध होकर विचलित होनेकी आवश्यकता नहीं है। यह तो लौकिक इतिहाससे भी प्रतीत होता है कि, कितने ही प्रकारकी जीवश्रेणियां और कितने ही महान् शक्ति और रूपधारी जीवसमूह इस मृत्युलोकमें पहिले दिखायी देते थे, अब दिखायी नहीं देते। और भी सृष्टिमें कितना ही परिवर्तन लौकिक इतिहासके युगमें देखा जाता है। लाखों लाखों वर्षोंके मन्वन्तरों और करोड़ों वर्षोंके कल्पोंमें सर्पादि योनियोंके रूप, शक्ति और अधिकारके विषयमें इस प्रकार वैचित्र्यपूर्ण वर्णन होना असम्भव नहीं है। इस मधुर गाथामें पितामही, माता, पिता और राजधर्मपालक राजपुत्रके अपने अपने ढङ्गपर धर्ममर्यादा पालनका इतिहास बहुत ही चमत्कृतिजनक है। प्रत्येक मन्वन्तरमें एक ब्रह्माण्डकी सृष्टिकी सभ्यता और अनुशासनकी श्रृंखला बदल जाया करती है। दैवीजगत्‌के अधीन ही यह स्थूल मृत्युलोक सुरक्षित और चालित होता है। इसी कारण प्रत्येक मन्वन्तरमें मनुदेवता, इन्द्रदेवता आदिके परिवर्तनके साथ ही साथ ब्रह्माण्डकी दैवी श्रृंखला बदल जाती है और दैवी श्रृंखलाके बदलनेके साथ ही साथ सब श्रेणीके उन्नत जीवमात्रकी शक्ति और सभ्यतामें भी हेर फेर हुआ करता है। जैसे इस मृत्युलोकमें राजानुशासनके परिवर्तनके साथ ही साथ मनुष्य-सभ्यताकी दशा बदल जाती है। इसी कारण विज्ञजन कहते हैं कि, राजाही कालका कारण होता है। ठीक उसी प्रकार दैवीजगत्‌में जब मनु-पदपर एक मनुके ब्रह्मीभूत होनेपर दूसरे मनु आकर कालका अनुशासन करते हैं। तब समस्त ब्रह्माण्डकी सभ्यतामें हेर फेर हो जाता है। सब पुराणशास्त्रमें जो जो नाना प्रकारकी वैचित्र्यपूर्ण कथाएं पायी जाती हैं और उनके पढ़नेसे नाना प्रकारकी शंकाएँ हुआ करती हैं, ऐसी वर्णनवैचित्र्यताके जितने दार्शनिक कारण हों, उनमेंसे नाना मन्वन्तरोंकी विभिन्न विभिन्न श्रृंखला और शक्तिके अनुसार सृष्टि-वैचित्र्य और सभ्यतावैचित्र्य होना एक प्रधान कारण है। मार्कण्डेयपुराणमें मन्वन्तरोंके विचारसे विभिन्न विभिन्न दैवीश्रृंखलाका सूत्ररूपसे दिग्दर्शन कराया गया है। इस कारण इस पुराणशास्त्रमें वर्णाश्रम माननेवाली आर्यजातिकी दिव्य सभ्यताके मौलिक सिद्धान्तसमूह गाथारूपसे स्थान स्थानपर अच्छी तरह दिखाये गये हैं। धर्मस्व रूपसे धर्म सर्वव्यापक और सर्वजीवहितकारी है। सर्वजीवहित-कारी ही नहीं, किन्तु प्रत्येक ब्रह्माण्डसे लेकर प्रत्येक पिण्ड और यहां तक कि, प्रत्येक परमाणुमें धर्मकी धारिकाशक्ति सबका कल्याण कर रही है। रजोमूलक आकर्पणशक्ति और तमसूमूलक विकर्पणशक्तिके समन्वयसे धर्मकी उत्पत्तिके द्वारा ब्रह्माण्डके ग्रहोपग्रहसमूह अपनी मर्यादाकी रक्षा कर रहे हैं। उसी प्रकार इसी विज्ञानके अनुसार पाषाणमें पाषाणत्व, अग्निमें अग्नित्व आदिरूपसे छोटे बड़े सब जड़ पदार्थोंका धर्म ही धारण करके उनके अस्तित्वकी रक्षा कर रहा है। उदाहरण यह है कि, पत्थरकी धर्मशक्ति यदि नष्ट हो जायगी, तो रजोमूलक आकर्पणशक्तिके नाश और तमोमूलक विकर्पणशक्तिके प्रबल होनेसे पत्थरके अणुपुञ्ज बिखरकर मिट्टी हो जायंगे और पत्थरका अस्तित्व नष्ट हो जायगा। इसी सर्वव्यापक अकाट्य दैवी व्यवस्थाके अनुसार प्रत्येक जीवपिण्डमें प्रमाद और जड़तामूलक तमोगुण तथा क्रिया और भोगेच्छा-मूलक रजोगुणका जितना समन्वय होगा, उतना ही सत्वगुणका उदय होगा और उतना ही उन्नत जीवोंमें धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, न्याय, प्रम, सत्य आदि धर्मवृत्तियोंका अधिकार बढ़ता जायगा और

होकर मरुत्तसे बोले,—पितापर अस्त्र चलाना तुम्हें उचित नहीं है। फिर अवीक्षितसे बोले,—तुम्हारा भी अपने इस विख्यातकर्मा पुत्रको मार डालना योग्य नहीं है ॥२३-३०॥

वह पिण्ड धर्मजगत्‌में अग्रसर होता जायगा। यही मनुष्यका मनुष्यत्व है। आगे बढ़कर वही धर्मशक्ति पुरुषमें यज्ञधर्मरूपसे और नारीमें जपोधर्मरूपसे दोनोंके स्वतन्त्र स्वतन्त्र स्वधर्मका संरक्षण करके दोनोंको अपने अपने अधिकारके अनुसार अभ्युदय और निःश्रेयसकी ओर अग्रसर कराती रहती है। वही धर्मशक्ति पुनः आध्यात्मिक उन्नतिशील दैवीजगत्‌को सहायता देनेवाली, शुद्धाशुद्धिविवेक रखनेवाली और वर्णाश्रमश्रंखलापर चलनेवाली मृत्युलोककी आर्यजातिकी इस नाशमान लोकमें चिरजीवी बनाये रखती है। यही कारण है कि, वर्णाश्रमी आर्यजातिके आचार और विचार पृथ्वीभरकी अन्य सब जातियोंसे अपूर्व और विचित्र हैं और चिरजीवी तथा आध्यात्मिक उन्नतिशील होनेसे मनुष्यजातिकी सभ्यताके विस्तारकी जितनी ज्ञानराशि है, उस सब ज्ञानप्रणालीकी आदिगुरु और जगद्गुरु यही वर्णाश्रमधर्मी आर्यजाति है। इस विषयमें तो जगतके किसी विद्वानका मतभेद हो ही नहीं सकता। आर्यजातिके विशेष धर्म और उसकी विशेष सभ्यताके सब बड़े बड़े मौलिक सिद्धान्तोंका दिग्दर्शन इस पुराणशास्त्रमें कराया गया है। नारीजातिमें अतुलनीय त्याग और तपस्या-मूलक सतीत्वधर्मकी पूर्णता एक ओर और दूसरी ओर साधारणतः स्त्रियां आत्मज्ञानकी अधिकारिणी न होते हुए भी त्रिलोकपवित्रकारी सतीत्वधर्मके पालनके साथ ही साथ नारीजातिमें आत्मज्ञानकी पूर्णता कैसे हो सकती है, इसका भी दिग्दर्शन कराया गया है। आर्यजातिका यह एक विशेष धर्म है। वर्णमर्यादाकी पराकाष्ठा, वर्णविज्ञानके अतुलनीय उदाहरण और वर्णधर्म किस प्रकार आर्यजातिका प्राणरूप है, वह इस पुराणके अनेक स्थानोंमें भलीभांति दरशाया गया है। आश्रममर्यादा और विशेषतः सब आश्रमोंके आश्रयरूपी गृहस्थाश्रमकी विज्ञान-सहायक गाथाओं और अनुकरणीय जीवनियों तथा इतिहासोंने इस महापुराणको अति मधुर बनाया है। परलोकवाद, दैवीजगत्-सिद्धान्तवादका एक ओर और दूसरी ओर दैवीजगत्‌की श्रंखलाके रहस्योंका दिग्दर्शन कराकर और सप्तशतीगीतारूपी चण्डीका आविर्भाव कराकर यह महापुराण जगन्मान्य ही नहीं हुआ है, किन्तु सब जीवोंका परम सहायक बन गया है। वर्णाश्रम-धर्मका मूल रजोवीर्यकी शुद्धि है। रजोवीर्यकी शुद्धिके द्वारा ही अनादिकालसे यह आर्यजाति अपनी अनोखी सभ्यता और अपने अपरिवर्तनीय आध्यात्मिक लक्ष्यकी रक्षा करती हुई चिरजीविनी बनी है। इस रजोवीर्यशुद्धिविज्ञानकी भली प्रकारसे प्रतिष्ठा इस महापुराणमें देखी जाती है। शुद्धाशुद्धिविवेक और स्पर्शास्पर्शविवेक आर्यजातिकी विशेषत्वरक्षाका प्रधान अवलम्बन है। आचारशुद्धि और विचार-शुद्धि इस जातिकी जीवनरूप है। दूसरी ओर अध्यात्मलक्ष्य, अधिदैवलक्ष्य और अधिभूतलक्ष्य इन त्रिविध लक्ष्योंको सामने रखते हुए त्रिविधशुद्धिके लिये आचरण करना ही सनातनधर्मियोंका मुख्य उद्देश्य है। इन सब वर्णाश्रमके मौलिक सिद्धान्तोंका बीज इस महापुराणमें प्रतिष्ठित है। अनार्य-जीवन जैसे इन्द्रिय विषयभोग मूलक होता है, वैसे ही आर्यजातिका जीवन सर्वदा पारलौकिक लक्ष्य-मूलक और धर्म तथा मोक्षलक्ष्यमूलक होता है। दूसरी ओर प्रवृत्तिकी गतिको रोककर क्रमशः निवृत्ति और शान्तिकी ओर आर्यजातिका जीवनस्रोत प्रवाहित होता रहता है। इसका भलीभांति दिग्दर्शन इस पुराणमें किया गया है। तपःस्वाध्यायनिरत ब्राह्मणजातिकी तो बात ही क्या है, अतुलनीय ऐश्वर्य, शक्ति और प्रभुत्वके अधिकारी होनेपर भी आर्यजातिके राजा कैसे त्यागी, धार्मिक, प्रजावत्सल, अध्यात्मलक्ष्ययुक्त और दान, तप और परोपकारकी मूर्ति होते थे और राजैश्वर्यको तुच्छ

मरुत्त बोला,—हे द्विजों! मैं राजा हूं। दुष्टोंका दमन और शिष्टोंका पालन करना मेरा कर्तव्य है। ये भुजङ्गम दुष्ट हैं, इनको मैं मारता हूं तो क्या अपराध करता हूं? अवीक्षितने कहा,—हे विप्रों! शरणागतकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है। जो पुत्र मेरे शरणागतोंका नाश करता है, वह मेरे निकट अपराधी क्यों नहीं है? ऋषियोंने कहा,—हे राजन्! हे नरेश्वर! जिनके नेत्र भयसे चञ्चल हो रहे हैं, देखिये, वे भुजगगन क्या कह रहे हैं? ये कहते हैं कि, सांपके काटनेसे जो मुनिकुमार मर गये हैं, उन्हें हम फिर जिला देते हैं। अतः अब युद्ध करनेका कोई प्रयोजन ही नहीं रह जाता है। आप दोनों प्रसन्न हों। आप दोनों ही राजश्रेष्ठ, धर्मके रहस्यको जाननेवाले और प्रतिज्ञाको निवाहने वाले हैं। मार्कण्डेयने कहा,—इसी समय वीरा वहाँ उपस्थित होकर अवीक्षितसे बोली,—मेरे ही कहे अनुसार तुम्हारा पुत्र सर्पोंका विनाश करनेको उद्यत हुआ था। जब विप्रगण पुनः जीवित हो रहे हैं, तो सभी काम बन गया और तुम्हारे इन शरणागतोंके प्राण भी बच गये ॥ ३१-३८ ॥ भामिनीने कहा,—इन पातालनिवासी सर्पोंने पहिले मुझसे अभय वचन लेलिया था, इसीसे मैंने पतिदेवसे इनको बचानेके लिये अनुरोध किया था। इस समय मेरे स्वामी और पुत्र तथा आपके पुत्र और पौत्रका कार्य सुचारु रूपसे सम्पन्न हो गया है। मार्कण्डेय बोले,—अनन्तर भुजङ्गोंने दिव्य औषधोंको लाकर मृत ब्राह्मणोंका सारा विष खींच लिया और उन्हें पुनः जिला दिया। फिर महीपति मरुत्तने माता-पिताके चरणोंमें विनयपूर्वक प्रणाम किया और अवीक्षितने भी मरुत्तको प्रेमपूर्वक छातीसे लगाकर आशीर्वाद दिया कि,—तुम शत्रुओंके गर्वका दमन करनेवाले होगे, चिरकालतक पृथ्वीका पालन करोगे, पुत्र-पौत्रोंके साथ सुखसे समय व्यतीत करोगे और तुम्हारे शत्रुओंका विनाश हो जायगा। फिर मुनियों और वीरासे अनुज्ञा प्राप्त कर दोनों, राजा तथा भामिनी, रथपर चढ़कर अपने अपने नगरमें चले गये। काल पाकर धार्मिकोंमें श्रेष्ठ और महान् भाग्यवती पतिव्रता वीरा घोर तपश्चर्या करती हुई पतिदेवके सालोक्यको प्राप्त हुई। नृपति मरुत्त भी अरिषड्वर्गको पराजित कर धर्मानुसार पृथ्वीका पालन और नानाप्रकारके भोग-सुखोंका उपभोग करने लगा। विदर्भकन्या महाभागा प्रभावती, सुवीरसुता सौवीरी, मगधेश्वर केतुवीर्यकी कन्या सुकेशी, मद्रराज सिंधुवीर्यकी सुता केकयात्मजा केकयी, सिंधुराजकी

समझकर केवल धर्मपालनके लिये ही जीवित रहते थे, इसके ज्वलन्त उदाहरणोंकी अति ज्वलन्त गाथाओंसे यह पुराण परिपूर्ण है। इन सब विषयोंपर दृष्टि डालनेसे आर्यजातिकी प्राचीन और त्रिलोकपवित्रकारी सभ्यताका परिचय बुद्धिमान्मात्रको मिल सकेगा और वे यथासम्भव इन पुनीत चरित्रोंका अनुकरण करके कृतकृत्य हो सकेंगे।

पुत्री सैरन्ध्री और चेदिराजकी कुमारी वपुष्मती, ये सब सुन्दरी स्त्रियां मरुत्तकी पत्नियां थीं। हे द्विज! इन सब पत्नियोंसे भूपतिके अठारह पुत्र हुए, जिनमें नरिष्यन्त नामक पुत्र ज्येष्ठ और सर्वप्रधान था। महाराज महाबली मरुत्त ऐसा पराक्रमी था कि, सातों द्वीपोंमें उसका रथचक्र अप्रतिहत रहता था। बलविक्रमशाली, अमिततेजा उस राजर्षिके समान अन्य कोई राजा नहीं हुआ और न भविष्यत्में होगा ही। हे द्विजश्रेष्ठ! महात्मा मरुत्तके इस चरित्रको श्रवण करनेसे सब पापोंसे छुटकारा हो जाता है और देहान्तके पश्चात् श्रेष्ठ जन्म प्राप्त होता है॥ ३९–५१॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका मरुत्तचरित नामक
एक सौ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय।

—०:※:०—

क्रौष्टुकीने कहा,—भगवन्! आपने सम्पूर्ण मरुत्तचरित कह सुनाया है। अब उसकी सन्तानका वृत्तान्त विस्तृतरूपसे श्रवण करनेकी इच्छा है। हे महामुने! विशेषरूपसे उसके वंशके उन राजाओंका वृत्तान्त मैं आपसे सुनना चाहता हूं, जो राज्य करनेके योग्य और वीर्यशाली हुए थे। मार्कण्डेयने कहा,—मरुत्तके अठारह पुत्रोंमेंसे नरिष्यन्त सर्वज्येष्ठ और श्रेष्ठ था। क्षत्रियश्रेष्ठ मरुत्तने सात हज़ार पन्द्रह वर्षोंतक समग्र पृथ्वीका उपभोग किया था। उसने धर्मानुसार राज्यशासन और उत्तमोत्तम यज्ञानुष्ठान कर अन्तमें पुत्र नरिष्यन्तको राज्याभिषिक्त कर वनमें गमन किया था॥ १–५॥ हे विप्र! वनमें जाकर नरपति मरुत्तने एकाग्रचित्तसे दीर्घकालतक तपस्या की और फिर मृत्युलोक तथा स्वर्गलोकमें यशको फैलाकर स्वर्गारोहण किया। मरुत्तके स्वर्ग सिधार जानेपर उसका बुद्धिमान् पुत्र नरिष्यन्त अपने पिता तथा पूर्ववर्ती नरेशोंके आचरण और व्यवहारपर विचार करने लगा कि, इस वंशके सभी पूर्वपुरुष महात्मा नरेश अनेक यज्ञोंके अनुष्ठाता, प्रबल पराक्रमी, धनदाता, संग्राममें पीछा न देखनेवाले और धर्मानुसार पृथ्वी पालन करनेवाले हुए हैं। उन महात्माओंके चरित्रका अनुकरण करनेमें कौन समर्थ हो सकता है? हवन आदिके द्वारा उन्होंने कौनसा धर्म-कर्म सम्पन्न नहीं किया? उन्हींका अनुसरण करनेकी मेरी इच्छा है सही, परन्तु यह सहज बात नहीं है। तब मैं क्या करूँ? राजा यदि धर्मानुसार पृथ्वीपालन करे, तो इसमें विशेषता

क्या है ? यह उसका कोई विशिष्ट गुण नहीं है। क्योंकि नरेन्द्र यदि भलिभाँति प्रजा पालन न करे, तो वह पापभागी होकर नरकमें जाता है। धन रहते हुए महायज्ञोंका सम्पादन और विपुल दान करना राजाका कर्तव्य ही है। इसमें उसकी व्यक्तिगत विचित्रता क्या है ? यदि नरपति ऐसा न करे, तो प्रजाके लिये ईश्वरके अतिरिक्त दूसरी कौनसी गति रह जाती है ? राजा जब तक अपने धर्मपर अटल रहता है, तभी तक उसमें स्वाभाविकता, लज्जा, शत्रुके प्रति क्रोध और युद्धसे न भागनेके गुण विद्यमान रहते हैं। इन सब कार्योंको मेरे पूर्वपुरुष तथा पितृदेव मरुत्तने जिस प्रकार सम्पन्न किया, उस प्रकार दूसरा और कौन करनेमें समर्थ हो सकता है ? मेरे सभी पूर्वपुरुष श्रेष्ठ यज्ञोंके करनेवाले, दम गुणसे युक्त, संग्राममें निडर और बेजोड़ रणधुरन्धर हुए हैं। मैं ऐसा कौनसा कार्य करूँ, जो उन्होंने न किया हो ? मैं तो यही समझता हूँ कि, मैं कर्मके द्वारा निष्काम कर्मका अनुष्ठान करूँ। मेरे पूर्वजोंने अविरतरूपसे स्वयं ऐसे अनेक यज्ञ किये हैं, जैसे अन्य किसीने नहीं किये। वैसे ही महायज्ञ मैं निष्काम बुद्धिसे करूँगा ॥ ६-१६ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—यह सब सोच विचार कर नरेश्वरने विपुल धन लगाकर

टीका:—कर्मके द्वारा ही मनुष्य निष्काम हो सकता है। कर्मत्यागके द्वारा नहीं हो सकता। यह सिद्धान्त सब उपनिषदोंकी सारभूत श्रीमद्भगवद्गीतामें पूर्णावतार श्रीभगवान् कृष्णचन्द्रने पूर्णरूपसे सिद्ध कर दिया है। कर्ममीमांसादर्शनका यह सिद्धान्त है कि, प्रकृतिके स्पन्दनको कर्म कहते हैं। जहां द्वैत प्रपञ्च है, जहां सृष्टि है, वहां सब जगज्जननी ब्रह्मप्रकृतिका ही विलास है। अतः प्रकृतिराज्यसे अतीत सिवाय स्वस्वरूपके और कुछ हो ही नहीं सकता। जहांतक सृष्टि है, जहां तक द्वैत है, वह सब प्राकृतिक है। जहां प्रकृति है, वहां त्रिगुण हैं। क्योंकि त्रिगुण प्रकृतिका स्वरूप है। जहां त्रिगुण हैं, वहां त्रिगुणविलासजनित स्पन्दन होना अवश्यसम्भावी है। इसीसे क्रिया होना भी निश्चित है। अतः जड़ और चेतन सबमें नित्यरूपसे कर्मका होते रहना नित्य है। यही कारण है कि, मनुष्यमें उन्मेषण-निमेषण चलना-फिरना, श्वास-प्रश्वास आदि शारीरिक क्रियाएँ और नाना वैषयिक सदसत्-चिन्तारूपी मानसिक क्रियाओंका सदा होते रहना स्वाभाविक है। इस कारण चाहे स्त्री हो या पुरुष, चाहे ज्ञानी हो या अज्ञानी, चाहे मनुष्य हो या देवता, सबमें कर्मका होते रहना अवश्यसम्भावी है और उसका अभाव होना असम्भव है। दूसरी ओर बिना कर्मत्यागके न चिरशान्ति मिल सकती न मुक्ति हो सकती है। अतः एक ओर कर्मका न होना यह जैसा असम्भव है, वैसा ही कर्मत्यागसे मुक्तिका होना भी असम्भव है। अर्थात् जब कर्मका त्याग हो ही नहीं सकता, तब कर्मत्याग करके मुक्त होना कैसे सम्भव है ? इसी गहन, अति जटिल और अति चमत्कारपूर्ण शङ्काका श्रीमद्भगवद्गीताने भलीभांति समाधान किया है। वह सरल समाधान यह है कि, जैसा जिसका अधिकार, प्रकृति और प्रवृत्ति हो, साधक वैसा कर्म अवश्य करता रहा। परन्तु कर्तव्यबुद्धिसे करे और उसके फलकी इच्छा छोड़कर करे। तभी वह कर्म करना न करनेके बराबर हो जाता है। यह कर्मके द्वारा निष्कामकर्मका अनुष्ठान कहाता है। इस अति गहन विषयको इस प्रकारसे समझ सकते हैं कि, कर्म ही समष्टि और व्यष्टि सृष्टिका मूल है। कर्मपर ही सब कुछ निर्भर है। पिण्ड और ब्रह्माण्डका सृष्टिस्थितिलय कर्मके द्वारा ही

ऐसा एक महायज्ञ किया, जैसा पहिले कोई कर नहीं सका था। इस यज्ञमें उसने द्विजातिमात्रको जीविकानिर्वाहार्थ अमोघ धन और उससे भी सैंकड़ों गुना अधिक अन्न प्रदान किया। पृथ्वीके ब्राह्मणोंमेंसे प्रत्येकको उसने गाय, वस्त्र, अलङ्कार, धान्य, घर आदि प्रचुर वस्तुएँ दानमें दीं। इस यज्ञके समाप्त होनेपर राजाने फिर जब दूसरा यज्ञ करना चाहा, तो उसे यज्ञ करानेवाला कोई ब्राह्मण ही नहीं मिला। जिस जिस ब्राह्मणको उसने यज्ञके पौरोहित्यकार्यमें वरण करनेकी इच्छा की, वही कहने लगा कि, मैं अन्यके यज्ञमें दीक्षित हो चुका हूं, आप किसी दूसरे ब्राह्मणको वरण कीजिये। हे नरेश! आपने यज्ञके समय सङ्कल्प कर हमें इतना धन दिया है कि, अनेक यज्ञ करनेपर भी वह समाप्त नहीं हुआ है॥ १७-२२॥ मार्कण्डेय बोले,—निखिल पृथ्वीके अधीश्वर होते हुए भी जब उसे यज्ञके लिये कोई ऋत्विक् नहीं मिला, तब बहिर्वेदीमें दान करनेका उसने उपक्रम किया। फिर भी ब्राह्मणोंके घर धनसे परिपूर्ण होनेसे किसीने वह धन नहीं उठाया। द्विजोंको दान करनेमें प्रवृत्त राजा जब विफलप्रयास हुआ, तब अत्यन्त दुःखित होकर कहने लगा,—पृथ्वीके किसी स्थानमें कोई ब्राह्मण इस समय निर्धन नहीं

हुआ करता है। दूसरी और जैसे बीजसे वृक्ष और वृक्षसे पुनः बीज और पुनः वृक्ष होता हुआ सृष्टिका अनादि अनन्त कर्म प्रवाह बहता रहता है, वह कर्म न बन्द हो सकता है, न छूट सकता है; परंतु दार्शनिक दृष्टिसे देखनेपर यही सिद्ध होता है कि, कर्मका एक बार संस्काररूपसे बीज बनना और दूसरी बार वृक्षरूपसे भोग उत्पन्न करना, इन दो अवस्थाओंके उत्पन्न होनेका कारण वासनाजाल है। कर्म तो जड़राज्यरूपी पत्थर आदिमें होता रहता और चेतनराज्यरूपी मनुष्यादिमें भी नियमित होता रहता है। परन्तु पत्थरमें वासनाजाल न होनेसे उस कर्मका संस्कार उसमें पकड़ा नहीं जाता। मनुष्य-अन्तःकरणमें वासनाका जाल सदा बना रहता है; इस कारण वह सब शारीरिक मानसिक और बौद्धिक कर्मके बीजरूपी संस्कारको अपने चित्ताकाशमें वासनाजाल द्वारा पकड़ लेता है। वही वासनाजालसे पकड़ा हुआ संस्काररूपीबीज पुनः देश और काल ठीक ठीक मिल जानेसे वृक्षरूपी कर्म उत्पन्न कर देता है। इस प्रकारसे वासनाजालमें जकड़ा हुआ अन्तःकरण संस्कारसे कर्मकी उत्पत्ति और कर्मसे पुनः संस्कारकी उत्पत्ति करता हुआ कर्मकी धारामें पड़ा रहता है। परन्तु यदि वासनाके जालको काट डाला जाय, तो कर्मका संस्कारसंग्रह करना रुक जायगा और जब कर्मका संस्कार ही जीव-अन्तःकरणमें रुकने नहीं पावेगा, तो जीव स्वतः ही कर्मके बन्धनसे मुक्त हो जायगा। इस अति गहन विषयको समझनेके लिये और भी कुछ कहनेकी आवश्यकता है। अनादि-अनन्त आकाशके मीमांसाशास्त्रने तीन विभाग किये हैं। एक चित्ताकाश, दूसरा चिदाकाश और तीसरा महाकाश। मनुष्यके अन्तःकरणके आकाशको चित्ताकाश कहते हैं, ब्रह्माण्डके समष्टि अन्तःकरणके आकाशको चिदाकाश कहते हैं और अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंके अनादि-अनन्त आकाशको महाकाश कहते हैं। ये तीनों आकाश कर्मके संस्कारोंको जमा रखनेके लिये अलग अलग खलियान हैं। कर्म नष्ट नहीं होता। कर्मबीज किसी न किसी तरहसे इन तीनों आकाशोंमें सुरक्षित रहता है। इसीसे सृष्टिका अनादि और अनन्त प्रवाह निरन्तर बहता ही रहता है। केवल निष्कामकर्मयोग द्वारा वासनाजालको छिन्न करके आवागमनचक्रके आवर्तसे बचकर साधक कर्मके बन्धनसे बच सकता है। अब यह शंका हो सकती

है, यह सन्तोषका विषय है; किन्तु विना यज्ञके मेरा राजकोष विफल हो रहा है, यह महान् कष्टकी बात है। द्विजोंमें सभी लोग इस समय स्वयं याग करनेमें प्रवृत्त हुए हैं, इस कारण मेरा पौरोहित्य करनेको कोई प्रस्तुत नहीं होते और वे स्वयं प्रभूत दान दे रहे हैं, इस कारण कोई मेरे दिये दानका स्वीकार करनेको सम्मत नहीं होते ॥ २३–२७ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—फिर राजाने बड़े विनय और भक्तिसे वारम्वार प्रार्थना कर कुछ ब्राह्मणोंको ऋत्विक् कार्यके लिये जुटा लिया और उन्हींके द्वारा अपना महायज्ञ सम्पन्न किया। तब यह एक बड़े ही आश्चर्यकी बात हुई कि, राजाका यज्ञ आरम्भ होनेपर पृथ्वीके सभी द्विज अपने अपने यज्ञमें स्वयं यजमान हो रहे थे, इस कारण इस यज्ञमें कोई भी सदस्य नहीं बना। द्विजोंमें कोई तो स्वयं यजमान बने थे और कोई उनके याजक थे। नरपति नरिष्यन्तने जो यज्ञ किये थे और उनमें ब्राह्मणोंको जो धन दिया था, उसी धनसे पृथ्वीके द्विजगण विविध यज्ञोंके करनेमें प्रवृत्त हुए थे। हे मुने! महाराज नरिष्यन्त जब यज्ञ कर रहा था, तब पूर्वमें अठारह करोड़, पश्चिममें सात करोड़, दक्षिणमें चौदह करोड़ और उत्तरमें पचास करोड़से भी अधिक यज्ञ हो रहे थे। विशेषता यह

है कि, कर्म जब नष्ट नहीं होता और कर्मबीज जब किसी न किसी आकाशमें बना रहता है, तो मुक्तिका होना कैसे सम्भव है? इस श्रेणीकी शंकाका समाधान यह है कि, जब वासनाजाल ही संस्काररूपी कर्म-बीजको जमा करनेवाला और पकड़ रखनेवाला होता है, तो जीवन्मुक्त महापुरुष जब सांख्ययोग और कर्मयोग रूपी शस्त्रके द्वारा वासनाजालको छिन्न कर देता है, तब उस जीवकेन्द्रका चित्ताकाश उसके किये हुए कर्मबीजरूपी संस्कारोंको जमा करनेमें असमर्थ हो जाता है। तब उक्त जीवन्मुक्तका अन्तःकरण कर्मके बन्धनसे बच जाता है। दूसरी ओर प्रकृतिमाताका नियम भी भङ्ग नहीं होता। एक ओर जैसे वासनाजालके छिन्न हो जानेसे जीवन्मुक्तका अन्तःकरण योगयुक्त होकर बन्धनसे रहित हो जाता है, वैसे ही दूसरी ओर कर्मके करने पर भी निष्काम होकर कर्म करते हुए वह कर्मसे ही निष्कामकर्मी हो जाता है। उसको न पूर्व किया हुआ कर्म और न अब किया हुआ कर्म उसको बांध सकता है। क्योंकि उसके बांधनेका जाल जो वासना था, वह नहीं रहता। परन्तु प्रकृतिमाताका जो अकाट्य नियम है कि, बीजसे वृक्ष और वृक्षसे बीज हो, कर्मसे संस्कार और संस्कारसे कर्म हो और कर्मका प्रवाह तथा सृष्टिका प्रवाह सदा बना रहे, वह प्राकृतिक नियम भी भङ्ग नहीं होता है। जीवन्मुक्त महापुरुषके कर्म जब उसके अन्तःकरणमें बीज नहीं रख सकते और उसके चित्ताकाशको खाली कर देते हैं, तो वे सब बीज दूसरे खलिंयान रूपी चिदा-काशमें पहुंच जाते हैं और वहां रहकर पुनः अनुकूल देश काल प्राप्त करके अंकुरित होते रहते हैं। सृष्टिका और कर्मका नित्य प्रवाह बहता ही रहता है। केवल जिस जीवन्मुक्तके अन्तःकरणमें वासनाका जाल छिन्न हो जाय, वह संस्कार और कर्मके फन्देसे अपना बचाव करके भाग निकलता है। यही कर्मके राज्यसे जीवका छुटकारा कहाता है, यही अविद्याके बन्धनसे जीवका मुक्त होना कहाता है, यही आवागमनचक्रके फंसावसे जीवका बचना कहाता है यही मुक्तिका रहस्य है और यही कर्मके द्वारा निष्कामकर्माचरणका फल है ॥६–१६॥

टीकाः—कर्मयोगी चाहे ब्राह्मण हो, चाहे नृप, चाहे संन्यासी हो, चाहे गृहस्थ। चाहे उसकी स्वाभाविक मृत्यु हो चाहे अकालमृत्यु, वह जीवित अवस्थामें मुक्त है और शरीरान्तमें भी मुक्तिका अधिकारी है,

थी कि, ब्राह्मणोंके द्वारा उक्त सभी यज्ञ एक साथ ही सम्पादित हुए थे। हे विप्र! पुराकालमें विख्यात बली और पुरुषार्थी मरुत्तपुत्र राजा नरिष्यन्य इस प्रकार धर्मात्मा हुआ था ॥ २८-३४ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका नरिष्यन्तचरित-सम्बन्धी
एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय।

—०:*:०—

मार्कण्डेयने कहा,—नरिष्यन्तका पुत्र दम था। वह दुराचारी शत्रुओंका दमन किया करता था। उसमें इन्द्रके समान बल और मुनियोंके समान दया तथा शीलता थी। बभ्रुसुता इंद्रसेना, जो नरिष्यन्तसे ब्याही थी, उसीके गर्भसे दमने जन्म ग्रहण किया था। वह महायशा नौ वर्षतक माताके ही गर्भमें ही रहा। वह राजकुमार जब माताके गर्भमें था, तब उसकी माताको बहुत ही दमका अवलम्बन करना पड़ा था। वह नृपात्मज स्वयं अच्छा दमशील होगा, त्रिकालज्ञ राजपुरोहितोंने यह जानकर उस नरिष्यन्तपुत्रका नाम 'दम' ही रक्खा। राजपुत्र दमने नरराज वृषपर्वासे समस्त धनुर्वेदकी शिक्षा प्राप्त की थी। तपोवनमें निवास करनेवाले दैत्यश्रेष्ठ दुन्दुभिसे उसने भलीभाँति सीख लिया था कि, नाना प्रकारके अस्त्र कैसे छोड़े जाते और कैसे लौटा लिये जाते हैं। शक्ति मुनिसे वेद-वेदाङ्ग और आत्मज्ञान तथा आर्ष्टिषेणसे उसने योगका अभ्यास किया था। दशार्ण देशके राजा महाबली चारुकर्माकी कन्या सुमनाने, पिताके द्वारा स्वयंवरमें नियोजित होनेपर, उसकी अभिलाषासे आये हुए राजाओंके समक्ष ही महाबली, शस्त्रास्त्रकुशल, अपने अनुरूप महात्मा दमको ही पतिके रूपमें वरण किया था ॥ १-६ ॥ मद्रराजकुमार महाबली महानन्द, विदर्भाधिपति संक्रनन्दका पुत्र वपुष्मान्

इसमें सन्देह नहीं। कर्मकी गति अति विचित्र है। पूर्व कर्मके अनुसार ही आयुका अन्त और मृत्युका संघटन होता है। इस कारण अति पुण्यशाली कर्मयोगी नरिष्यन्त राजाकी मृत्युकी घटनाके विषयमें कोई शङ्का करनेका अवसर नहीं है ॥ २८-३३ ॥

टीकाः—प्रथम तो साधारण तौरपर भी सन्ततिका अधिक दिनतक गर्भमें रहने और असाधारण तौरपर बाहर निकलने आदिके अनेक उदाहरण लौकिक इतिहासमें मिलते हैं। दूसरी ओर अलग-अलग मन्वन्तरमें सृष्टिशृंखलामें भेद हो जानेसे पुरुषशक्ति और स्त्रीशक्तिमें भी भेद पड़ जाता है। इन सब कारणोंसे गर्भस्थ शिशुके अधिक दिनों तक गर्भमें रहनेके सम्बन्धमें कोई सन्देह करनेका प्रयोजन नहीं है ॥ १-९ ॥

और उदारचेता राजपुत्र महाधनु सुमनाके प्रति अनुरक्त थे। दुष्ट वैरियोंका दमन करनेवाले दमको राजकन्याने वरा है, यह देखकर काममोहित चित्तसे वे आपसमें परामर्श करने लगे कि, हम इस रूपवती कन्याको इससे बलपूर्वक खींचकर अपने घर ले चलें। फिर यह वरारोहा स्वयम्वरके विधानानुसार हमारेमेंसे जिसे चाहे, स्वामिबुद्धिसे ग्रहण कर ले। जिसका यह अङ्गीकार करे, उसीकी यह धर्मानुमोदित भार्या समझी जायगी और यदि यह मदिरेक्षणा स्वेच्छासे हमारेमेंसे किसीको स्वीकार न करे, तो जो हमारेमेंसे दमका विनाश करे, यह कन्या उसीकी पत्नी मानी जायगी। मार्कण्डेय बोले,—उन तीनों राजपुत्रोंने इस प्रकारकी मन्त्रणा कर दमके पास खड़ी हुई उस सुन्दरीको वे उठा ले चले। उस समय उपस्थित राजाओंमें जो दमके पक्षमें थे, वे उसकी ओरसे और जो विरुद्ध पक्षमें थे, वे उस ओरसे क्रुद्ध होकर गरजने लगे। कुछ तटस्थ राजा दोनों पक्षोंमें बिचवईका काम करने लगे ॥ १०–१७ ॥ हे महामुने! दम उस समय चारों ओर खड़े हुए सब राजाओंको देखकर निर्भयचित्तसे कहने लगा,—हे भूपालगण! सभीलोग स्वयंवरकी धर्मकार्यमें गणना करते हैं सही, परन्तु आप ही कहें कि, यह वास्तवमें धर्म है या अधर्म? स्वयंवरमें मुझे प्राप्त हुई इस कन्याको ये जो लोग बलपूर्वक हरण करके ले जा रहे हैं, यदि स्वयंवर अधर्ममें गिना जाता हो, तो इस सम्बन्धमें मेरा कुछ कहना नहीं है; वह अन्य किसीकी भी भार्या हो सकती है। परन्तु स्वयंवरको यदि आप धर्म समझते हों, तो शत्रुओंसे लाञ्छित हुए इन प्राणोंको धारण करनेका प्रयोजन ही क्या रह जाता है? हे महामुने! अनन्तर दशार्णाधिपति महाराजा चारुकर्मा सभास्थलको निःशब्द करते हुए बोले,—हे नृपवर! दमने धर्माधर्मके सम्बन्धमें जो प्रश्न उठाया है, इस सम्बन्धमें आप सब ऐसा अभिमत प्रकट करें, जिससे मेरे धर्मका लोप न हो ॥ १८–२२ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—तब कुछ महीपालोंने महाराजसे कहा, परस्पर अनुराग होनेपर ही गान्धर्वविवाह हो सकता है। ऐसा विवाह क्षत्रियोंके लिये ही प्रशस्त है, ब्राह्मण वैश्य या शूद्रके लिये उचित नहीं है। आपकी इस कन्याका दमके साथ इसी तरहका गान्धर्वविवाह हुआ है। अतः हे पार्थिव! धर्मानुसार यह कन्या दमकी भार्या हो चुकी है। जो कामुक हैं, वे ही मोहके वशीभूत होकर इसका विरोध कर रहे हैं। हे विप्र! तदुपरान्त जो राजा विपक्षमें थे, वे दशार्णाधिपतिसे कहने लगे,—ये इन्हें 'मोहके वशीभूत' क्यों कहते हैं? गान्धर्वविवाह तो क्षत्रियोंके लिये कभी प्रशस्त होही नहीं सकता। यही नहीं, अन्य प्रकारके विवाह भी क्षत्रियोंके लिये प्रशस्त नहीं हैं। शस्त्रजीवियोंके लिये एकमात्र राक्षसविवाह प्रशस्त हो सकता है। हे भूपालवृन्द! जो व्यक्ति विपक्षियोंका विनाश कर बलपूर्वक इस

कन्याका ग्रहण करेगा, राक्षसविवाहके विधानानुसार उसीकी यह पत्नी होगी। क्षत्रियोंके लिये सब विवाहोंमें राक्षसविवाह ही श्रेष्ठतर है। अतः महानन्द आदि राजपूतोंने जो आचरण किया है, वह अधर्म नहीं कहा जा सकता ॥ २३–२६ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—पहिले जिन राजाओंने परस्पर-अनुराग और जातिधर्मविषयक बातें कही थीं, उन्होंने फिर कहा,—यह ठीक है कि, क्षत्रियोंके लिये राक्षसविवाह ही प्रशस्त और श्रेष्ठ है। इस राजकन्याने पिताके अधीन रहकर कुमारी अवस्थामें दमको प्रतिरूपसे स्वीकार किया है। पितृपक्षको हत या आहत कर यदि कन्याका हरण किया जाय, तो वह राक्षसविवाह कहाता है। परन्तु पतिके हाथसे झटककर यदि कन्या लायी जाय, तो वह राक्षसविवाह हो नहीं सकता। समस्त भूपालोंके सामने जब यह सुमना दमको वरण कर चुकी है, तब उसका गान्धर्वविवाह हो चुका। अब राक्षसविवाह-विधिको अवसर कहां रहा? विवाहिता कन्याका कन्यापन नहीं रह जाता। हे नृपवृन्द! विवाहतक ही कन्याका कन्यापन है। जो बलपूर्वक इसे दमसे छीननेको उद्यत हुए हैं, वे बलके गर्वमें भरकर भले ही ऐसा करें, किंतु यह सत्कार्य नहीं है॥ ३०–३५ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—इन सब बातोंको सुनते सुनते दमकी आंखें क्रोधसे लाल हो गयीं। उसने धनुषपर रौंदा चढ़ाते हुए कहा,—मेरी आंखोंके आछत मेरी भार्याका यदि कोई बलपूर्वक अपहरण करे, तो समझना होगा कि, क्लीव होकर मैं जन्मा हूं। मेरे कुल गौरव और दोनों भुजाओंका ही महत्व फिर क्या रह जाता है? मेरे जीते जी ये मूढ़ लोग बलोन्मत्त होकर मुझसे यदि मेरी भार्याको छीन ले जायँ, तो मेरे सब अस्त्र, शौर्य, शर और शरासनको धिःकार है! महात्मा मरुत्तके वंशमें मेरे जन्मग्रहण करनेको धिःकार है!! और मेरी धनुर्धरताको भी धिःकार है!!! इस प्रकार गरज कर कहने पर महारिदमन बलवान् दमने महानन्द आदि राजाओंसे कहा,—हे सम्मानित भूपालो! तुम प्रतिज्ञा कर लो कि, इस अति मनोरमा, मदिरेक्षणा, सत्कुलोद्भवा, सुन्दरी बालिका-को जो अपनी पत्नी न कर ले, उसका जन्म ही व्यर्थ है और फिर संग्राममें ऐसा प्रयत्न करो, जिससे मुझे पराजित कर तुम इसे ले जा सको ॥ ३६–४२ ॥ मार्कण्डेय बोले,—यह कहकर दमने उन राजाओंपर ऐसी शरवर्षा करना आरम्भ किया कि, अन्धकारसे जैसे वृक्षसमूह आच्छन्न हो जाते हैं, वैसे उसके शरजालसे सब राजा ढँक गये। उन महावीर महीपालोंने भी बाण, शक्ति, ऋष्टि, मुग्दर आदि चलाये, परन्तु उनके वे सभी शस्त्र दमने लीलामात्रसे छिन्न-भिन्न कर डाले। हे मुने! विपक्षी राजा जिस प्रकार दमके चलाये शस्त्रोंको तोड़ते जाते थे, उसी प्रकार नरिष्यन्तपुत्र दम भी उनके चलाये शस्त्रास्त्रोंको विफल कर दिया करता था। राजपूतोंके साथ दमका इस प्रकार युद्ध हो

रहा था कि, इतनेमें महानन्द हाथमें तलवार लेकर दमके सामने आ धमका। महारणक्षेत्रमें खड्ग खींचकर महानन्द अपनी ओर आ रहा है, यह देखते ही, इन्द्र जैसे मेह बरसाते हैं, वैसे दमने भी उसपर बाणोंका ताँता बाँध दिया। महानन्दने उसके सब बाणों और शस्त्रोंको क्षणभरमें काट डाला। महानन्दने हस्तलाघवसे यह कार्य इतनी सफाईसे किया कि, अन्यान्य राजा उसे जान भी नहीं सके। फिर महावीर महानन्द आवेशके साथ दमके रथपर ही चढ़कर उससे जूझने लगा ॥४३-४६॥ बहुत देरतक दोनोंका गुत्थम-गुत्था होनेपर दमने बड़ी चतुरतासे कालाग्निके समान एक बाण महानन्दके हृदयमें बेध दिया। महानन्दने उस बाणको अपने हाथसे उखाड़ कर फेंक दिया और भिन्न-हृदयसे ही अपने उज्वल खड्गका दमपर प्रहार किया। उल्काके समान उस खड्गका प्रहार होता है, न होता है, इतनेमें दमने उसे शक्ति नामक आयुधसे दो टूक कर डाला और उसी क्षण वेतसपत्र-बाणके द्वारा महानन्दका सिर काट डाला। महानन्दके मारे जाते ही अधिकांश नरपति युद्धसे पराङ्मुख हो गये; केवल कुण्डिणा-धिपति वपुष्मान ही रणक्षेत्रमें डँटा रहा। वह बल-गर्वसे उन्मत्त दाक्षिणात्य भूपाल वपुष्मान् संग्राममें अटल रहकर दमसे युद्ध करने लगा। उस युद्धयमान वपुष्मान्का खड्ग, उसके सारथीका मस्तक और रथका ध्वज दमने अपनी उग्र तलवारसे क्षणभरमें काट गिराया। खड्गके टूट जानेपर बहुतसे कीलोंसे जड़ीहुई गदा वपुष्मान्ने तान ली। दमने उस गदाको भी ऊपर ही ऊपर तोड़ डाला। फिर जबतक वपुष्मान् कोई उत्कृष्ट शस्त्र ग्रहण करना चाहता है, तबतक दमने उसे बाणोंसे विद्ध कर, भूमिपर गिरा दिया ॥ ५०-५७ ॥ राजपुत्र वपुष्मान्के भूमिपर गिरनेपर उसके सब अङ्ग कांप रहे थे और वह छटपटा रहा था। अब उसने युद्धकी इच्छा त्याग दी थी। मनस्वी दमने उसे युद्धसे विरत देखकर उसी अवस्थामें छोड़ दिया और सुमनाको साथ लेकर प्रसन्न चित्तसे वहांसे प्रस्थान किया। अनन्तर दशार्णाधिपतिने प्रीतिपूर्वक सुमना और दमका विवाह यथाविधि सम्पन्न किया। विवाह हो जानेपर कुछ दिन तक दम दशार्णाधिपतिके नगरमें ठहरा रहा और फिर नवपरिणीता पत्नीके साथ अपनी राजधानीमें चला गया। उसे बिदा करते समय दशार्णाधिपतिने उसे बहुतसे हाथी, तरह तरहके घोड़े, रथ, गायें, खच्चर, ऊँट, दास, दासी, वस्त्र, अलङ्कार, धनुष आदि नानाविध बहुमूल्य सामग्री दहेजमें दी और वर-वधू दोनोंको धन-रत्न आदिसे पूर्ण कर बिदा किया ॥ ५८-६३ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका दमचरितान्तर्गत सुमनास्वयंवर नामक
एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ चौंतीसवां अध्याय।

—०:*:०—

मार्कण्डेयने कहा,—हे महामुने! राजपुत्र दमने सुमनाको पत्नीरूपसे प्राप्तकर पिता-माताकी चरणवन्दना की और फिर सुभ्रू सुमनाने भी सास-ससुरको वन्दन किया। हे विप्र! उन्होंने भी दोनोंका आशीर्वचनोंसे अभिनन्दन किया। विवाह करके दशार्णाधिपतिके नगरसे दमके लौट आने पर नरिष्यन्तपुरमें महोत्सव प्रारम्भ हुआ। दशार्णेश्वरके साथ हुए वैवाहिक सम्बन्ध तथा अपने पुत्रके द्वारा हुए अनेक नृपतियोंके पराजयकी वार्ता सुनकर महीपति नरिष्यन्तको बड़ी ही प्रसन्नता हुई। फिर राजपुत्र दम विचित्र उद्यानों, वनप्रदेशों, प्रासादों और पर्वतशिखरों जैसे स्थानोंमें सुमनाके साथ विहार करने लगा। दमके साथ विहार करते हुए कुछ समय बीतनेपर दशार्णराजकी कन्या सुमनाके गर्भ रहा॥ १-६॥ तब महीपति नरिष्यन्तने अनेक भोगोंका उपभोग करनेके पश्चात् अपनी उतरती अवस्थाको देखकर दमको राज्याभिषिक्त किया और स्वयं यशस्विनी पत्नी इन्द्रसेनाको साथ लेकर वनमें गमन किया। वहीं वे दोनों वानप्रस्थ धर्मका पालन करते हुए निवास करने लगे। एक बार दाक्षिणात्य राजा संक्रन्दनका पुत्र दुराचारी वपुष्मान् कुछ सेवकोंके साथ मृगया करता हुआ उस वनमें उपस्थित हुआ। वहां उसने देहमें भस्म लेपन किये हुए तपस्वी नरिष्यन्त और उसकी तपसे कृश हुई इन्द्रसेनाको देखकर जिज्ञासा की कि, आप कौन हैं? और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन त्रिवर्णोंमेंसे कौन हैं, जो वानप्रस्थको अवलम्बन करके वनवासी हो रहे हैं? भूपतिने मौनव्रत ग्रहण किया था, इस कारण उसने तो कोई उत्तर नहीं दिया; किन्तु इन्द्रसेनाने उसे अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया॥ ७-१२॥ मार्कण्डेयने कहा,—वपुष्मान्ने, उसे अपने शत्रुका पिता नरिष्यन्त यही है यह जानकर, "अब कहां जाता है?—पा गया" कहते हुए क्रोधसे उसकी जटाएं पकड़ लीं। तब इन्द्रसेना हाहाकार करती हुई रुँधे कण्ठसे रोने लगी। परन्तु उस दुराचारीने उधर ध्यान न देकर म्यानसे तलवार खींचकर कड़ककर कहा,—जिसने मुझे समराङ्गणमें पराजित किया था, उसी दमके पिताका आज मैं वध करता हूं; दम आकर मुझसे इसको बचावे। कन्या-प्राप्तिके लिये आये हुए सभी राजपूतोंको जिसने अपमानित किया था, उस दुर्मति दमके पिताको आज मैं मार रहा हूं। जो दुरात्मा स्वभावतः योधाओंका दमन करने वाला है, आज उसी शत्रुके पिताका मैं संहार कर रहा हूं; दम आकर इसकी रक्षा करे। मार्कण्डेय बोले,—यह कहकर दुरात्मा राजा वपुष्मान्ने रोती हुई इन्द्रसेनाके सामने ही तलवारसे नरिष्यन्तका सिर उतार लिया। तब सब

मुनिगण और अन्यान्य वनवासी लोग उस हत्यारेको धिःकारने लगे । नरिष्यन्तका इस प्रकार निधन कर वपुष्मान् अपने नगरको लौट गया । उसके चले जानेपर इन्द्रसेनाने गहरी सांस भरकर एक शूद्र तापसको अपने पुत्रके पास भेजा । उससे उसने कहा कि, मेरे पुत्र दमसे यहांका सब समाचार कहना । मेरे स्वामीका सब वृत्तान्त तुम जानते हो, अतः इस सम्बन्धमें अधिक कुछ समझानेका प्रयोजन नहीं है । फिर भी महीपतिकी यह अपमानजनक अवस्था देखकर मैं अत्यन्त दुःखित होकर जो कुछ कहती हूं, वह तुम मेरी ओरसे मेरे पुत्रसे कहना कि, वत्स ! तुम राजा हो । चारों आश्रमोंके लोगोंके प्रतिपालक-रूपसे तुम नियुक्त हुए हो । परन्तु तुम तपस्वियोंकी रक्षा नहीं कर पाते, क्या यह तुम्हें योग्य है ? मेरे पतिदेव नरिष्यन्त पतस्वी होकर तपस्या कर रहे थे । रक्षाकर्तारूपसे तुम्हारे विद्यमान रहते हुए अनाथकी तरह बिना अपराधके उनके केश पकड़कर मेरा विलाप सुनते हुए वपुष्मानने उनका वध कर डाला है । तुम्हारे सम्बन्धमें यही प्रसिद्धि होगी कि, तुम्हारे राजा होते हुए यह कार्य हुआ ! ऐसी अवस्थामें जिससे धर्मका लोप न हो, ऐसा उपयुक्त कार्य करो । मैं तपस्विनी हूं, इससे अधिक कुछ कहना मेरे लिये उचित नहीं है । तुम्हारे पिता प्रथम तो वृद्ध थे, दूसरे वे तपाचरण कर रहे थे; अतः किसी अपराधसे भी किसीके निकट अपराधी नहीं थे । फिर भी जिसने उनका प्राणनाश किया, उसके सम्बन्धमें इस समय तुम्हें क्या करना चाहिये, इसका विशेषरूपसे तुम विचार करो । तुम्हारे मन्त्रिगण शास्त्रवेत्ता और वीर हैं । उनसे इस विषयमें परामर्श कर अब जो कुछ करना हो, सो करो ॥ १३-२७ ॥ तुम्हारे पिता महाराज नरिष्यन्तने अन्त समयमें कहा कि,—"मैं तापस हूं, मुझे इस विषयमें कुछ भी कहनेका अधिकार नहीं है, तुम ही इसका प्रतीकार करो ।" हे पुत्र ! विदूरथका पिता जिस प्रकार यवनोंके द्वारा मारा गया था, उसी प्रकार तुम्हारे पिताको मारकर वपुष्मान्ने तुम्हारे कुलका विनाश किया है । असुर-राज जम्भका पिता सर्पके काटनेसे मरा था, इस कारण जम्भने समस्त पातालवासी पन्नगोंको मार डाला था । पराशरका पिता शक्ति राक्षसके द्वारा मारा गया था, इस कारण पराशरने समस्त राक्षसकुलोंको आगमें जला दिया था । स्ववंशीय किसी अन्य व्यक्तिका अपमान होनेपर भी क्षत्रिय उसे सह नहीं सकते, फिर साक्षात् पिताके वधके सम्बन्धमें कहना ही क्या है ? ॥ २८-३३ ॥ मेरी समझमें तुम्हारे पिता निहत नहीं हुए हैं और न उनपर शस्त्राघात ही हुआ है । यह तो तुम ही मारे गये हो और तुम्हींपर शस्त्रप्रहार किया गया है । जो व्यक्ति वनवासियोंपर शस्त्र चलाता है, उससे कौन डरता है ? उसका पौरुष ही क्या है ? वह पापी है । तुम अपने पिताके सुपुत्र और राजा हो । तुम यदि शत्रुओंको नष्ट करो, तो सभी तुमसे डरने लगेंगे । यदि ऐसा नहीं हुआ, तो

तुमसे कोई नहीं डरेगा और तुम्हारे राज्यशासनकार्यमें भी बाधा पड़ेगी। तुम्हारा ही यह अपमान हुआ है। अतः हे महाराज! वपुष्मान्‌के सम्बन्धमें भृत्य, जाति और बान्धवोंके साथ जो कुछ करना हो, करो। मार्कण्डेय बोले,—मनस्विनी इन्द्रसेनाने इन्द्रदाससे यह सब कहकर उसे विदा किया और फिर पतिके शरीरको आलिङ्गन कर अग्निमें प्रवेश किया ॥ ३४-३७ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका दमचरित सम्बन्धी
एक सौ चौंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय।

—०:ः०—

मार्कण्डेयने कहा,—इन्द्रसेनाका सँदेसा लेकर शूद्र तापस दमके पास गया और उसे पिताके निधनका समाचार तथा राज्ञी इन्द्रसेनाका सँदेसा उसने कह सुनाया। तपस्वी पिताके वधका वृत्तान्त आद्योपान्त सुनकर घृताहुतिसे अग्नि जैसा अधिक प्रज्वलित हो जाता है, वैसा दम भी क्रोधसे जल उठा। हे महामुने! उसके स्वभावतः वीर होते हुए भी क्रोधानलसे जल उठनेके कारण हाथपर हाथ रगड़कर वह बोला,—

टीकाः—पतिके कर्मयोगी और जीवन्मुक्त होनेके कारण उसके शरीरान्तकी दशाकी अशुभ घटनापर विचार करनेका ही कोई अवसर नहीं है। परन्तु आर्य-राजकुलललनाएँ जब राजवैभवको छोड़कर अन्तमें वानप्रस्थ आश्रममें पतिसेवामें तपश्चर्यापूर्वक निरत रहती हैं, उस समयकी यह गाथा अतिशय हृदयग्राहिणी है। सनातनधर्मके अनुसार ब्राह्मणके लिये ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास ये चारों आश्रम विहित हैं। क्षत्रियके लिये संन्यासाश्रम छोड़कर अन्य तीन विहित हैं। वैश्यके लिये अन्तके दो आश्रम विहित नहीं हैं। शूद्रके लिये केवल गृहस्थाश्रम विहित है। इसी अध्यात्मलक्ष्ययुक्त आश्रमशृंखलाके अनुसार प्राचीन क्षत्रिय राजन्यगण आत्मज्ञानी होनेपर भी और अतुलनीय ऐश्वर्य और शक्तिके अधिकारी होनेपर भी अन्तमें अपने राजवैभवको छोड़कर और वानप्रस्थाश्रममें रहकर तपश्चर्या करते थे। यह उदाहरण तथा तपस्वीको अन्ततक किस प्रकार संयतेन्द्रिय, रागद्वेषशून्य होना उचित है, यह सब अलौकिक दृष्टान्त महाराज नरिष्यन्तके जीवनमें जाज्वल्यमान हैं। दूसरी ओर राजमहिषी महारानियां किस प्रकार पतिकी सहधर्मिणी होती थीं और तपश्चर्या करती हुई अन्त तक शरीर, मन और वाणीके द्वारा किस प्रकार सपकी रक्षा करती थीं, यह महारानीके जीवनमें ज्वलंत उदाहरण है। आर्यराजा और आर्यराजमहिषी उन्नत अधिकारी होकर किस प्रकारसे त्रिलोकपवित्रकारी धार्मिक जीवन निर्वाह करते हुए अपने तीनों आश्रमोंका कैसा पालन करते थे, वह इस मधुर गाथासे प्रकाशित हो जाता है। ऐसा क्षत्रिय राजाका आचरण सब क्षत्रिय राजाओंके लिये अनुकरणीय है ॥ ३४-३७ ॥

मुझ पुत्रके जीवित रहते हुए मेरे वंशके लिये अपमान-जनक अनाथकी तरह मेरे पिताका उस नृशंसने वध कर डाला है? मैं अवश्य ही दुष्टोंका दमन तथा शिष्टोंका पालन करनेके लिये नियुक्त हुआ हूं। परन्तु जब कि, मेरे पिता निहत हो गये हैं और यह जानते हुए भी मेरे शत्रु जी रहे हैं, तब नपुंसककी तरह मैं उन्हें क्षमा कर रहा हूं, यही लोग कहेंगे और यह जनापवाद ठीक भी होगा। अन्ततः अधिक बकवाद करने अथवा 'हा तात!' कहकर विलाप करनेसे ही क्या होना है? इस समय मेरा जो कर्त्तव्य है, वही मैं करूँगा। यदि मैं वपुष्मान्के शरीरके रक्तसे पिताका तर्पण न करूँ, तो अवश्य ही अग्निमें प्रवेश करूँगा। युद्धमें उसे मारकर, उसके शोणितसे मृत पिताका तर्पण कर, उसका मांस यदि चील-कौओंको न खिला दूँ, तो मैं आगमें जलकर मर जाऊँगा। असुर, देव, गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर और सिद्धगण भी यदि उसकी सहायता करें, तो उन्हें भी उसी क्षण क्रोधपूर्वक अस्त्रकी अग्निसे भस्मीभूत कर दूँगा। उस शौर्यहीन, अधार्मिक और निन्दित दाक्षिणात्यको समरमें मारकर ही समग्र पृथिवीका उपभोग करूँगा और यदि उसे न मार सका, तो अग्निमें प्रवेश करूँगा॥ १-१०॥ मेरे वनवासी, मौनव्रती, तपोनिरत वृद्ध पिताके उद्विग्न होकर शान्त वचन कहनेपर भी जिस दुर्मतिने उनकी हत्या की है, मैं आज अपने सब बन्धुओं, मित्रों, पदातियों, हाथियों, घोड़ों और सेनाको साथ लेकर उसे रणमें मार गिराऊँगा। आज मैं खड्ग और धनुष हाथमें लेकर, रथमें सवार होकर और शत्रुसैन्यमें उपस्थित होकर उनका जैसा संहार करूँगा, उसे समस्त देवगण अवलोकन करें। जब उससे मेरा युद्ध छिड़ जायगा, तब उसके जो सहायक होंगे, उनका भी इन बाहुरूपी सेनाओं द्वारा उसी क्षण निःशेषरूपसे वंशक्षय करनेपर मैं तुल गया हूं। इस युद्धस्थलमें हाथमें वज्र लेकर इन्द्र, उग्र दण्ड लेकर क्रुद्ध यम, कुबेर, वरुण और सूर्य भी यदि उसकी रक्षा करने आवें, तो भी तीखे बाणोंके द्वारा मैं उस वपुष्मान्का विनाश किये बिना न रहूंगा। मुझ प्रतापशाली पुत्रके जीवित रहते हुए जिसने मेरे संयतचित्त, निर्दोष, वनवासी, वृक्षसे स्वाभाविक रूपसे गिरे हुए फल खाकर जीवन धारण करनेवाले और सब प्राणियोंसे प्रेम करनेवाले पिताकी हत्या की है, आज उसके रक्त और मांससे गीधोंके झुण्ड तृप्ति लाभ करें॥ ११-१५॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका दमचरित सम्बन्धी
एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयने कहा,—नरिष्यन्तपुत्र दम इस प्रकार प्रतिज्ञा कर क्रोधसे आँखें तरेर कर मोछोंपर हाथ फेरता हुआ 'हा हतोस्मि!' कहकर पिताके विषयमें खेद और अपने भाग्यकी निन्दा करने लगा। फिर पुरोहितों और मन्त्रियोंको बुलाकर उनसे बोला,—पिताजी स्वर्ग सिधार गये हैं। शूद्र तापसने जो कुछ कहा, वह तुम्हें ज्ञात हो गया है। अब मुझे क्या करना चाहिये, कहो। सब लोकोंके शास्ता उस नृपवरने वृद्धावस्थामें वानप्रस्थ व्रत ग्रहण कर तपश्चर्या करते हुए मौनव्रतका अवलम्बन किया था और वपुष्मान्के पूछनेपर माता इन्द्रसेनाने उसे अपना सारा सच्चा परिचय दिया था। तब उस दुरात्माने तलवार खींचकर बायें हाथसे उनके केश पकड़ कर अनाथकी तरह उनको काट डाला! मैं नितान्त तेजोहीन और अभागा हूं। मेरी सती माताने मुझे धिःकार करते हुए पिता नरिष्यन्तको गोदमें लेकर चितापर आरोहण कर स्वर्गमें गमन किया है। माताने मेरे पास जैसा सँदेसा कहला भेजा है, मैं वैसा ही करूँगा। हाथी, घोड़े, रथ और पदातियोंकी चतुरङ्गिणी सेना सुसज्जित हो। पिताके वैरका बदला विना चुकाये, पिताके हत्यारेका विनाश बिना किये और माताकी आज्ञाका पालन बिना किये मुझे जीनेका अधिकार ही क्या है? ॥ १-८ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—दमकी बातें सुनकर मन्त्रियोंने हाहाकार करते हुए शोक प्रकाश किया और विमनस्क भावसे राजाकी आज्ञाके अनुसार कार्य सम्पादन किया। राजा भी भृत्य, सैन्य, वाहन, खड्ग, शक्ति, ऋष्टि आदिसे सुसज्ज हो, सपरिवार युद्धके लिये चल पड़ा। चलते समय उसने त्रिकालज्ञ ब्राह्मण पुरोहितोंसे आशीर्वाद ग्रहण किये थे। राजप्रासादसे निकलकर शेषनागकी तरह निःश्वास परित्याग करता और सीमापालादि सामन्तोंको मारता काटता, दम वपुष्मान्के राज्यमें घुस गया। सायुध, सशस्त्र, सपरिवार मन्त्रियोंके साथ योधाके रूपमें दम दाक्षिणात्य राज्यपर चढ़ आया है, यह समाचार पाकर संक्रन्दनपुत्र वपुष्मान् विचलित नहीं हुआ। उसने अपनी सेनाको युद्धके लिये प्रस्तुत हो जानेका आदेश दिया और राजधानीके बाहर आकर दमके पास दूत भेजकर कहलाया कि, रे क्षत्रियाधम! आ, शीघ्रतासे चला आ! नरिष्यन्त अपनी भार्याके साथ तेरी प्रतीक्षा कर रहा है। इसलिये तू मेरे पास त्वरासे दौड़ आ! कितने ही वीरोंका जिन्होंने रुधिर पान किया है, ऐसे ये सानपर चढ़ाकर तीव्र किये हुए बाण रणाङ्गणमें मेरे हाथोंसे छूटकर तेरे शरीरको फाड़कर तेरा रक्त पान करेंगे। मार्कण्डेयने कहा,—दमने दूतका वचन सुनकर अपनी

पूर्वप्रतिज्ञाका स्मरण किया और उरगकी तरह साँसें भरता हुआ वह शीघ्रतासे पैर बढ़ाकर वपुष्मान्‌को संग्रामके लिये ललकारकर बोला,—जो सच्चा पुरुष है, वह आत्मश्लाघा कभी नहीं करता। तदनन्तर दम और वपुष्मान्‌का घोर युद्ध आरम्भ हो गया। रथीसे रथी, हाथीसे हाथी और घुड़सवारोंसे घुड़सवार भिड़ने लगे। हे विप्रर्षे! सब देवगण, सिद्ध, गन्धर्व और याज्ञिक लोग देख रहे थे और उन्हींके सामने यह युद्ध हो रहा था। हे ब्रह्मन्! दम जब क्रोधपूर्वक युद्धमें प्रवृत्त हुआ, तब वसुन्धरा काँपने लगी॥ १०-२०॥ ऐसा कोई हाथी, घोड़ा या रथी नहीं था, जो उसके बाणको सह सकता। वपुष्मान्‌का सेनापति दमके साथ युद्ध कर रहा था, किन्तु दमने बाणसे उसका हृदय छेद डाला। सेनापतिके आहत होते ही वपुष्मान् और उसका सब सैन्य रणभूमिसे भाग निकला। यह देखकर शत्रुओंकी शान्तिका भङ्ग करनेवाला दम बोला,—रे दुष्ट! तूँने मेरे शस्त्रविहीन, तपस्वी पिताकी हत्या की है; अब कहाँ भागा जा रहा है? तू यदि क्षत्रिय है, तो लौट आ। मार्कण्डेय बोले,—फिर वपुष्मान्‌ने अनुज, पुत्र, सम्बन्धी और बान्धवोंके साथ लौट आकर रथमें चढ़कर फिर युद्ध आरम्भ किया। उस समय वपुष्मान्‌ने धनुषसे बाणोंका ताँता बाँधकर आकाश और दिशाओंको आच्छन्न कर दिया और दमको अश्वों तथा रथों सहित शरजालसे घेर लिया॥ २१-२५॥ पितृवधसे क्रुद्ध हुए दमने अपने बाणोंसे शत्रुके शरजालको काट डाला और शत्रुओंके अङ्ग-प्रत्यङ्ग विच्छिन्न कर दिये। फिर उसने एक एक बाणसे उसके सातों पुत्रों, अनुजों, सम्बन्धियों और मित्रोंको काट काट कर यमसदनमें भेज दिया। पुत्रों-मित्रोंके हत होनेके कारण वपुष्मान् और भी अधिक क्रुद्ध हो गया और साँपोंकी तरह बाणोंकी वर्षा करता हुआ दमके साथ युद्ध करने लगा। उसके बाणोंको दम और दमके बाणोंको वह बराबर काटता जाता था। हे

टीका:—सतीचरित्र त्रिलोक पवित्रकारी है। और सतीत्वधर्म त्रिलोकके अभ्युदयका कारण है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। तपस्याके बलसे देहाध्याससे रहित होना, सात्त्विक धृतिके द्वारा स्थूलदेहसे सम्बन्ध छोड़ देना, धर्मके अवलम्बनसे यावत् इन्द्रियसुखोंको भूल जाना और पतितन्मयतासे समाधियुक्त हो जाना, इन सब बातोंके बिना कोई स्त्री सतीत्वव्रतपालनके द्वारा पतिके साथ जल नहीं मर सकती। सती जो योगशक्ति प्रकट करती है, वह बड़े बड़े योगी भी नहीं कर सकते। सतीकी तपस्याकी तुलना नहीं हो सकती। यद्यपि सतीके लिये दो मार्ग हैं, एक आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत पालनकरना और दूसरा, पतिके साथ चितामें सहगमन करना। परन्तु दूसरा मार्ग, सहगमनकी तपस्या, इस मृत्युलोकमें अतुलनीय है और सतीधर्मका सर्वोत्तम ज्वलन्त दृष्टान्त है। सतीधर्म वर्णाश्रमधर्मकी भित्ति है। वर्णाश्रमधर्म देवलोकका अभ्युदयकारी है और दैवी श्रृंखला चतुर्दश भुवनोंकी रक्षक है। इस कारण सतीत्वधर्म त्रिलोकरक्षक और ब्रह्माण्डको पवित्र करनेवाला है, इसमें संदेह नहीं। इस मृत्युलोकमें सतीधर्मकी आदर्श पुण्यमयी कल्पनाएं भारतवर्षमें ही प्रकट होती हैं॥ २१-२५॥

महामुने! इस प्रकार अतिशय क्रोधमें भरकर दोनों एक दूसरेके बधकी इच्छासे दारुण युद्ध कर रहे थे। दोनों महाबली थे। लड़ते लड़ते एक दूसरेके बाणोंसे दोनोंके धनुष टूट गये। तब दोनोंने तलवारें खींचकर युद्धक्रीड़ा करना आरम्भ किया। वनमें मारे गये पिताका क्षणभर विचार कर दमने वपुष्मान्‌के केश पकड़ लिये और उसे भूमिपर पटककर तथा उसकी छातीपर घुटना धरकर हाथ उठाकर उच्च स्वरसे कहा,—देखें, इस क्षत्रियाधम वपुष्मान्‌का हृदय मैं विदारण कर रहा हूं; इसे समस्त देवगण, मनुष्यगण, सिद्ध और पन्नगगण देखें ॥ २६–३२ ॥ मार्कण्डेय बोले,—यह कहकर दमने तलवारसे वपुष्मान्‌की छाती चीर दी। उसके रक्तसे जब वह स्नान करनेको उद्यत हुआ, तब देवताओंने उसे रोक दिया। फिर उसीके रक्तसे दमने पिताकी उदकक्रिया की, उसके मांसका पिताको पिण्ड प्रदान किया और शेष मांस राक्षसकुलमें उत्पन्न हुए ब्राह्मणोंको खिला दिया। इस प्रकार पिताके ऋणसे मुक्त होकर दम अपनी राजधानीमें लौट आया। सूर्यवंशमें ऐसे अनेक बुद्धिमान्, शौर्यशाली, यागपरायण, धर्मवेत्ता और वेदान्तपारग भूपति हुए हैं, जिनकी गणना करना सहज नहीं है। उनके चरित्र सुननेसे मनुष्योंके सब पाप कट जाते हैं ॥ ३३–३७ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका वपुष्मान्-निधन नामक
एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ सैंतीसवाँ अध्याय।

—:०#०:—

पक्षियोंने कहा,—महातपा मार्कण्डेय मुनिने इस प्रकार कथा सुनाकर क्रौष्टुकिको बिदा किया और फिर माध्याह्नकी क्रिया समाप्त की। हे महामुने! मैंने जो आपसे निवेदन किया, यह अनादिसिद्ध पुराण स्वयम्भूने मार्कण्डेय मुनिको सुनाया था और हमने मार्कण्डेयसे ही सुना है। हमने यह जो मनोज्ञ, पुण्यकर और पवित्र पुराण सुनाया, इसके पाठ या श्रवणसे आयुकी वृद्धि, सब कामनाओंकी सिद्धि और मनुष्योंकी सब पापोंसे मुक्ति होती है। आपने हमसे जो चार प्रश्न किये थे, उनके उत्तर हमने दे दिये हैं और पिता-पुत्र-संवाद, स्वयम्भूकी सृष्टि, मनुओंकी उत्पत्ति तथा राजाओंके चरित्र भलीभांति सुना दिये हैं। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं? जो मैंने तुमको सुनाया, उसके सुनने और सभास्थलमें सुनानेसे श्रोता और पाठक दोनों सब पापोंसे विमुक्त होकर ब्रह्ममें लीन हो जाते हैं ॥ १–६ ॥ पितामह ब्रह्माने अठारह पुराण

सुनाये थे, उनमेंसे यह सुविख्यात मार्कण्डेयपुराण सातवां है। १—ब्रह्म, २—पद्म, ३—विष्णु, ४—शिव, ५—भागवत, ६—नारदीय, ७—मार्कण्डेय, ८—अग्नि, ९—भविष्य, १०—ब्रह्मवैवर्त, ११—नृसिंह, १२—वराह, १३—स्कन्द, १४—वामन, १५—कूर्म, १६—मत्स्य, १७—गरुड़ और १८—ब्रह्माण्ड, इन अठारह पुराणोंका जो व्यक्ति प्रतिदिन एक वार या तीनों वेला पाठ करता है, उसे अश्वमेधके समान फल प्राप्त होता है। चार प्रश्नोंसे युक्त इस मार्कण्डेयपुराणके सुननेसे सौ करोड़ कल्पोंका किया पाप कट जाता है और ब्रह्महत्यादि समस्त महापाप तथा अमङ्गल आदि वायुके झकोरेसे उड़नेवाले तिनकेके समान उड़ जाते हैं ॥ ७-१४ ॥ पुष्करमें स्नान करनेसे जो पुण्य होता है, वही इस पुराणके श्रवणसे प्राप्त होता है। वन्ध्या अथवा मृतवत्सा मनोयोगपूर्वक इसको सुने, तो उसे सर्वलक्षणयुक्त पुत्र प्राप्त होगा। इसके श्रवणसे इस लोकमें धन, धान्य तथा परलोकमें अक्षय्य स्वर्गका लाभ होता है। सुरापान करनेवाले तथा अन्यान्य उग्र कर्म करनेवाले मनुष्य यदि इस पुराणको आद्योपान्त सुनें, तो वे सब पापोंसे छुटकारा पाकर स्वर्गलोकमें पूजित होते हैं। हे द्विजोत्तम! इसके सुननेसे आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन, धान्य, पुत्र आदिकी प्राप्ति होती है और सुननेवालेका वंश अविच्छिन्न बना रहता है। हे विप्र! इस पुराणको श्रवण करनेपर जो करना पड़ता है, वह मैं कहता हूं। समग्र पुराण सुन लेनेपर विचक्षण व्यक्तिको अग्निस्थापन कर होम करना चाहिये। हे मुनिसत्तम! हृदयकमलमें पुराणरूपी गोविन्दका ध्यान कर और 'वपुष्मत' वेदमन्त्रोंसे गन्ध, माल्य, वस्त्र आदिसे उनकी पूजा कर, फिर पुराणपाठकका सत्कार करना चाहिये ॥ १५-१९ ॥ हे विप्र! उसे सवत्सा गौ, उपजाऊ भूमि, सोना और चांदी यथाशक्ति दान करनी चाहिये। राजा श्रोता हो, तो वह गाँव-वाहनादि प्रदान करे। इस प्रकार कथावाचकको संतुष्ट कर उससे 'स्वस्ति' वाचन श्रवण करे। जो व्यक्ति वाचकका सत्कार न कर एक श्लोक भी सुन लेता है, उसको कोई पुण्य नहीं होता। ऐसे श्रोताओंको विद्वान् लोग शास्त्रचोर कहते हैं, देवता उनसे अप्रसन्न रहते हैं और पितृगण संतुष्ट नहीं होते। उनका किया श्राद्ध पितर नहीं पाते और वेदपाठकोंके द्वारा निन्दित उन शास्त्रचोरोंको स्नान, तीर्थ आदिका भी फल नहीं मिलता ॥ २०-२४ ॥ मार्कण्डेयपुराणका पाठ समाप्त होनेपर बुधगण उत्सव करें और सब पापोंसे छुटकारा पानेके लिये सपत्नीक ब्राह्मणोंको दूध देनेवाली गाय, वस्त्र, रत्न, कुण्डल, चोली, पगड़ी, बिछौनेके साथ पलङ्ग, जूते, कमण्डलु, सोनेकी मुद्रा, सप्तधान्य, भोजनके लिये घृतपात्र और काँसेकी थाल प्रदान करें। हे द्विजश्रेष्ठ! ऐसा करनेसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। यह पुराण जो विधिपूर्वक अच्छी तरह सुनते हैं, उन्हें सहस्र अश्वमेधों तथा

सौ राजसूय यज्ञोंका फल होता है। उनका यम-भय दूर हो जाता है, नरक-भय छूट जाता है, सब पापोंसे निवृत्ति होती है और एक ही साथ समग्र कुल पवित्र हो जाता है। निःसंदेह उनका वंश अविच्छिन्न रहता है और अन्तमें उन्हें इन्द्रलोक तथा सनातन ब्रह्मलोक प्राप्त होनेपर फिर वहाँसे गिरकर मनुष्यका चोला चढ़ाना नहीं पड़ता। इस एक मात्र पुराणके सुननेसे मनुष्यको उत्कृष्ट योगकी प्राप्ति होती है। परन्तु यह पुराण कण्ठगत प्राण होनेपर भी नास्तिक, शूद्र, वेदनिन्दक, गुरुद्वेष्टा, व्रतको भङ्ग करनेवाला, माता-पिताका त्याग करनेवाला, सोना चुरानेवाला, मर्यादाको तोड़नेवाला और ज्ञातिदूषक जो व्यक्ति हो, उसे कदापि नही देना चाहिये, न सुनाना ही चाहिये। ऐसे व्यक्तियोंमेंसे यदि कोई लोभ, मोह अथवा भयके वशीभूत होकर इस पुराणका पाठ करे, या किसीसे पाठ कराके सुने, किंवा इन्हीं कारणोंसे ऐसे व्यक्तियोंको कोई यह पुराण सुनावे, तो वह अवश्यही नरकमें चला जायगा। जैमिनिने कहा,—हे पक्षियों! महाभारतके अध्ययनसे हमारे जो संदेह नहीं मिटे, वे तुमने सख्यभावसे मिटा दिये हैं। यह कार्य और कोई कदापि नहीं कर सकता। तुम बहुत दीर्घायु और नीरोग होकर फूलो और फलो। तुम्हारी बुद्धि सांख्ययोगमें अव्यभिचारिणी हो और पितृ-शापसे उत्पन्न हुए दौर्मनस्यसे तुम्हारा छुटकारा हो। महाभाग जैमिनि यह कहकर और पक्षिरूपी द्विजोंकी पूजाकर, उनकी सुनायी हुई उदार पुराण-कथापर विचार करते हुए अपने आश्रमकी ओर गमन करते भये॥ २५-३९॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका पुराणमाहात्म्यकीर्तन नामक एक सौ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

मार्कण्डेय पुराण समाप्त।

टीका:—इस पुराणकी फलश्रुतिको पढ़कर साधारण पाठकोंको शङ्का न हो, इस लिये संक्षेपसे कहा जाता है कि, पुराणशास्त्र पूर्णज्ञानमय वेदके भाष्यरूप हैं। आत्मज्ञानप्राप्ति, कर्मकी योग्यताप्राप्ति और उपासनाकी लक्ष्यसिद्धिके निमित्त पुराणशास्त्र सबसे अधिक अवलम्बनीय हैं और दूसरी ओर पुराणशास्त्र सर्वजीवहितकारी हैं। तीसरी ओर श्रद्धालु पुराण-पाठकों अथवा पुराण-श्रोताओंको आत्मसाक्षात्कार करने और सात्त्विकबुद्धिसम्पन्न होकर दैवीजगत्‌से सम्बन्ध स्थापित करनेमें जैसी सुगमता होती है, वैसी अन्य शास्त्रोंसे नहीं होती। इस कारण पुराणशास्त्रकी फलश्रुतिमें जितना कुछ कहा जाय, थोड़ा है। आत्मसाक्षात्कार यदि एक क्षणके लिये कोई कर सके, तो कोटि कोटि जन्मोंके उसके पाप कट जानेकी तो बात ही क्या है, वह आत्मज्ञानी सब पापोंसे मुक्त होकर तुरन्त ब्रह्मरूपही हो जाता है। ऐसी आत्मज्ञानप्राप्तिका बीज पुराणशास्त्रमें स्थल स्थलपर निहित है। विभिन्न धर्मों और उनके क्रियासिद्धांशका तो पुराण आकर ही है। दैवीजगत्‌से सम्बन्ध होते ही साधक दैवीशक्तिसम्पन्न हो जाता है। उसके स्वरूपका वर्णन पुराणोंमें कैसा है, उसका ज्वलन्त दृष्टान्त श्रीसप्तशतीगीता है॥ १—३९॥

श्रीः।

रहस्योद्घाटिनी टीकाकी

विषय-सूची।

रहस्योद्घाटिनी टीकाके विषयोंका

'अ'कारादि क्रम।

विषय			पृष्ठ

विषय | पृष्ठ

विषय	पृष्ठ

पुराणरसलोलुप रसिक भ्रमरो !

इस 'मार्कण्डेयपुराण' रूपी पुष्प-गुच्छके तीनों पुष्पोंके मधुका आस्वाद आपने चखा है। यह पत्तियोंका दिया हुआ गुच्छ था। अब अति ललित, सरस और सुगन्धित 'श्रीदेवीभागवत' रूपी पुष्प-गुच्छकी ओर बढ़िये। इसके फूलोंका पौधा मणिद्वीपमें जमा हुआ है।

—सम्पादक।

सूर्योदय ।

अखिल भारतवर्षीय-संस्कृतविश्वविद्यालयकी ओरसे निकलनेवाला यह एकमात्र संस्कृत मासिक पत्र है। इसकी लेखप्रणालीसे संतुष्ट होकर कितनेही स्वाधीन राजा महाराजा इसके संरक्षक हुए हैं और भारतके सब प्रान्तोंके लोगोंने इसे अपनाया है। इसके पाठसे जो संस्कृतका अभ्यास करना चाहते हैं उन्हें सहायता मिलेगी और इसमें प्रकाशित होनेवाले अपूर्व संस्कृत ग्रन्थोंसे उनके यहां एक पुस्तकालय बन जायगा। वार्षिक मूल्य ३)

मैनेजर, "सूर्योदय"

बनारस केण्ट।

भारतधर्म ।

अखिल भारतवर्षीय सनातनधर्मावलम्बियोंकी एकमात्र विराट् धर्मसभा श्रीभारतधर्म महामण्डलका यह द्वैभाषिक (हिन्दी-अंग्रेजी) मासिक मुखपत्र है। धार्मिक जगत्में सनातनधर्मका पक्ष ग्रहण करनेवाला यही एक पुराना पत्र है। वार्षिक मूल्य ३) श्रीमहामण्डलके सभ्योंके लिये २) इसकेग्राहक समाजहितकारी कोषसे भरपूर आर्थिक लाभ उठा सकेंगे। इसके साथ एक अपूर्व हिन्दी ग्रन्थमाला भी निकलती है।

मैनेजर "भारतधर्म"

महामण्डल भवन, बनारस केण्ट।

अपने स्वजातीय "भारतधर्म प्रेस" में ही सुन्दरताके साथ काम छपाना हिन्दूमात्रका कर्त्तव्य है—पता :—

मैनेजर भारतधर्म प्रेस, स्टेशन रोड, बनारस (सिटी)

आर्यमहिला ।

अखिल भारतवर्षीय सनातनधर्मावलम्बिनी आर्यमहिलाओंकी एकमात्र प्रतिनिधि महासभा श्रीआर्यमहिलाहितकारिणी महापरिषद्की यह सर्वाङ्गसुन्दर सचित्र मासिक मुखपत्रिका है। प्रत्येक गृहस्थ और गृहिणीको इसे अपनाना चाहिये। वार्षिक मूल्य ५) सार्वजनिक संस्थाओं, विधवाओं और विद्यार्थियोंके लिये ४)

मैनेजर "आर्यमहिला"

बनारस (छावनी)

श्रीभारतधर्ममहामण्डलके सभ्य बनना सनातनधर्मावलम्बी मात्रका धर्म है—पताः—

सैक्रेटरी श्रीभारतधर्म्म महामण्डल, जगत्गञ्ज, बनारस (छावनी)

निगमागम बुकडिपो ।

सब प्रकारकी धार्मिक, दार्शनिक, वैदिक, वैज्ञानिक, व्यावहारिक, शास्त्रीय आदि पुस्तकें मिल सकें, ऐसा यही एक मात्र बुकडिपो है। उक्त सब प्रकारकी पुस्तकोंके अतिरिक्त निगमागमग्रन्थमाला, वाणीपुस्तकमाला, आर्यमहिलापुस्तकमाला आदि मालाओंकी पुस्तकें भी इस डिपोमें मिलती हैं। विशेषता यह है कि, स्थायी ग्राहकोंको सब पुस्तकें पौने मूल्यमें दी जाती है। बड़ा सूचीपत्र मंगाइये। और उसके स्थायी ग्राहक बनिये।

मैनेजर "निगमागम बुकडिपो",

भारतधर्म सिण्डिकेट, बनारस।

समाजहितकारी कोष ।

जिनकी पर्याप्त आय नहीं है, ऐसे हिन्दु गृहस्थोंके कन्या-पुत्रोंके विवाह कार्य तथा आत्मीयोंकी गमीके अवसरपर आर्थिक सहायता पहुंचानेके अभिप्रायसे यह कोष खोलागया है। इसके मेंबर होनेवालोंको बहुत सुगमतासे उक्त अवसरोंपर १०००) तककी सहायता मिल सकती है और वे स्वाभाविक रूपसे ही श्रीभारतधर्ममहामण्डलके मेंबर होजाते हैं। विस्तृत नियमावली मंगाकर देखिये।

सेक्रेटरी "समाजहितकारी कोष"

महामण्डल भवन, बनारस केण्ट।